पिघला हुआ सच

रमेश गुप्त एक लोकप्रिय, बहुचर्चित, स्थापित साहित्यकार हैं। पिछले ढाई दशक से आप साहित्य-सेवा में सलग्न हैं। इस बीच आपके लगभग बीस उपन्यास तथा कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमे से कुछ बेहद लोकप्रिय हुए। आपकी रचनाएँ हिन्दी की लगभग समस्त विशिष्ट तथा स्तरीय पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती हैं।

'पिघला हुआ सच' मे गुप्त जी की कुछ विशिष्ट कहानियाँ सग्रहीत हैं जो धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि मे पहले ही प्रकाशित हो, पाठको का मन मोह चुकी हैं। 'पिघला हुआ सच' की कहानियो मे आज के युग की चिरतन सच्चाइयो का बडा सजीव चित्रण हुआ है। हर कहानी जीवन के किसी न किसी अपरिचित पक्ष को उजागर कर हमे कुछ सोचने पर विवश कर देती है। गुप्त जी की ये कहानियाँ रोचक एवं पठनीय तो हैं ही, ये आज की जिंदगी की विषमताओ तथा विद्रूप-स्थितियों को उजागर करने मे भी पूर्ण सफल हुई है।

रमेश गुप्त एक स
कार हैं। पिछले व
हैं। इस बीच आ
संग्रह प्रकाशित हुं
हुए। आपकी रच
तथा स्तरीय पत्र-

'पिघला हुआ
कहानियाँ संग्रही
हिन्दुस्तान आ
का मन मोह
नियों में आज के
सजीव चित्रण हु
किसी अपरिचित
पर विवश कर
एवं पठनीय लो
तथा विद्रूप-स्थि

GIFTED BY
RAJA RAMMOHUN ROY
LIBRARY FOUNDATION
Block-DD-34, Sector I Salt Lake City,
CALCUTTA-700064.

रमेश गुप्त

10735
28 5 90

पिघला हुआ सच

ISBN-81-7138-008-5

मूल्य : पैंतालीस रुपये

प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
3543, जटवाड़ा, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

संस्करण : प्रथम, 1988

सर्वाधिकार : रमेश गुप्त, नई दिल्ली

कलापक्ष : चेतनदास

मुद्रक : चोपड़ा प्रिंटर्स, मोहन पार्क
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

PIGHLA HUYA SACH (Novel) by Ran
Price : Rs. 45.00

10735
28590

क्रम

पिघला हुआ सच / 9
संबंध / 21
रेगिस्तान में धुंधलका / 31
कारावास / 41
अस्तित्वहीन / 47
दलदल / 56
झंझट / 68
विवेक / 78
सूर्यास्त के बाद / 85
स्वप्नभंग / 94
कड़वा अतीत / 105
मेनका / 118
पुनर्मिलन / 127
अलगाव / 137
अगली बार / 148
यादें / 158
विश्वासघात / 167
जमींदारी / 177
फिर वही / 187

पिघला हुआ सच

पिघला हुआ सच

फोन की घंटी बजी। बजती रही।

मैंने आँखें मूँदी—अवसाद और होने वाले अपमान से भयाक्रांत होकर। घंटी बजे जा रही थी। मेरी ऐसी मन स्थिति नहीं थी कि मैं किसी से सवाद की स्थिति स्थापित कर सकूँ। मैंने आँखें खोली। सामने दीवार-घड़ी की ओर ताका। पौने छ. बज रहे थे। दफ्तर बंद हो चुका था। फिर भी मैं वहाँ क्यों मौजूद था?

तार के पार, संपर्क की आकुल व्यक्ति की हठधर्मी और उसका मेरे वहाँ होने का अटूट विश्वास मुझे तनिक पिघला गए। अलसाया-सा मेरा सीधा हाथ बढ़ा, रिसीवर उठा कर कान से लगाया और एक मृतप्राय सा स्वर बाहर उगल दिया, "हैलो!"

"क्या सो गए थे?"

एक बेहद परिचित सा अपरिचित स्वर। संशय के मकड़ीस्जाल ने पूरना शुरू किया ही था कि मैंने उसे झटक दिया। निश्चित ही मालिनी केशवानी है!

"अमर हो न?" मेरे अप्रत्याशित मौन ने फिर एक प्रश्न को जन्म दिया।

"बोल रहा हूँ।"

"शुकर है ऊपर वाले का कि आप बोल रहे हैं।"

"अब क्या बोलूँ ?"

"पहचाना मुझे ?"

मैं पहले ही जलाशय की गहरायी में डूब-उतरा रहा था। पहली बार मालिनी का स्वर सुनते ही मुझे लगा था, किसी ने अकस्मात मुझे डाईविंग बोर्ड से नीचे स्विमिंग पूल में धकिया दिया है और मैं गहरे पानी में गोते खा रहा हूँ।

"क्यों, क्या चक्कर में पड़ गये ?"

मैं सहज हो चला। मेज पर सामने पड़े, मेरे दुर्भाग्य के दूत उस काग के टुकड़े से नजरें चुराकर, मैं बोला, "तुम्हें हम न पहचानें, यह कैसे सकता है, आपकी यह मधुर आवाज तो हमारे दिल के ''।"

"बस-बस, बको मत।"

"कैसे याद किया दुश्मनों को ?"

"कब तक हो दफ्तर में ?"

"जब तक तुम कहो।"

"मैं आ रही हूँ।"

"मैं आ जाता हूँ।"

"एक बार तो कुएँ को प्यासे के पास जाने दो।"

"प्यासा कौन है ?"

मेरा प्रश्न मालिनी की खिलखिलाहट में गुम हो गया।

"कब तक पहुँचूँ ? जल्दी में तो नहीं हो ?"

"तुम्हारे लिए तो जिंदगी-भर इन्तजार कर सकते हैं।"

"बको मत। ज्यादा रोमांटिक बनने की कोशिश मत करो। मैं आ रही हूँ।"

फोन बंद हो गया। मालिनी क्यों आ रही है ? आखिर इतने दिनों बाद उसे मेरी याद क्यों आई ? क्या उसे मेरी इस दुर्दशा के बारे में पता चल गया है ?

मैंने एक सिगरेट सुलगा ली। फाइलों को समेट, साइड रैक पर रख । घूमने वाली कुर्सी के पीछे सिर टिका, मैंने मेज पर दोनों पाँव जमा ए। धुएँ के गुब्बारे उगलता हुआ, आँखें मूँद, मैं दोबारा उसी परिवेश

मे पहुंच गया जहाँ से यह त्रासदी शुरू हुई थी। मेरे समक्ष एक अहम प्रश्न का विषैला कोबरा फन उठाए खड़ा था—अब क्या होगा?

मेज पर पड़े पत्र से मेरी विनाश-लीला शुरू होती है। आज का सब कुछ, कल कुछ भी न रहे, यह कल्पनातीत है। पर इस व्यवस्थायी जगत मे सब कुछ संभव है।

एक के बाद एक अप्रत्याशित धक्का लग रहा था मुझे। पहले तीन बजे यह पत्र मिला। और अब मालिनी आ रही है। क्यो? किस काम से? हमेशा से इसने मुझे उलझाया है।

जनशून्य, भयावह-से सन्नाटे के बीच मे अकेला था। तभी मुझे किसी की खाँसी सुनाई दी। मैं तो नही खाँसा था। फिर कमरे मे कौन खाँसा? इतनी जल्दी मालिनी भी नही आ सकती थी।

मैंने आँखें खोली। सामने मिस केलकर खड़ी थी—होठो पर एक विशुद्ध व्यावसायिक मुस्कान सजाए। वह अपनी आँखों से बोल रही थी—आज मैंने तुम्हे चोरी करते रँगे हाथो पकड़ लिया है।

"शशि, तुम?" मेरे स्वर मे बनावटी आश्चर्य था।

"मैं ही हूं। तुम इतने सरप्राइज्ड से क्यो हो रहे हो?"

"कब आई?"

"मैं पाँच मिनट से खड़ी हूँ।"

"रियली! मुझे पता ही नही चला।"

"यही तो बात है।"

"मतलब?" वैसे मैं मतलब समझ गया था। देवी जी लिफ्ट के चक्कर मे हैं। पर शायद इसे पता नहीं कि यह सुविधा अब ज्यादा दिन उपलब्ध नही होने वाली। सुविधादाता स्वयं भयंकर असुविधाजनक स्थिति मे फँस गया था।

"नासमझ बनने का नाटक क्यों करते हो?"

"नाटक करना आता तो इस मुसीबत में ही क्यों फँसता?"

अचानक मेरे मुँह से यह वाक्य फिसल गया। सम्भवतः मेरा अवचेतन इस रहस्य को अब और रहस्यमय तरीके से पचाने मे असमर्थ था।

"क्या हुआ?" अचानक शशि उत्तेजित हो गई।

"कुछ नहीं," मैं सँभल गया। यदि शशि को यह सब पता चल गया तो कल पूरा दफ्तर जान जाएगा।

"तुम्हें क्या हो गया है, अमर? आखिर तुम इतने खोए-खोए से क्यों रहते हो?"

"मैं···नहीं तो," मैं अचकचाया। मालिनी के आने से पूर्व मैं शशि को अपने कमरे से खिसकाना चाहता था। अतः मैंने क्षमा माँगने की मुद्रा बनाई और बोला, "आज लिफ्ट नहीं···। मैं अभी बैठूँगा।"

"मैं रुकूँ···?"

"नहीं।"

"अपने सेक्शन से?"

"मैं आज घर नहीं जा रहा।"

"फिर कहाँ जा रहे हो?"

"ग्रीन पार्क।"

"जहाँ मर्जी हो जाओ," कहती हुई वह चली गई। मैं थोड़ा आश्वस्त-सा हो गया। मैं एक हास्यास्पद स्थिति में फँसने से बच गया। शशि को देखकर मालिनी के अंतर में ईर्ष्या का ज्वालामुखी धधक उठता, यह मैं जानता हूँ। वैसे उसे ईर्ष्या का अधिकार नहीं।

शशि से मेरा कोई लगाव नहीं। हम दोनों पटौदी हाउस में पड़ोसी हैं। मैं एक सौ दस में। वह एक सौ चार में। मैं अकेला। वह अपने मम्मी-पापा के साथ। सुबह-शाम स्कूटर पर लिफ्ट मिल जाती है उसे। मेरी दी हुई लिफ्ट की उसने अपने मन में क्या व्याख्या कर रखी है, इसका मुझे सही ज्ञान तो नहीं पर बहुत कुछ अनकहा रहने पर भी मुखर हो जाता है। मुझे तो अब न शशि से कोई लगाव है, और न मालिनी की चिंता। मेरे समक्ष तो अस्तित्व-रक्षा का संकट उत्पन्न हो गया है।

मैंने एक और सिगरेट सुलगा ली।

तभी कमरे का दरवाजा खुला। एक तूफान आने की आशंका से मैं सँभल कर बैठ गया। मालिनी ही को आना था। पर नहीं, अपनी प्रकृति के अनुकूल वह मेरी आशा की पतंग को उड़ा रही थी—कभी ढील दे, कभी खींच कर।

आने वाला था मेरा चपरासी। अन्दर आया। बोला कुछ नहीं। मैं समझ गया उसका मौन प्रश्न।

"तुम जा सकते हो रामलाल।" मैंने यंत्रवत कह दिया।

जैसे ही रामलाल बाहर निकला, मालिनी धडधड़ाती हुई आ गई—एकदम राजधानी एक्सप्रेस सी।

"आइये। वह आएँ हमारे घर'''।" कहता हुआ मैं उठा तो वह कुर्सी पर बैठती हुई चीखी, "बको मत। यह घर नहीं, दफ्तर है, मिस्टर।"

"आज सूरज पश्चिम से कैसे उदय हुआ?"

"बको मत अमर।"

"तुम आई, अब जरूर बरसात होगी।"

"बके जाओगे?" कह कर उसने मेज पर पड़े पैकेट को उठाया, उसमें से एक सिगरेट निकाल कर सुलगा ली।

मैं गौर से उसे देखने लगा। कई महीनों के बाद उससे मुलाकात हो रही थी। उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था। वही कटे, कंधे तक झूलते बाल। श्यामल रंग। तीखे नाक-नक्श। गहरी लिपस्टिक। नारियल सी मुखाकृति। हाँ, बड़ी आँखों में थोड़ा गाम्भीर्य उभर आया था। वक्ष का माप भी सम्भवतः एक-दो इंच बढ़ गया था।

"क्या पिओगी?"

"जो मैं पीती हूँ, क्या वह पिला सकोगे?"

"यहाँ?"

"घर पर है?"

"है।"

"कौन सी है?"

"स्कॉच।"

"कहाँ से मारी?"

"वेदी ने ला दी थी। साला विदेशी दूतावासों में घुसपैठ करता रहता है।"

"पूरी है कि पी गए?"

"उद्घाटन समारोह तक नहीं हुआ है।"

"फिर तो घर जाना पड़ेगा।"
"कब आ रही हो ?"
"कल सही।"
"आज क्यों नहीं ?"
"आज भी कोई हर्ज नहीं। पर मुझे एक फोन करना पड़ेगा।"
"किसी से परमीशन लेनी है क्या ?"
मालिनी ने मेरे व्यंग्य-बाण को रद्दी की टोकरी में डाल दिया। सामने रखा फोन अपनी तरफ खिसकाया। एक नम्बर डायल किया। संक्षिप्त-सा वार्तालाप हुआ। फिर वह बोली, "ठीक है। आज ही सही।"
"हमसे अच्छी तो हमारी व्हिस्की है जो मैडम को हमारे पास खींच लाई।"
"बको मत, अमर !"
"हम तो बस तुम्हारी इसी अदा पर फिदा हैं।"
"फिर बकना शुरू कर दिया ? यह बताओ कैसे हालचाल हैं ?"
"हाल ढीले हैं और चाल में भी पुरानी तेजी नहीं रही।"
"क्यों, क्या हुआ ?" यह कहकर मालिनी ने सर्चलाइट जैसी दृष्टि मुझ पर टिका दी। लगा, वह मेरी परीक्षा ले रही है। शायद उसे मेरी व्यथा-कथा का पता चल चुका था। सम्भवतः वह मेरे पास मेरी मिजाजपुर्सी नहीं, मातमपुर्सी करने आई थी। उसकी निगाहों में निश्चित रूप से ऐसा कुछ था जो मुझे निर्वस्त्र किए दे रहा था।
मालिनी के आत्मीयता-भरे संबोधन ने मुझे चौंका दिया।
"क्या अब भी सपने देखते हो ?"
"सपने," मैंने दोहराया। एक दीर्घ निःश्वास छोड़, मैं बोला, "तुम बहुवचन में बोल रही हो। हमने तो सिर्फ एक ही सपना देखा था"। बाद में उसे भी नोचकर बाहर फेंक दिया।"
"रियली ? पर क्यों ?"
"क्योंकि उस सपने की नायिका तुम थी।"
मालिनी ने सिगरेट का एक भरपूर कश खींचा। शरारती तरीके से धुएँ का गोला मेरे मुँह पर उगला और बोली, "अब यह उमर है सिजलिंग

किस्म के रोमेंटिसिज्म की ! फार्गेट एबाउट इट !"

"मालू ! कुछ चोटें दिखती नहीं, सिर्फ टीसती हैं।"

"बको मत।"

मैं समझ गया, मालिनी वहीं है जहाँ आज से सात वर्ष पूर्व थी। एक सेन्टीमीटर भी नहीं खिसकी है उस बिंदु से। ठीक है। यह भी कोई बुरी बात नहीं। इंसान एक फैसला करे और अगर वह फैसला किसी को साले, तो बाद में उसे न बदला जाए। क्रूर फैसले ऐतिहासिक तो बन जाते हैं, पर क्या···?

"अमर, मैं तुम्हारे पास एक खास काम से आई थी।"

"हुक्म कीजिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? वैसे आज सारे रिश्ते कामकाजी हो गए हैं।"

"मुझे तुम्हारी एक चीज चाहिए।"

"दिल तो सात साल पहले ले लिया था। अब क्या बचा है मेरे पास देने को?"

"बको मत। मुझे दिल-दिमाग नहीं, चाभी चाहिए।"

मैं सकपका गया। अन्दर विस्फोट होने लगे तो मालू इस सीमा तक जाकर पतित हो चुकी है! मेरा मन वितृष्णा से भर गया।

"आज शाम को क्या कर रहे हो?"

"तुम्हारे लिए फ्री हूँ।"

"पटौदी हाउस जा रहे हो या ग्रीन पार्क?"

"जहाँ कहोगी, चला जाऊँगा।"

"ग्रीन पार्क चले जाओ।"

"अच्छा!" मैं बुरी तरह उखड़ गया। फिर भी मैंने जेब से चाभी का गुच्छा निकाला। उसमें से पटौदी हाउस वाले कमरे की चाभी निकाली और मालिनी की तरफ खिसका दी।

मालिनी ने चाभी उठाई और बोली, "तुम कब तक आओगे?"

"कहो तो सारी रात न आऊँ?"

"आना चाहो तो आ जाना। शायद साढ़े दस-ग्यारह बजे तक मैं फ्री हो जाऊँगी।"

मेरा मुख रक्ताभ हो गया। अन्दर ही अन्दर आवेश और क्रोध के कारण काँपने लगा। पर बाहर तो दिखावा करने के लिए मजबूर होना पड़ रहा था।

वह एकदम संतुष्ट लग रही थी। मैं दोहरी मार से पीडित अवश-सा बैठा था। तीन बजे आया पत्र और अब मालू का व्यवहार।

"स्कॉच कहाँ रखी है ?" मालिनी ने मुस्कुराते पूछा।

"बुक शैल्फ में। किताबों के पीछे।"

"छिपाकर रखते हो ?"

"मुफ्तखोरों से डर लगता है।"

"इशारा मेरी तरफ तो नहीं ?"

"तुम्हारे लिए तो जान····।"

"बको मत, अमर।"

वह उठ खड़ी हुई। जाते-जाते पैकिट से एक सिगरेट निकाल कर सुलगा ली और बोली, "पाँच मिनट और ठहरना होगा। पब्लिकली पिओ, लोग तुम्हें ऐसे घूरते हैं जैसे सिर पर सींग उग आए हों।"

वह फिर बैठ गई। बेहद गहरे-गहरे कशों के बीच उसने एक बेहद गहरी बात पूछ ली, "अमर, आजकल होम करते हाथ क्यों जलते हैं ?"

मैं इस अकस्मात आक्रमण के लिए मानसिक रूप से कतई प्रस्तुत नहीं था। यही मेरे साथ हुआ था। इसी की पीड़ा को मैं भोग रहा था। मैं इसे मालिनी के साथ 'शेयर' नहीं करना चाहता था, क्योंकि मुझे पता था, बौद्धिक, भावनात्मक तथा प्रशासनिक तीनों ही स्तर पर हम दोनों सामंजस्य नहीं बैठा पाए थे।

"नहीं बताना चाहते ?" मालिनी ने कुरेदा।

"मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं खोज पाया हूँ। शायद हाथ जलते हैं असावधानीवश ! इसमें होम की अग्नि को दोष देना अनुचित लगता है।"

"मैं नहीं मानती इस स्थिति को। 'निगेटिव' दृष्टिकोण रख कर तुम ? रह सकते हो, पर जहाँ 'पोजीटिव' हुए नहीं कि भ्रष्टाचार विरोधी ।ons के शिकंजे में फँस जाते हो। क्या मैं गलत कह रही हूँ ?" कहती ए उठी, आधी पी हुई सिगरेट को ऐशट्रे में मसल, मेरे उत्तर या

प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए बिना, क

मेरी इसी दबी पीड़ा फिर म था ? मंत्री जी ने आज्ञा दी और मैंने को सरकारी सेवा से लगा दिया। किसी को इस पर नगुर्ना उठाने का र न्यायपथ देख ही परी व्यवस्था मेरे मुझ पर मत्था व दुरुपयोग का अभि और अन्त में यह निर्मित आदेश किया जा रहा है। जिस मनकांना औ वह एकदम अन्याद जिसमें का दम्भ निर्दय दमन। शायद है। मैं अर्प सकता हूँ। पर यह नह शायना है प्रतारणा अपमान और कपट के अ जिन्दगी में एक युद्ध की शुरुआत हो

पर इस समय तो एक निषता धमका ही नहीं, आत्मविश्वास भी कर रह तैयारी कर रहा हूँ। वहाँ मेरे समी- नौकरों में है। उनका ट्रांसफर होना गए हैं। कभी भी बाहर जाना पड़ ग होस्टल में एक कमरा ले रखा है। क पार्क या बीच में टहलता रहता हूँ।

आज मैं बीन पार्क आ नहीं रह सच है जिसने मुझे सराबोर किया हु हुं जो कभी मेरी अभिन्न मित्र थी। वर्षों का अन्तराल क्या इतनी बड़ी थ देता है। मालू ने मेरे बिस्तरे को पु रखने के लिए। क्यों ? यह कल्ह न यहाँ रात में यहाँ नहीं आ सकते। । फिर ? मालू ने पूछा और मैंने सही

मेरा मुख रक्ताभ हो गया। अन्दर ही अन्दर आवेश और क्रोध के कारण कॉपने लगा। पर बाहर तो दिखावा करने के लिए मजबूर होना पड़ रहा था।

वह एकदम संतुष्ट लग रही थी। मैं दोहरी मार से पीड़ित अवश-सा बैठा था। तीन बजे आया पत्र और अब मालू का व्यवहार।

"स्कॉच कहाँ रखी है ?" मालिनी ने मुस्कुराते पूछा।

"बुक शैल्फ मे। किताबों के पीछे।"

"छिपाकर रखते हो ?"

"मुफ्तखोरों से डर लगता है।"

"इशारा मेरी तरफ तो नहीं ?"

"तुम्हारे लिए तो जान···।"

"बको मत, अमर।"

वह उठ खड़ी हुई। जाते-जाते पैकिट से एक सिगरेट निकाल कर सुलगा ली और बोली, "पाँच मिनट और ठहरना होगा। पब्लिकली पिओ, लोग तुम्हें ऐसे घूरते हैं जैसे सिर पर सींग उग आए हों।"

वह फिर बैठ गई। बेहद गहरे-गहरे कशों के बीच उसने एक बेहद गहरी बात पूछ ली, "अमर, आजकल होम करते हाथ क्यों जलते हैं ?"

मैं इस अकस्मात आक्रमण के लिए मानसिक रूप से कतई प्रस्तुत नहीं था। यही मेरे साथ हुआ था। इसी की पीडा को मैं भोग रहा था। मैं इसे मालिनी के साथ 'शेयर' नहीं करना चाहता था, क्योंकि मुझे पता था, बौद्धिक, भावनात्मक तथा प्रशासनिक तीनों ही स्तर पर हम दोनों सामंजस्य नहीं बैठा पाए थे।

"नहीं बताना चाहते ?" मालिनी ने कुरेदा।

"मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं खोज पाया हूँ। शायद हाथ जलते हैं असावधानीवश ! इसमें होम की अग्नि को दोष देना अनुचित लगता है।"

"मैं नहीं मानती इस स्थिति को। 'निगेटिव' दृष्टिकोण रख कर तुम सुखी रह सकते हो, पर जहाँ 'पोजीटिव' हुए नहीं कि भ्रष्टाचार विरोधी संगठनों के शिकंजे में फँस जाते हो। क्या मैं गलत कह रही हूँ ?" कहती हुई मालू उठी, आधी पी हुई सिगरेट को ऐशट्रे मे मसल, मेरे उत्तर या

प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए बिना, वह कमरे के बाहर चली गई।

मेरी दबी-दबी पीड़ा फिर से हरी हो गई। मैंने क्या अपराध किया था? मंत्री जी ने आज्ञा दी और मैंने मानवीय आधार पर, उनके रिश्तेदार को सरकारी सेवा में लगा दिया। पिछले द्वार से। जब तक वे मंत्री रहे, किसी को इस पर अंगुली उठाने का साहस नहीं हुआ। उनके मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देते ही, पूरी व्यवस्था मेरे पीछे शिकारी कुत्तों की तरह लग गई। मुझ पर सत्ता के दुरुपयोग का अभियोग लगाया गया। मौखिक जाँच हुई और अन्त में यह लिखित आदेश आ गए। मुझे दण्डस्वरूप सेवा-मुक्त किया जा रहा है। जिस सत्कर्ता अधिकारी ने मेरे केस पर कार्यवाही की, वह एकदम जल्लाद किस्म का इन्सान निकला। नाम रमन, और काम निरर्थक दमन। रास्ते हैं। मैं अपील कर सकता हूँ। ट्रायबुनल में जा सकता हूँ। पर यह वह रास्ता है जहाँ पग-पग पर बर्बादी, तबाही, प्रतारणा, अपमान और कपट के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। ठीक है, जिन्दगी में एक युद्ध की शुरुआत हो चुकी है। यह एक ठोस सच है।

पर इस समय तो एक पिघला हुआ सच मुझे धमका रहा है। केवल धमका ही नहीं, आतंकित भी कर रहा है। संत्रस्त-सा मैं ग्रीन पार्क जाने की तैयारी कर रहा हूँ। वहाँ मेरे मम्मी-पापा रहते हैं। मेरे पापा भी सरकारी नौकरी में हैं। उनका ट्रांसफर होता रहता है। दिल्ली में उन्हें तीन वर्ष हो गए हैं। कभी भी बाहर जाना पड़ सकता है। इसीलिए मैंने पटौदी हाउस होस्टल में एक कमरा ले रखा है। कभी अपने होस्टल में तो कभी घर ग्रीन पार्क के बीच में झूलता रहता हूँ।

आज मैं ग्रीन पार्क जा नहीं रहा, भेजा जा रहा हूँ। यही वह पिघला सच है जिसने मुझे सराबोर किया हुआ है। भेजा भी उसके द्वारा जा रहा हूँ जो कभी मेरी अभिन्न मित्र थी। वही मालू है और वही मैं हूँ। सात वर्ष का अन्तराल क्या इतनी बड़ी खाई खोद, सारे सबंधों को यूँ ही दफना देता है। मालू ने मेरे बिस्तरे को चुना है, मेरे प्रतिद्वंद्वी के साथ रासलीला रचाने के लिए। क्यों? वह गर्ल्स नहीं, वर्किंग वीमेन होस्टल में रहती है। वहाँ रात में मर्द नहीं जा सकते। सिर्फ यही कारण तो नहीं हो सकता। फिर? मालू ने कहा, और मैंने स्वीकार कर लिया इस यंत्रणा को। और

बने रहोगे। पर मैं तुम्हें अपने साथ व्यभिचार या बलात्कार नहीं करने दूँगी। तुम चाहो तो मेरे साथ सो सकते हो, पर शादी का सपना देखने की मूर्खता मत करना।"

एक स्वच्छंद नारी। पुरुष वर्ग के विद्रोह का झंडा उठाए। यौनीय उच्छृंखलता मे उसे परहेज नही था। पर नारी पुरुषो के बाकायदा परम्परागत सम्बन्धो से उसे वितृष्णा थी।

मैं क्या कर सकता था? राजमार्ग सामने था। देखो। चलो। पर स्थापित नही हो सकते। टिकना गुनाह था।···मैं लौट आया।

क्या आज मालू का चाभी ले जाना उसके जीवन-दर्शन के सफर का अन्तिम पड़ाव है?

ग्रीन पार्क जाने के बाद भी मुझे चैन नही मिला। रात का खाना खा लेने के पश्चात् भी मेरी बेचैनी बढ़ती गई। मेरे अन्दर यह कैसी उथल-पुथल मची थी? शायद यह अस्तव्यस्तता नही, एक नारकीय उत्सुकता थी, उस पुरुष को देखने की, जो मेरे बिस्तर पर, मेरी मालू के साथ वह सब कुछ कर रहा था जिसे मुझे करने का लायसेंस तो दिया गया था, पर मैंने किया नही था।

दस बजे मैंने कपड़े पहने और स्कूटर बाहर निकाल लिया। माँ ने रुकने का अनुरोध किया। पर पटौदी हाउस मे एक भयावह नाटक अभिनीत हो रहा था। मेरे बिस्तरे के मंच पर। मैं नाटक के रहस्यमय चेहरे को देखने के लिए बेहद उत्सुक हो रहा था।

मैंने अनुमान की गेंद उछाली थी। मिश्रा ही होगा। उसके घर फोन किया तो पता चला, वह लंदन गया है शूटिंग के सिलसिले मे। नौकरी सरकारी, काम सारे गैर-सरकारी।

मिश्रा नही तो फिर यह तीसरा कौन है? उत्सुकता—दर-दर उत्सुकता। एक काला रहस्य।

करीब साढ़े दस बजे मैं पटौदी हाउस पहुँचा। लॉन में स्कूटर खड़ा किया। कमरे का दरवाजा बंद था। अन्दर प्रकाश था। मैं ठिठका खड़ा रहा। रह-रहकर मालू की तीखी आवाज और टुकड़े-टुकड़े फ़िकरे मुझे सुनाई दे जाते थे।

मैं करता भी क्या रहा हूँ इतने सालों से। वह कहती रही है। मैं सब कुछ शान्त भाव से सुनता हूँ और निश्चल भाव से स्वीकार कर लेता हूँ।

लगभग तीस अफसरों के समूह में हम तीन ऐसे थे जो काफी समीप आ गये थे। मालू, मैं और मिश्रा। एक वर्ष के लंबे प्रशिक्षण के दौरान मालिनी ने यह सिद्ध कर दिया कि वह बेहद स्मार्ट, आधुनिक तथा उदार विचार-धारा वाली होने के साथ-साथ मुझसे बेलाग प्रेम करती है।

हर शनिवार को वह अपने कमरे में बीयर पार्टी रखती। जम कर सार्वजनिक रूप से सिगरेट पीती। खुल कर पढ़ने वालों से बहस करती। मिश्रा उसे पटाता रहता था। एक स्टेज पर वह पट भी गई थी। वह उसे लेकर बम्बई चला गया। हीरोइन बनवाने के लिए। एक निर्देशक उसके मित्र थे।

कुछ ही दिनों बाद मैं वे दोनों लौट आए। मालू ने मुझसे साफ-साफ कहा था, "फिल्मों में काम करना भी उतना ही बोर और जोखिम-भरा है जितना सेक्रेटेरियट में फाइल पुशिंग।

"दोनों ही से ऊब चुकी हो तो शादी क्यों नहीं कर लेती?"

मैंने पहली बार मालू को भावुक होते देखा था। उस दिन उसने दो घंटे तक एक भी सिगरेट नहीं पी। देर तक शून्य में खोए रहने के बाद उसने कहा था, "अब यह सब नहीं होगा अमर। शायद तुम्हें नहीं पता, मेरे अन्दर का एक बहुत बड़ा हिस्सा रेगिस्तान बन चुका है। मैं हर समय झुलसती रहती हूँ। मैं जानती हूँ, यह सब बेकार है। मुझे इस बात का एह-सास भी है कि जिसे मैं मीठे पानी की झील समझे बैठी हूँ, वह गर्म बालू की चमक भर है। पर मैं क्या करूँ? भरमाना पड़ता है अपने आपको···कभी-कभार दूसरों को।"

उस दिन तो नहीं खुली वह। पर बाद में पता चला कि उसने विभा-जित होने की विभीषिका को जिया था। मम्मी-पापा के बीच अलगाव से जो शून्य उपजा था, उसमें वर्षों तक वह त्रिशंकु सी लटकी रहती। कदा-चित् शीर्षासन की उस विकृत स्थिति से उपजी थीं ये तमाम विसंगतियाँ!

एक दिन तो उसने स्वीकार भी किया था, "अमर, मैं तुमसे बेहद प्यार करती हूँ, जीवन पर्यन्त करती रहूँगी, जब तक तुम प्यार करने के काबिल

दोनों अन्दर थे। क्या दरवाजा खटखटाऊँ? उनके सुख में बाधा उत्पन्न करूँ? कुछ नहीं कर पा रहा था मैं। अपने ही घर में घुसने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। कैसी दयनीय स्थिति थी मेरी। ग्रीन पार्क से आने के निर्णय पर मुझे खेद हो रहा था।

लगभग तीस मिनट तक मैं लॉन में विस्थापित-सा प्रतीक्षारत खड़ा रहा। ग्यारह बजने लगे थे। मेरा धैर्य चुकने लगा। मैं दरवाजे तक गया। धीमे से दस्तक दी।

"कम इन!" अन्दर से मालू की आवाज आई—कड़कदार, विजय-भावना से ओतप्रोत।

"दरवाजा तो खोलो," मैंने उखड़कर कहा।

"खुला है।"

कमाल का दुःसाहस दिखाते हैं ये लोग! उन्मुक्तता और वह भी सरे-आम दरवाजे के पीछे।

मैंने दरवाजे को धकेला और अन्दर पहुँच गया।

घोर, अप्रत्याशित, सुखद आश्चर्य!

गोल मेज पर दो खाली गिलास और आधी भरी मेरी स्कॉच की बोतल। ऐशट्रे में भरे सिगरेट के टोंटे। एक आरामकुर्सी पर मालू और उसके सामने दूसरी कुर्सी पर वही था—नाम रमन, काम निरर्थक वमन!

"मालू ने हमें बोला है तुम्हारे बारे में मिस्टर अमर। अपील करो। हम तुम्हें बाइज्जत बरी करने की सिफारिश करेंगे। तुमको पता है कि हमारी कलम में कितनी ताकत है! जो कुछ हम लिखते हैं मन्त्री तक को मानना पड़ता है।"

मैं स्तंभित-सा खड़ा था—कभी मालू तो कभी रमन, तो कभी अपने बिस्तरे के बीच मेरी दृष्टि पेंडुलम सी झूल रही थी। रमन की कलम की ताकत का मुझे पता था। पर उससे भी ज्यादा ताकतवर चीज होती है इस पिघले हुए सच से यह मेरा पहला साक्षात्कार था।

मेरी निगाह मालू के मुख पर टिक गई। वह बेहद खुश नजर आ रही थी। उसकी आँखों में विजय की चमक थी। मैंने गौर से अपने बिस्तरे को देखा। मुझे तो वहाँ विनाश के कोई चिह्न नजर नहीं आ रहे थे। □

संबंध

और दिन की अपेक्षा शशि दफ्तर से देर से लौटी। क्लिनिक में मरीजों से घिरे बैठे डॉक्टर प्रेम कुमार ने पत्नी के उतरे चेहरे और आँखों में उभरी तनाव-भरी निराशा को स्पष्ट देख आगत त्रासदी की कल्पना कर ली।

वह नहीं उखड़े। उखड़ने का कारण भी तो नहीं था। कई महीनों से शशि के सिर पर 'डेमोक्लीज' की तलवार लटक रही थी। नागपुर से दिल्ली आए पूरे पाँच वर्ष हो गए थे और डेरे-तंबू उखड़ने की वेला आ पहुँची थी।

अगले आधे घंटे में अंतिम मरीज को निपटा कर डॉक्टर प्रेम अंदर पहुँचे। शशि के मुख पर उदासी और चिंता की धूप-छाँव तैर-उतरा रही थी। उन्होंने पूछा, "कहाँ के हुए?"

"मैं तो इस खानाबदोश जिन्दगी से तंग आ गई हूँ। जी चाहता है, नौकरी छोड़ दूँ," शशि तमक कर बोली।

"शशि, क्लास वन नौकरी में हो, फिर भी असंतुष्ट। तनिक उनसे पूछो, जो बेकारी, बेरोजगारी से अभिशप्त हैं।"

"हर चार पाँच वर्ष में स्थानान्तरण···। शहर-शहर चूल्हे गाड़ते रहना और सामान की उठापटक करते रहना। बस, मैं तो ऊब गई हूँ···।"

"शशि, तुमने खुली आँखों से इस अखिल भारतीय कड़पी वाली नौकरी को स्वीकारा था। अब उस उत्तरदायित्व से क्यों कतरा रही हो?

दोनो अन्दर थे। क्या दरवाजा थपथपाऊँ? उनके सुख में बाधा उत्पन्न करूँ? कुछ नहीं कर पा रहा था मैं। अपने ही घर में घुसने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। कैसी दयनीय स्थिति थी मेरी। ग्रीन पार्क से आने के निर्णय पर मुझे खेद हो रहा था।

लगभग तीस मिनट तक मैं लॉन में विस्थापित-सा प्रतीक्षारत खड़ा रहा। ग्यारह बजने लगे थे। मेरा धैर्य चुकने लगा। मैं दरवाजे तक गया। धीमे से दस्तक दी।

"कम इन!" अन्दर से मालू की आवाज आई—कड़कदार, विजय-भावना से ओतप्रोत।

"दरवाजा तो खोलो," मैंने उखड़कर कहा।

"खुला है।"

कमाल का दुःसाहस दिखाते हैं ये लोग! उन्मुक्तता और वह भी सरे-आम दरवाजे के पीछे।

मैंने दरवाजे को धकेला और अन्दर पहुँच गया।

घोर, अप्रत्याशित, सुखद आश्चर्य!

गोल मेज पर दो खाली गिलास और आधी भरी मेरी स्कॉच की बोतल। ऐशट्रे में भरे सिगरेट के टोटे। एक आरामकुर्सी पर मालू और उसके सामने दूसरी कुर्सी पर वही था—नाम रमन, काम निरर्थक दमन!

"मालू ने हमें बोला है तुम्हारे बारे में मिस्टर अमर। अपील करो। हम तुम्हें बाइज्जत बरी करने की सिफारिश करेंगे। तुमको पता है कि हमारी कलम में कितनी ताकत है! जो कुछ हम लिखते हैं मन्त्री तक को मानना पड़ता है।"

मैं स्तंभित-सा खड़ा था—कभी मालू तो कभी रमन, तो कभी अपने बिस्तरे के बीच मेरी दृष्टि पेंडुलम सी झूल रही थी। रमन की कलम की ताकत का मुझे पता था। पर उससे भी ज्यादा ताकतवर चीज होती है, इस पिघले हुए सच से यह मेरा पहला साक्षात्कार था।

मेरी निगाह मालू के मुख पर टिक गई। वह बेहद खुश नजर आ रही थी। उसकी आँखों में विजय की चमक थी। मैंने गौर से अपने बिस्तरे को देखा। मुझे तो वहाँ विनाश के कोई चिह्न नजर नहीं आ रहे थे। □

संबंध

और दिन की अपेक्षा शशि दफ्तर से देर से लौटी। क्लिनिक में मरीजों से घिरे डाक्टर प्रेम कुमार ने पत्नी के उतरे चेहरे और आँखों में उभरी तनाव-भरी निराशा को स्पष्ट देख आगत त्रासदी की कल्पना कर ली।

वह नहीं उखड़े। उखड़ने का कारण भी तो नहीं था। कई महीनों से शशि के सिर पर 'डेमोबलीज' की तलवार लटक रही थी। नागपुर से दिल्ली आए पूरे पाँच वर्ष हो गए थे और डेरे-तंबू उखड़ने की वेला आ पहुँची थी।

अगले आधे घंटे में अंतिम मरीज को निपटा कर डॉक्टर प्रेम अंदर पहुँचे। शशि के मुख पर उदासी और चिंता की धूप-छाँव तैर-उतरा रही थी। उन्होंने पूछा, "कहाँ के हुए?"

"मैं तो इस खानाबदोश जिन्दगी से तंग आ गई हूँ। जी चाहता है, नौकरी छोड़ दूँ," शशि तमक कर बोली।

"शशि, क्लास वन नौकरी में हो, फिर भी असंतुष्ट। तनिक उनसे पूछो, जो बेकारी, बेरोजगारी से अभिशप्त हैं।"

"हर चार पाँच वर्ष में स्थानान्तरण···। शहर-शहर छूटते वाले करन और सामान की ढुलाढोली करते रहना। सच, मैं तो ऊब गई हूँ···।"

"शशि, तुमने खुली आँखों से इस अखिल भारतीय बदलो वाली नौकरी को स्वीकारा था। अब उस उत्तरदायित्व से क्यों कतरा रही हो?

दोनों अन्दर थे। क्या दरवाजा थपथपाऊँ? उनके सुख में बाधा
करूँ? कुछ नहीं कर पा रहा था मैं। अपने ही घर में घुसने क
नहीं जुटा पा रहा था। कैसी दयनीय स्थिति थी मेरी। ग्रीन पार्क
के निर्णय पर मुझे खेद हो रहा था।

लगभग तीस मिनट तक मैं लॉन में विस्थापित-सा प्रतीक्षा
रहा। ग्यारह बजने लगे थे। मेरा धैर्य चुकने लगा। मैं दरवाजे त
धीमे से दस्तक दी।

"कम इन!" अन्दर से मालू की आवाज आई—कड़कदार,
भावना से ओतप्रोत।

"दरवाजा तो खोलो," मैंने उखड़कर कहा।

"खुला है।"

कमाल का दु:साहस दिखाते हैं ये लोग! उन्मुक्तता और वह
श्राम दरवाजे के पीछे।

मैंने दरवाजे को धकेला और अन्दर पहुँच गया।

घोर, अप्रत्याशित, सुखद आश्चर्य!

गोल मेज पर दो खाली गिलास और आधी भरी मेरी स्क
बोतल। ऐशट्रे में भरे सिगरेट के टोंटे। एक आरामकुर्सी पर मा
उसके सामने दूसरी कुर्सी पर वही था—नाम रमन, काम निरर्थक

"मालू ने हमें बोला है तुम्हारे बारे में मिस्टर अमर। अपील
हम तुम्हें बाइज्जत बरी करने की सिफारिश करेंगे। तुमको पता
हमारी कलम में कितनी ताकत है! जो कुछ हम लिखते हैं मन्त्री
मानना पड़ता है।"

मैं स्तंभित-सा खड़ा था—कभी मालू तो कभी रमन, तो कभी
बिस्तरे के बीच मेरी दृष्टि पेंडुलम सी झूल रही थी। रमन की कल
ताकत का मुझे पता था। पर उससे भी ज्यादा ताकतवर चीज है
इस पिघले हुए सच से यह मेरा पहला साक्षात्कार था।

मेरी निगाह मालू के मुख पर टिक गई। वह बेहद खुश नजर अ
थी। उसकी आंखों में विजय की चमक थी। मैंने गौर से अपने बिस्त
देखा। मुझे तो वहाँ विनाश के कोई चिह्न नजर नहीं आ रहे थे।

संबंध

और दिन की अपेक्षा शशि दफ्तर से देर से लौटी। क्लिनिक में मरीजों से घिरे बैठे डाक्टर प्रेम कुमार ने पत्नी के उतरे चेहरे और आंखों में उभरी तनाव-भरी निराशा को स्पष्ट देख आगत त्रासदी की कल्पना कर ली।

वह नहीं उखड़े। उखड़ने का कारण भी तो नहीं था। कई महीनों से शशि के सिर पर 'डेमोक्लीज' की तलवार लटक रही थी। नागपुर से दिल्ली आए पूरे पांच वर्ष हो गए थे और डेरे-तंबू उखड़ने की वेला आ पहुँची थी।

अगले आधे घंटे में अंतिम मरीज को निपटा कर डॉक्टर प्रेम अंदर पहुँचे। शशि के मुख पर उदासी और चिंता की धूप-छांव तैर-उतरा रही थी। उन्होंने पूछा, "कहाँ के हुए ?"

"मैं तो इस खानाबदोश जिन्दगी से तंग आ गई हूं। जी चाहता है, नौकरी छोड़ दूं," शशि तमक कर बोली।

"शशि, क्लास वन नौकरी में हो, फिर भी असंतुष्ट। तनिक उनसे पूछो, जो बेकारी, बेरोजगारी से अभिशप्त हैं।"

"हर चार पांच वर्ष में स्थानांतरण··· । शहर-शहर चूल्हे काले करना और सामान की ढकाढोली करते रहना। सच, मैं तो ऊब गई हूं···।"

"शशि, तुमने खुली आंखों से इस अखिल भारतीय बदली वाली नौकरी को स्वीकारा था। अब उस उत्तरदायित्व से क्यों कतरा रही हो ?

दोनों अन्दर थे। क्या दरवाजा थपथपाऊँ? उनके सुख में बाधा उत्पन्न करूँ? कुछ नहीं कर पा रहा था मैं। अपने ही घर में घुसने का साहस नहीं जुटा पा रहा था। कैसी दयनीय स्थिति थी मेरी। फ्रीन पार्क से आने के निर्णय पर मुझे खेद हो रहा था।

लगभग तीस मिनट तक मैं लॉन में विस्थापित-सा प्रतीक्षारत खड़ा रहा। ग्यारह बजने लगे थे। मेरा धैर्य चुकने लगा। मैं दरवाजे तक गया। धीमे से दस्तक दी।

"कम इन!" अन्दर से मालू की आवाज आई—कड़कदार, विजय भावना से ओतप्रोत।

"दरवाजा तो खोलो," मैंने उखड़कर कहा।

"खुला है।"

कमाल का दुःसाहस दिखाते हैं ये लोग! उन्मुक्तता और वह भी सरे आम दरवाजे के पीछे।

मैंने दरवाजे को धकेला और अन्दर पहुँच गया।

घोर, अप्रत्याशित, सुखद आश्चर्य!

गोल मेज पर दो खाली गिलास और आधी भरी मेरी स्कॉच की बोतल। ऐशट्रे में भरे सिगरेट के टोंटे। एक आरामकुर्सी पर मालू और उसके सामने दूसरी कुर्सी पर वही था—नाम रमन, काम निरर्थक दमन।

"मालू ने हमें बोला है तुम्हारे बारे में मिस्टर अमर। अपील करो हम तुम्हें बाइज्जत बरी करने की सिफारिश करेंगे। तुमको पता है हमारी कलम में कितनी ताकत है! जो कुछ हम लिखते हैं मन्त्री तक को मानना पड़ता है।"

मैं स्तंभित-सा खड़ा था—कभी मालू तो कभी रमन, तो कभी अपने बिस्तरे के बीच मेरी दृष्टि पेंडुलम सी झूल रही थी। रमन की कलम की ताकत का मुझे पता था। पर उससे भी ज्यादा ताकतवर चीज होती है, इस पिघले हुए सच से यह मेरा पहला साक्षात्कार था।

मेरी निगाह मालू के मुख पर टिक गई। वह बेहद खुश नजर आ रही थी। उसकी आँखों में विजय की चमक थी। मैंने गौर से अपने बिस्तरे को देखा। मुझे तो वहाँ विनाश के कोई चिह्न नजर नहीं आ रहे थे। □

संबंध

र दिन की अपेक्षा शशि दफ्तर से देर से लौटी। क्लिनिक में मरीजों से रे बैठे डॉक्टर प्रेम कुमार ने पत्नी के उतरे चेहरे और आँखों में उभरी ाव-भरी निराशा को स्पष्ट देख आगत त्रासदी की कल्पना कर ली।

वह नहीं उखड़े। उखड़ने का कारण भी तो नहीं था। कई महीनों से शि के सिर पर 'डेमोक्लीज' की तलवार लटक रही थी। नागपुर से ल्ली आए पूरे पाँच वर्ष हो गए थे और डेरे-तंबू उखड़ने की वेला आ हुँची थी।

अगले आधे घंटे में अंतिम मरीज को निपटा कर डॉक्टर प्रेम भीतर हुँचे। शशि के मुख पर उदासी और चिंता की धूप-छाँव तैर-उतरा रही ी। उन्होंने पूछा, "कहाँ के हुए?"

"मैं तो इस खानाबदोश जिन्दगी से तंग आ गई हूँ। जी चाहता है, नौकरी छोड़ दूँ," शशि तमक कर बोली।

"शशि, सम्मान जनक नौकरी में हो, फिर भी असंतुष्ट। तनिक उनमें सोचो, जो बेकारी, बेरोजगारी से अभिशप्त हैं।"

"हर बार पाँच वर्ष में स्थानान्तरण···। शहर-शहर चूल्हे बाँधे फिरना और सामान की ढोवाढोवी करते रहना। बस, मैं तो ऊब गई हूँ···।"

"शशि, तुमने खुली आँखों से इस अखिल भारतीय स्तर की नौकरी को स्वीकारा था। अब उस उत्तरदायित्व से क्यों कतरा रही हो?

तनिक इसके दूसरे पक्ष के बारे मे सोचो। इसी सेवा की बदौलत हमें काश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से···पूरा भारतवर्ष देखने का दुर्लभ अवसर मिल गया। इस महान देश के विभिन्न क्षेत्रों, वहाँ के निवासियों, उनकी संस्कृति से प्रत्यक्ष परिचय कितने लोगों के भाग्य मे होता है?" कहकर डॉक्टर प्रेम ने मुस्करा कर पूछा, "कहाँ के हुए ?"

"शिलाँग फेंका है !" शशि ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा।

"वाह ! मजा आ गया। पूर्वोत्तर भारत को देखने का मौका मिला है। असम, मेघालय, त्रिपुरा, सब राज्यों मे घूमेंगे। कहते हैं···।"

शशि ने उनकी बात बीच ही में काटकर कहा, "छवि की पढाई को लेकर मैं रिप्रेजेंट करने की सोच रही थी।"

"छोड़ो डार्लिंग, तुम भी असंख्य सरकारी सेवकों की भाँति, प्रशासनिक प्रक्रिया मे अड़चनें डालना चाहती हो। चलो पूर्वोत्तर। एक नये भारत की खोज करेंगे।"

दिल्ली जैसे महानगर में, जहाँ लाखो सरकारी कर्मचारी निवास करते हों, जहाँ प्रतिमाह हजारो कर्मचारियों की बदली होती हो, वहाँ ऐसे दृश्य देखने को नही मिलते। जिस समय ठीक साढ़े छह् बजे एन० ई० ऐक्सप्रेस चली, स्टेशन पर लगभग एक दर्जन से अधिक व्यक्तियो की आँखें छलछला आयी। पुन्नी बुआ तो सचमुच रो दी। रामप्रसाद ने कुमार साहब के पाँव छू लिए थे।

गाड़ी स्टेशन से बाहर निकल आई तो डॉक्टर साहब ने अपनी सीट पर उपहारों के ढेर को देखा और उनका अन्तर भी जैसे भावविह्वल हो गया, फूलों के गुलदस्ते, मिठाई, नमकीन के डिब्बे और न जाने क्या-क्या। कुछ देर बाद जब वह प्रकृतिस्थ हुए तो बोले, "शशि, तुम्हारा तबादला होता है तो मेरे सामने यही सबसे ज्यादा बड़ी समस्या पैदा हो जाती है।"

"वह क्या ?" शशि ने घोर आश्चर्य से पूछा।

"पुराने मानवीय संबंधो के अंतिम संस्कार से उत्पन्न विषाद और नए संबंधों को जन्म देने की प्रसव पीड़ा।"

"पापा, पुराने संबंधो को भूलने में तकलीफ जरूर होती है, पर आप जैसे व्यक्ति के लिए नए संबंधों को बनाने मे कोई विशेष श्रम नही करना

पड़ता । आप जैसा त्यागी, संतोषी, संकोची, सहिष्णु और सद्‌भाव वाला व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को अपना दास बना सकता है।" छवि ने हँस कर कहा।

"देखो शशि, तुम्हारी बेटी ने क्या आउटस्टैंडिंग गोपनीय रिपोर्ट दी है मुझे।"

"ठीक ही तो कह रही है। आप तो पिछले जन्म में जरूर साधु-महात्मा रहे होंगे, तभी न इस जन्म में···।"

"मैं इस पुनर्जन्म के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता।"

"मेरी बात तो पूरी हो जाने दीजिए। आप जहाँ भी रहते हैं, आपके पड़ोसी आपको प्यार करने लगते हैं। वे आपकी इज्जत करते हैं। क्यों? इसीलिए न कि आप तन, मन, धन से अपने लोगों की सेवा करते हैं। आधी रात को कोई बुलाने आ जाए आप उसके साथ हो लेते हैं, गरीबों को दवा मुफ्त देते हैं···।"

"अरे भाई, वह तो डॉक्टरों को नमूने के लिए मिली दवाएँ होती हैं।"

"आपको पता है, ये छोटे-बड़े प्राइवेट डॉक्टर उन गोलियों के खोल, मरीजों को दे, उनका पैसा भी वसूल कर लेते हैं।"

"बेईमानी और भ्रष्ट आचरण का तो कोई इलाज मेरे पास है नहीं, शशि ! मैं तो सिर्फ इतना जानता हूँ, सच्ची मानसिक शांति तथा भावनात्मक संतोष के लिए दौलत नहीं, मानवता की सेवा करना जरूरी है। अपने साथियों के कष्टों को निःस्वार्थ भाव से दूर करने से जो सुख मिलता है, वह अवर्णनीय है।"

"आज तो यह एक दुर्लभ स्थिति हो गई है। सब स्वार्थ में लिप्त हैं। खून पानी हो गया है। पैसे के लिए भाई-भाई का संबंध समाप्त हो जाता है।" छवि ने एक पुस्तक उठाते हुए कहा।

"पैसा एक बड़ी सच्चाई है, पर सेवा के पुरस्कारस्वरूप जो प्रतिष्ठा, प्रेम तथा आत्मीयता मिलती है, वह खरीदनीय ही नहीं, धन के संदर्भ में अमूल्य है !" शशि ने टिप्पणी की। नार्थ-ईस्ट एक्सप्रेस बड़ी तेज चाल से अपने गन्तव्य की ओर भागती चली जा रही थी।

···कुछ ही दिनों में वे लोग शिलॉग में स्थापित हो गए। उन्हें विभागीय आवास आवंटित हो गया। चार कमरों का खूबसूरत घर। झील से दस मिनट का पैदल रास्ता। उनकी खिड़की से नीचे रेसकोर्स और पूरी शिलॉग घाटी नजर आती थी।

छवि को मेघालय कॉलेज में दाखिला मिल गया। घर से कोई दो किलोमीटर दूर। बस की व्यवस्था न होने से उसे कॉलेज आने-जाने में थोड़ी असुविधा होती थी।

शशि को जो आवास आवंटित हुआ, वह ऐसे क्षेत्र में था जहां विभिन्न व्यवसाय के व्यक्ति रहते थे। घर भी सरकारी नही, सरकार द्वारा किराए पर लिया हुआ था।

शशि तो अपने विभागीय क्रियाकलापों मे खोई हुई थी। नई जगह। नए लोग। नई कार्य-संस्कृति। नागपुर, दिल्ली और बंगलौर से एकदम भिन्न प्रकार की। वह तो गहरे पानी में डूब-उतरा रही थी।

डॉक्टर कुमार के पास मरीज आने लगे थे। शिलॉग की आबोहवा बहुत अच्छी थी। अतः सामान्य रूप से वहां लोग बीमार नही पड़ते, पर नलों के पानी में लाल मिट्टी आती। पर्वतीय सर्पाकार सड़कों पर चढ़ते ट्रक डीजल का इतना विषैला धुआं उगलते कि प्रदूषण अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाता। पेट और फेफड़ों के रोगियों की संख्या सबसे ज्यादा थी।

जल्दी ही डॉक्टर कुमार के अपने सारे पड़ोसियों से मधुर और शिष्ट संबंध स्थापित हो गए। केवल एक कर्नल को छोड़ कर। सेवा-निवृत्त इस कर्नल का मकान ठीक सामने था। पड़ोसियों ने बताया था कि कर्नल बड़ा घमंडी, बदमिजाज, अशिष्ट और झगड़ालू व्यक्ति है। उसके पास पेंशन मे लाखों रुपये की संपत्ति है। इसी के कारण उसका दिमाग चढ़ा रहता है।

एक दिन डॉक्टर कुमार का सुबह घूमने जाते हुए कर्नल से सामना हो गया। उन्होंने 'गुड मार्निंग' कर परिचय की शुरूआत करने की चेष्टा की, पर प्रत्युत्तर में मिली घोर उदासीनता। एक ठंडी दृष्टि, अपरिचय के आवरण मे गुँथी।

एक दिन एक पड़ोसी ने बताया कि कर्नल के परिवार मे केवल तीन

णी हैं। वह, उसकी नाटी किन्तु मोटी पत्नी तथा एक बेटा जो मेघालय कॉलेज मे पढ़ता है और जिसे एकमात्र होने के कारण, माँ-बाप ने लाड-प्यार करके बरबाद कर दिया है। शीघ्र ही इसका प्रमाण भी मिल गया।

एक दिन छवि ने कॉलेज की छुट्टी कर दी। डॉक्टर कुमार ने उसे कुरेदा तो उसने उन्हे सब कुछ साफ-साफ बता दिया। कर्नल का लड़का करन बोरो उसी के साथ पढ़ता था और वह लगातार उसके साथ दुर्व्यवहार करता रहता था। रास्ते मे फब्तियाँ कसना। कॉलेज मे छेड़छाड़। क्लास में कागज के गोले फेंककर मारना। कल तो उसने हद कर दी। उसे प्रेमपत्र लिखने का दुःसाहस कर दिया।

"ऐसा करो बेटा, तुम इसे 'इग्नोर' करो। अवहेलना से उसके प्यार का जोश ठंडा पड़ जाएगा।" डॉक्टर कुमार ने छवि को समझाया।

छवि की समझ मे आ गया। उसके पापा के बताए आचरण पर अमल किया। पर कुछ लाभ नही हुआ। उसके विरोध न करने का देकरन ने गलत अर्थ निकाला। वह उससे और ज्यादा स्वतन्त्रता लेने लगा।

एक दिन शाम के धुंधलके मे, छवि एक पत्र पोस्ट करके लौट रही थी। ढलवान के मोड़ पर देकरन से सामना हो गया।

उद्दंड देकरन का इतना दुःसाहस। छवि स्तब्ध रह गई। सार्वजनिक स्थान पर, यूँ सरेआम उसने छवि का हाथ पकड़ लिया। पहले तो वह सकपकाई, थोड़ी भयभीत हुई। फिर उसने साहस जुटाया। एक झटके से हाथ छुड़ाया। क्रोध की पवित्र अग्नि उसके अन्तर मे धधक उठी। उसका जी चाहा कि वह इस भटके नवयुवक के एक चाँटा रसीद कर दे। पर बीच सड़क मे इस तरह का नाटक शालीनता नही होगी। अतः खून का घूँट पी वह वहाँ से चली आई।

ममी अभी आई नही थीं। पापा अकेले थे। अतः उसने उन्हें सारी बातें साफ-साफ बता दी।

डॉक्टर कुमार हतप्रभ रह गए। पड़ोस मे ऐसा अशोभनीय व्यवहार। नही, मामला इतना सरल नही जितना वह सोच रहे थे। क्यो न इसे आपसी बातचीत से सुलझा लिया जाए?

डॉक्टर कुमार उठे। स्वेटर के ऊपर शॉल डाली। छड़ी ली और तेज चाल से सामने कर्नल के घर पहुँच गए। उस समय सेवा-निवृत्त फौजी अंग्रेज बैठा शराब पी रहा था। रसोई में कुछ पकने की सुगन्ध आ रही थी। उसकी पत्नी खाना बना रही थी।

डॉक्टर कुमार ने कर्नल से अपना परिचय दिया और बोले, "मैं आपसे कई दिनों से मिलना चाहता था। आज मजबूरन मुझे आना पड़ा। क्षमा करें, मैं आपके पास टेकचन्द की शिकायत लेकर आया हूँ।"

"क्या किया उसने ?" कर्नल ने बड़ी अशिष्टता से पूछा।

डॉक्टर कुमार ने एक ही सांस में, संक्षिप्त रूप में, सारी कथा सुना दी और विनम्र स्वर में कहा, "देखिए पड़ोस में रहने वाली हर महिला बहिन-बेटी होती है। कृपया टेकचन्द से कहें कि वह छवि को तंग करना बंद कर दे।"

"डॉक्टर, जो कुछ तुमने कहा, वह सच हो सकता है। पर क्या तुम ऐसा नहीं सोचते कि इसमें छवि का भी हाथ हो ? कहीं वह तो मेरे बेटे को नहीं फुसला रही ?" कर्नल ने अश्लील मुद्राएँ बनाते हुए कहा।

"कर्नल !" डॉक्टर कुमार क्षण-भर को उत्तेजित हुए। फिर वह शांत स्वर में बोले, "मैं अपनी बेटी को अच्छी तरह जानता हूँ, वह ऐसा कभी नहीं कर सकती।"

"मैं अपने बेटे को खूब अच्छी तरह जानता हूँ, वह भी ऐसा कभी नहीं कर सकता।"

"तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ ?" डॉक्टर प्रेम फिर से उत्तेजित होने लगे।

"यह तो मैं नहीं कह सकता। पर एक बात है, जिस सरकारी मकान में तुम रह रहे हो, वहाँ पहले भी सरकारी अफसर रहते आए हैं। उनकी भी जवान लड़कियाँ थीं। पर टेकरल ने उन्हें तो कभी नहीं छेड़ा ! क्या आपकी लड़की फिल्म ऐक्ट्रेस है ?"

डॉक्टर कुमार निराश हो गए। वह सोचते थे कि एक अच्छे पड़ोसी बातचीत से इस समस्या का समाधान खोज लेंगे। पर कर्नल पक्षपात और असहयोग से काम ले रहा था। फिर भी उन्होंने

शांत स्वर मे कहा, "देखिए, बात को उलझाने से कोई लाभ नही होगा। यह मेरी बेटी की प्रतिष्ठा…।"

कर्नल ने उनकी बात बीच ही मे काट, बौखला कर कहा, "मुझे तुम्हारी बेटी से कुछ नही लेना-देना। तुम बेकार मे देकरन पर इलजाम लगा रहे हो। वह एक अच्छा, सुशील, सभ्रात परिवार का है। उसे खासी लडकियो की कमी है क्या ? वह क्यो हिन्दुस्तानी लडकी की तरफ मुँह करेगा ? मैं तो कहता हूँ, तुम जाकर अपनी लडकी को काबू मे करो। यह सब उसी की शह पर हो रहा है। क्यो बेकार मे मेरी शाम खराब कर रहे हो।"

डॉक्टर कुमार ने स्वय को अपमानित महसूस किया। पडोसियो के बीच सौहार्द तथा शालीनता-भरे व्यवहार के पक्षपाती वह इस अप्रत्याशित स्थिति से थोडे हिल गए। शीघ्र ही उन्होने स्वय को संयत कर लिया। उठ कर चलते हुए बोले, "क्षमा करें, मैंने आपका अमूल्य समय नष्ट किया।"

"ठीक है। दूसरो पर पत्थर फेंकने से पहले अपने घर की देखभाल भी जरूरी होती है।"

जले पर नमक छिडकने जैसा था कर्नल का यह कथन। उदास और चिंतित से वह अपने घर लौट आए। छवि अपने कमरे मे पढ रही थी। शशि दफ्तर से आ रसोईघर में व्यस्त थी।

रात के खाने पर शशि ने पूछा कि क्या बात है जो वह टाल गए। मन-ही-मन वह छवि की सुरक्षा व्यवस्था की योजना बनाने मे व्यस्त थे। उनकी समझ मे ऐसी कोई तरकीब नही आ रही थी, जो पूर्णरूप से सुरक्षित हो। फिर भी वह देकरन की अगली शरारत का इतजार कर रहे थे। हाँ, उन्होंने छवि को यह कह दिया था कि वह लडका जो भी शरारत करे उसे वह छिपाए नही।

तीसरे-चौथे दिन कॉलेज के बरामदे मे देकरन ने छवि को घेर लिया और व्यंग्य-भरे स्वर मे बोला, "तुम्हारी इतनी हिम्मत। मेरे घर पर शिकायत करने के लिए अपने बाप को भेज दिया। ठीक है। मैं तुम्हें देख लूँगा। तबियत साफ न कर दी तो मेरा नाम बदल देना।"

और खलनायको की-सी मुद्राएँ बनाता, उसे धमका कर वह चला

क्या करूं ? देकरन पिछले दो घंटे से मछली की तरह दर्द से तड़प रहा है।"

"मैं अभी चलता हूं," डॉक्टर प्रेम ने शॉल ओढ़ी और अपना बैग ले कर्नल के साथ हो लिए।

सचमुच देकरन की दशा बहुत खराब थी। उन्होंने तत्काल उसे एक इंजेक्शन लगाया। आधे-पौने घंटे तक प्रतीक्षा की। पीड़ा-निवारक दवा ने असर किया। देकरन सो गया तो वह लौट आए।

कर्नल ने उन्हें फीस देनी चाही तो वह बोले, "मैं आपसे फीस नहीं लूंगा।"

"क्यों ?"

"पड़ोसी धर्म का निर्वाह करना चाहता हूं।"

"मतलब ?"

"कर्नल साहब, पड़ोसी एक बड़े परिवार के सदस्य जैसे होते हैं। घर वालों से पैसे लेना कोई अच्छी बात है ?"

"पर आपने मेरे बेटे की जान···।"

कर्नल की बात पूरी होने से पूर्व डॉक्टर प्रेम बोले, "कर्नल साहब, काश पड़ोसी प्यार से रह पाते। यदि ऐसा हो तो यह दुनिया कितनी खुशनुमा हो जाए, प्यार तथा शांति की आभा चारों तरफ बिखर जाए।"

डॉक्टर साहब लौट आए पर छोड़ आए अपने पीछे एक नया कर्नल—स्तंभित, अशांत और प्रायश्चित की अग्नि में तप्त हो पुनर्निर्मित होता एक प्राणी।

रविवार की सुबह कर्नल अपने बेटे को लेकर डॉक्टर साहब के पास आया। उसके हाथों में था फूलों का खूबसूरत गुलदस्ता। देकरन लाया था चाकलेट केक।

"डॉक्टर, मैं तुमसे क्षमा मांगने आया हूं। सचमुच तुम लोग 'ग्रेट' हो। जो इन्सान दुश्मन की भी मदद करे, वह सच में महान होता है।"

भिभूत होकर कहा।

की सुबह एक नई चटक और खुशहाली लेकर आई थी।

का पुनर्निर्माण हो चुका था। देकरन छवि को 'बहिन' कहकर

कर रहा था।

रेगिस्तान में धुंधलका

पेट में भड़की आग और दावानल में बहुत फर्क होता है। एकदम जुकाम और कैंसर के अन्तर जैसा। जुकाम का इलाज करो तो तीन दिन लेता है ठीक होने में। न करो तो खुद-ब-खुद आधे हफ्ते में विदा हो जाता है।

और कैंसर? जंगल में लगी आग।

सामने मेज पर फाइलें थीं। पर कुमार साहब महसूस कर रहे थे, जैसे यह पूरा मुल्क कैंसर वार्ड में तब्दील हो गया है। यहाँ बीमार कम, लेकिन डॉक्टर ज्यादा कैंसर-ग्रस्त हैं।

आज सुबह मामाजी घर आये थे—परेशान और टूटे-से। छोटे व्यापारी हैं। दक्षिण दिल्ली में किराने की दुकान है। कल रात वे [illegible] काम था। सैम्पल भरने वाले दो इन्स्पेक्टर आये। दो हजार रुपये ले गये।

"[illegible] का क्या कसूर, जब [illegible] हो। अपने ही भांजे से इन दुश्वारियों की आपने शिकायत की है।" वह उठकर चले थे।

"मुझे क्या पता बेटा, आजकल इन्स्पेक्टर-राज है। सुबह से शाम तक ग्राहक कम, इन्स्पेक्टर ज्यादा आते हैं। पानी में रहकर मगर से बैर करके कितने दिन जिंदा रहा जा सकता है?"

वह निढाल हो रहे थे। किंकर्तव्यविमूढ़-से बैठे रहे।

"दुकान के अन्दर चूहे नुकसान करते हैं और दुकान के बाहर ये मुझे

[illegible]

ई [illegible]

१, [illegible]

अ, [illegible]

[illegible]

छवि ने पापा को इस घटना के बारे में कुछ नहीं बताया। पर एक घंटे बाद कर्नल काला नाग-सा फुफकारता हुआ आया और बरसने लगा, "देखो, तुम्हारी लड़की ने मेरे लड़के का क्या हाल किया है।"

डॉक्टर कुमार ने देखा—कर्नल अपने बेटे की उँगली पकड़े खड़ा था। देवरन की एक आँख नीली पड़ गई थी और उसका गाल सूजा हुआ था।

"मैं तुम्हारी इस घमंडी लड़की के हाथ-पाँव तोड़ कर रख दूँगा!" कर्नल चीखे जा रहा था।

"कर्नल साहब, थोड़ी शांति रखिए। क्या आप यह नहीं सोचते कि इस घटना ने एक बात साफ कर दी है। मेरी बेटी आपके बेटे को अभद्र व्यवहार करने के लिए यह नहीं सजा दे रही है।"

"मैं तुम्हें और तुम्हारी बेटी को देख लूंगा। तुम लोगों ने हमें समझा क्या है? हम तुम्हारी हस्ती मिटा देंगे।"

काफी देर तक कर्नल चीखता-चिल्लाता रहा। सारे पड़ोसी इकट्ठे हो गए। डॉक्टर कुमार को डरा-धमका कर कर्नल चला गया।

एक पड़ोसी से रहा नहीं गया। उसने डॉक्टर साहब से पूछा, "डॉक्टर साहब, कर्नल चीखता रहा। आप चुपचाप क्यों सुनते रहे?"

"देखो भाई, जब कोई तुम्हें देखकर भौंकना शुरू करे तो क्या तुम भी उस पर भौंकना शुरू कर दोगे? घृणा, असहिष्णुता, घमंड के विष को प्रेम, धैर्य और संयम से नष्ट किया जा सकता है।" डॉक्टर कुमार ने गंभीर स्वर में कहा। परन्तु उन्हें इस घटना से बड़ा मानसिक आघात पहुँचा। वह क्षुब्ध थे।

···काफी दिनों तक शांति रही। छवि कालेज जाती। देवरन को उससे छेड़छाड़ करने का साहस नहीं होता।

एक रात को बड़ी विचित्र घटना घटी।

सब सो गए थे। शायद रात के दो बजे थे। किसी ने कॉलबेल बजाई। कोई बीमार होगा, यही सोचकर डॉक्टर कुमार उठे। उन्होंने दरवाजा खोला। सामने एक सुखद आश्चर्य उपस्थित था।

"डॉक्टर, आय एम सारी। इतनी रात तुम्हें डिस्टर्ब कर रहा [illegible]। पर

गया।

छवि कांप गई। इस तरह, मूर्ख और उच्छृंखल नवयुवक का क्या भरोसा। कहीं उसने सचमुच इससे कोई अभद्रता कर दी तो?

घर आकर, उसने पापा को सारी बातें बता दीं। कुछ क्षण तक विचारमग्न रहने के बाद डॉक्टर कुमार बोले, "छवि, अब तुम्हें दुर्गा के समान बनना होगा। आत्मरक्षा में दोषी के प्रति किसी प्रकार की मुरौवत नहीं होगी," डॉक्टर कुमार ने प्रशांत स्वर में कहा।

···रविवार का दिन। झील के लॉन में सैलानियों की भीड़ थी। दूर पुल के समीप, ढेर सारे कमल उग रहे थे। सारे दिन पढ़ते-पढ़ते बोर हो गई छवि। वह यहाँ घूमने चली आई थी।

शाम के धुंधलके झील के हरे जल पर अठखेलियाँ करने लगे तो छवि घर की ओर रवाना हो गई। अभी वह मुख्य सड़क पर पहुँची ही थी कि सामने से देकरन आ गया। वह चुपचाप निकल जाना चाहती थी, पर देकरन ने उसका रास्ता रोक लिया। वह उससे बचना चाहती थी, पर देकरन उसके मार्ग में बाधा बनकर खड़ा हुआ था।

"मेरा रास्ता छोड़ो," छवि ने दृढ़तापूर्वक कहा।

देकरन कुछ नहीं बोला। उसने बिजली की-सी गति से उसकी कलाई कसकर पकड़ ली और अपनी तरफ खींच, आलिंगनबद्ध करने की चेष्टा की।

छवि भयभीत हो गई। फिर उसे पापा की सीख याद आई। उसके अंदर एक नई शक्ति और स्फूर्ति का संचार हो गया। उसने एक तेज झटके से अपना हाथ छुड़ाया और कस कर एक मुक्का देकरन के मुँह पर मारा।

शायद देकरन इस आक्रमण के लिए प्रस्तुत नहीं था। वह सड़क पर एक ओर लुढ़क गया। भीड़ इकट्ठी हो गई। छवि वहाँ नहीं रुकी। वह शेरनी की तरह अपने घर की ओर बढ़ गई।

वह घर पहुँची—विजयी योद्धा-सी। 'पहले मारे सो मीर', उसने यह कहावत पढ़ी थी। अब इसे अपने जीवन में चरितार्थ होते हुए देख लिया था।

छवि ने पापा को इस घटना के बारे में कुछ नहीं बताया। पर एक घंटे बाद कर्नल काला नाग-सा फुफकारता हुआ आया और बरसने लगा, "देखो, तुम्हारी लड़की ने मेरे लड़के का क्या हाल किया है।"

डॉक्टर कुमार ने देखा—कर्नल अपने बेटे को उँगली पकड़े खड़ा था। देकरन की एक आंख नीली पड़ गई थी और उसका गाल सूजा हुआ था।

"मैं तुम्हारी इस घमंडी लड़की के हाथ-पाँव तोड़ कर रख दूंगा!" कर्नल चीखे जा रहा था।

"कर्नल साहब, थोड़ी शांति रखिए। क्या आप यह नहीं सोचते कि इस घटना ने एक बात साफ कर दी है। मेरी बेटी आपके बेटे को अभद्र व्यवहार करने के लिए सह नहीं सजा दे रही है।"

"मैं तुम्हें और तुम्हारी बेटी को देख लूंगा। तुम लोगों ने हमें समझा क्या है? हम तुम्हारी हस्ती मिटा देंगे।"

काफी देर तक कर्नल चीखता-चिल्लाता रहा। सारे पड़ोसी इकट्ठे हो गए। डॉक्टर कुमार को डरा-धमका कर कर्नल चला गया।

एक पड़ोसी से रहा नहीं गया। उसने डॉक्टर साहब से पूछा, "डॉक्टर साहब, कर्नल चीखता रहा। आप चुपचाप क्यों सुनते रहे?"

"देखो भाई, जब कोई तुम्हें देखकर भौंकना शुरू करे तो क्या तुम भी उस पर भौंकना शुरू कर दोगे? घृणा, असहिष्णुता, घमंड के विष को प्रेम, धैर्य और संयम से नष्ट किया जा सकता है।" डॉक्टर कुमार ने गंभीर स्वर में कहा। परन्तु उन्हें इस घटना से बड़ा मानसिक आघात पहुँचा। वह क्षुब्ध थे।

…काफी दिनों तक शांति रही। छवि कालेज जाती। देकरन को उससे छेड़छाड़ करने का साहस नहीं होता।

एक रात को बड़ी विचित्र घटना घटी।

सब सो गए थे। शायद रात के दो बजे थे। किसी ने कॉलबेल बजाई। कोई बीमार होगा, यही सोचकर डॉक्टर कुमार उठे। उन्होंने दरवाजा खोला। सामने एक सुखद आश्चर्य उपस्थित था।

"डॉक्टर, आय एम सारी। इतनी रात तुम्हें डिस्टर्ब कर रहा हूँ। पर

क्या करूं? देकरन पिछले दो घंटे से मछली की तरह दर्द से तड़प रहा है।"

"मैं अभी चलता हूं," डॉक्टर प्रेम ने कोट मांगी और अपना बैग ले कर्नल के साथ हो लिए।

सचमुच देकरन की दशा बहुत खराब थी। उन्होंने तत्काल उसे एक इंजेक्शन लगाया। आधे घंटे तक प्रतीक्षा की। पीड़ा-निवारक दवा ने असर किया। देकरन सो गया तो वह लौट आए।

कर्नल ने उन्हें फीस देनी चाही तो वह बोले, "मैं आपसे फीस नहीं लूंगा।"

"क्यों ?"

"पड़ोसी धर्म का निर्वाह करना चाहता हूं।"

"मतलब ?"

"कर्नल साहब, पड़ोसी एक बड़े परिवार के सदस्य जैसे होते हैं। घर वालों से पैसे लेना कोई अच्छी बात है ?"

"पर आपने मेरे बेटे की जान···।"

कर्नल की बात पूरी होने से पूर्व डॉक्टर प्रेम बोले, "कर्नल साहब, काश पड़ोसी प्यार से रह पाते। यदि ऐसा हो तो यह दुनिया कितनी खुशनुमा हो जाए, प्यार तथा शांति की आभा चारों तरफ बिखर जाए।"

डॉक्टर साहब लौट आए पर छोड़ आए अपने पीछे एक नया कर्नल—स्तंभित, अशांत और प्रायश्चित की अग्नि में तप्त हो पुनर्निर्मित होता एक प्राणी।

रविवार की सुबह कर्नल अपने बेटे को लेकर डॉक्टर साहब के पास आया। उसके हाथों में था फूलों का खूबसूरत गुलदस्ता। देकरन लाया था चाकलेट केक।

"डॉक्टर, मैं तुमसे क्षमा माँगने आया हूँ। सचमुच तुम लोग 'ग्रेट' हो। जो इन्सान दुश्मन की भी मदद करे, वह सच में महान होता है।" कर्नल ने अभिभूत होकर कहा।

रविवार की सुबह एक नई चटक और खुशहाली लेकर आई थी। मानव संबंधों का पुनर्निर्माण हो चुका था। देकरन छवि को 'बहिन' कहकर संबोधित कर रहा था। ☐

रेगिस्तान में धुंधलका

घर में भड़की आग और दावानल में बहुत फर्क होता है। एकदम जुकाम और कैंसर के अंतर जैसा। जुकाम का इलाज करो तो तीन दिन लगता है ठीक होने में। न करो तो खुद-ब-खुद आठ दिनों में विदा हो जाता है।

और कैंसर? जंगल में लगी आग।

सामने मेज पर फाइलें थीं। घर कुमार साहब महसूस कर रहे थे जैसे यह पूरा मुल्क कैंसर वार्ड में तब्दील हो गया है। यहाँ कैंसर कम, लेकिन डॉक्टर ज्यादा कैंसर-ग्रस्त हैं।

आज सुबह सालाजी घर आये थे—परेशान और व्यथित। छोटे व्यापारी हैं। दक्षिण दिल्ली में किराने की दुकान है। कल रात से फिर किसी काम की सीलिंग करने वाले दो इंस्पेक्टर आये। दो हजार रुपये ले गये।

'लेने वाले का क्या कसूर, वह तो अपना काम करते हैं। आप ही लोगों ने इन हरामियों की आदतें खराब की हैं।" वह उदास बैठे थे।

'अरे क्या बात कर रहे हो, आजकल इंस्पेक्टर-राज है। दुकान में ग्राहक कम, इंस्पेक्टर ज्यादा आते हैं। सालों से पहले बरस से ... कितने दिन जिंदा रहा जा सकता है?"

वह निराश हो गये थे। निढाल से बैठे रहे।

"दुकान के अंदर मुझे नुकसान करते हैं और दुकान के बाहर वे मुझे

भौंकते हैं, काटते हैं। अब हड्डी नहीं, इन्हें पूरी मुर्गी चाहिए...।" मामाजी देर तक बैठे देश की वर्तमान भ्रष्ट व्यवस्था पर रनिंग कमेंटरी करते रहे। अनजाने ही वह ऐसा महसूस करते रहे जैसे वह स्वयं मामाजी के कोड़ों से पिट रहे हैं। अंदर-ही-अंदर वह रक्तरंजित हो चुके थे।

दोनों में से किसी के पास कोई विकल्प नहीं था। मामाजी दुकानदारी के इस गलीज काम को छोड़ना चाहते थे। दो-दो कौड़ी के जलील इंस्पेक्टर आकर उन्हें धुड़क जाते हैं।

और एक वह है। इस भ्रष्ट व्यवस्था के अभिन्न अंग। ईमानदारी और निष्ठा के बावजूद हरेक की निगाहों में संदिग्ध चरित्र के इंसान।

मामाजी दूकान बंद कर दें तो क्या करें? वह नौकरी छोड़ें तो बीवी-बच्चों को रोटी कहां से खिलायेंगे? बीवी ने तो फिर भी अपने मूर्ख पति से बुद्धिमत्तापूर्ण समझौता कर लिया है। आठवीं में पढ़ने वाली उनकी बेटी शिखा अभी दुनिया के छल-प्रपंचों से अछूती और बेखबर है।

पर उनका बेटा शेखर बी० एस-सी० फाइनल में आते-आते कितना दुनियादार हो गया है। अकसर उन्हें छेड़ता रहता है, "पापा, आप तो सीनियर क्लास वन आफीसर हैं। तिस पर भी खुद तो बसों में धक्के खाते हैं, और हमें भी बस से लटककर कॉलिज जाना पड़ता है।"

निरर्थक, नवयुवकीय आक्रोश। वह उससे बहस में उलझने से अपने को बचा ले जाते हैं।

"आप हमें कुल पचास रुपये महीने पाकिट मनी देते हैं और मेरा दोस्त पराग अपनी गाड़ी में कॉलेज आता है। उसकी जेब में सौ-सौ के नोट होते हैं।"

"उसके पापा बिजनेसमैन होंगे।" वह धीमे से फुसफुसाते।

"नहीं। ओनली एन इंस्पेक्टर। क्लास थ्री।"

"ठीक है। मैं क्या कर सकता हूं?" वह अंदर-ही-अंदर भुनभुनाते।

"पापा, क्या आपका ऐपाइंटमेंट ऐज इंस्पेक्टर नहीं हो सकता?"

किस कदर घेर लेता है शेखर उन्हें। न चुप रहते बनता है, न कुछ कहते। अवश और उदास हो जाते हैं। जंगल में लगी आग की ऊष्मा से झुलसते त्रस्त पशु-पक्षियों जैसे। कैसे बुझेगी यह जंगल की आग? इसे

बुलाना उनकी सामर्थ्य के बाहर है। वह खुद अपनी जिम्मेदारी तो ले सकते हैं, पर दूसरों के लिए उन्हें कब तक सूली पर लटकाया जायेगा ?

इसी मानसिक दशा को भोगते हुए वह यह भूल गये कि आज बुधवार है, और दास के कमरे में सारे अफसरों का साप्ताहिक सम्मिलन, [illegible] सब शुरू हो गया होगा।

श्रीमती सोलंकी ने इंटरकॉम पर उन्हें याद दिलाया तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठे। ताबड़तोड़ वह कपूर साहब के वातानुकूलित कमरे में पहुंचे तो पाया, लगभग सारे साथी मौजूद हैं। पर माहौल बेहद तनावपूर्ण था। तनाव के साथ कुछ क्रोध और थोड़ा क्षोभ का पुट भी था।

"आप लोग इतने टेंस क्यों हैं आज ?" उनसे रहा नहीं गया।

"चौधरी खबर लाये हैं कि सरकारी अस्पताल के वरिष्ठ चिकित्सक डॉक्टर शर्मा को सी० बी० आई० ने ट्रैप कर लिया है। भ्रष्टाचार कानून के तहत उन पर मुकदमा चलेगा।" कपूर साहब ने एक चौंकाने वाला रहस्योद्घाटन किया।

डॉक्टर शर्मा और भ्रष्टाचार कानून···! समझ में नहीं आ रहा कि आखिर उन्होंने ऐसा क्या किया होगा ? वह उलझ गये।

"एक रोगी से दाखिला करने के लिए पचास रुपये रिश्वत ली थी।" चौधरी ने सूचना दी।

"छि-छि', जहाँ हर समय डाके पड़ रहे हों, वहाँ मामूली चोरों को पकड़कर सज़ा देते रहना कहाँ की अक्लमंदी है।" उनके मुँह से अनायास निकल गया।

"है किसी की हिम्मत डाकुओं को पकड़ने की ?" चौधरी ने पूछा।

"कुमार, इस मामले में तुम्हारा नजरिया बहुत बोदा है। अरे भाई, करप्शन को इतनी सीरियसली क्यों लेते हो ? अपने मुल्क में तो यह 'वे ऑफ लाइफ' बन चुका है।" कपूर साहब ने टिप्पणी जड़ दी।

"तो सर, आप चाहते हैं मैं इसे सपोर्ट करूँ ?"

"यह तो मैं नहीं कहता। पर यह फिनोमिना है जो कि चाणक्य के जमाने से आज तक बरकरार है। कौटिल्य ने कहा था कि जनसेवक उन मछलियों की तरह हैं जो पानी में रहती हैं और पानी पीती हैं और आप

उन्हें पानी पीने से रोक नहीं सकते। इसी भाँति एक सरकारी कर्मचारी अपनी शक्ति के माध्यम से पैसा बनायेगा और कोई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।" माथुर साहब ने अपने तर्क को आगे बढ़ाया।

"और सर, यह करप्शन दुनिया के किस मुल्क में मौजूद नहीं? इसके बारे में इतनी हाय-तोबा मचाने से फायदा? सिर्फ अपना बी० पी० (रक्तचाप) बढ़ेगा। किसी और की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ने वाला।" श्रीमती शीतला ने बीच में सहमति जताई थी।

"सर, छोटी मुर्गाबियाँ हलाल होती रहेंगी। बड़ी मछलियाँ मौज करती रहेंगी। कोई उनका बाल बाँका नहीं कर सकता।" चौधरी ने गिरह लगायी।

लंच सज गया था। टमाटर का एक टुकड़ा मुँह में डालकर कुमार ने अपने साथियों को गौर से देखा। वह अकेले थे—निपट, नितांत। कोई सहयोगी नहीं था—इस जंगल की आग को बुझाने में मदद करने के लिए।

"सर, जरूरत से ज्यादा इलाके में आग फैल चुकी है, इसलिए हम कुछ नहीं कर सकते। यह तो कोई समाधान नहीं हुआ समस्या का!" कुमार ने बॉस को आगे कुरेदा।

"तुम समाधान के बारे में परेशान हो रहे हो, कुमार। मैं कहता हूँ, कोई समस्या है ही नहीं।"

कुमार मुसकराये। बोले, "ठीक है, सर! अगर आप मुझ जैसे आम इंसान को शुतुरमुर्ग बनाना चाहते हैं तो ठीक है। मैं अपनी आँखें मूँद, सिर रेत में छिपा लूँगा।"

"कुमार, आँखें खुली रखो। हलाल होती मुर्गी को मत देखो। बड़ी मछली को देखो, कैसे शिकार करती है! मौका लगे, खुद शिकार कर लो।"

"सर, यह तो बड़ी डेंजरस पालिसी है!"

"पालिसी डेंजरस या सेफ नहीं होती। यह तो तुम पर डिपेंड करता ... कितने ऐडवेंचरस हो!"

"... ै या दुःसाहसी!"

हुआ सच

"शब्दों से खिलवाड़ मेरा शगल नहीं, कुमार ! मैं तो एक बात जानता हूँ। आज अवसर का अभाव या फिर बुजदिली ही नैतिकता का दूसरा नाम है। माफ करना मेरी फ्रैंकनेस, मैं करप्ट हो सकता हूँ, पर हिपोक्रेट (पाखंडी) नहीं।"

यह कैसी विषम व्यूह-रचना है ? दुःसाहस ही नहीं स्पष्टवादिता की बैसाखी पर टिक, दंभी न होने का नाटक करते हुए, अपने को भ्रष्ट होने की स्वीकृति की उद्घोषणा इस व्यवस्था का एक तेवर है या अपने दर्शन को सार्वभौमिक स्तर पर स्वीकृत करवाने की वकालत ?

लंच बेस्वाद हो गया और माहौल बेहद बोझिल। कला फिल्म जैसी उबाऊ रूखी बहस ने कुछ का मूड बदरंग कर दिया था। सबको चुप देख, कसवेकर ने, क्रिकेट के खेल में अंपायर द्वारा छक्के की घोषणा करती मुद्रा की नकल करते हुए, अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर विदूषक की भाँति हल्के स्वर में कहा, "कुमार साहब ने तो आज बोर कर दिया ! अरे भई, भ्रष्टाचार खत्म करने की नहीं, एन्जॉय करने की चीज है ! रहा, आज की बहस का खलनायक डॉक्टर शर्मा, तो मैं कागज पर लिखकर दे सकता हूँ कि कोई उसका बाल भी बाँका नहीं कर पायेगा।"

"क्यों ?" कुमार ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"क्या बच्चों की तरह सवाल पूछते हो, यार ! मेरे एक दोस्त हैं पुलिस में। सीनियर अफसर हैं। उन्होंने एक बार मुझे बताया था कि पिछले पाँच-सात साल का रिकार्ड देख लो, पूरे भारत में जितने लोगों को फाँसी की सजा हुई है, उनमें से एक भी ऐसा नहीं था जिसकी मासिक आमदनी एक हजार रुपये से ज्यादा रही हो।"

कसवेकर के इस रहस्योद्घाटन से कुमार के अंतर में एक बर्फीली स्तब्धता व्याप्त हो गयी। वह सब कुछ समझ गये। पर बाकी लोग ? वे मुसकरा रहे थे। शायद उन्हें लग रहा था, जैसे बंदर का तमाशा हो रहा हो।

बजर बजा। कुमार ने रिसीवर उठाकर कान से सटाया और निःस्पृह स्वर में बोले, "यैस्स···!"

"सर, कोई मि० लाल आपसे मिलना चाहते हैं।" पी० ए० बोली।

अगले कुछ क्षणों में जिस व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया, उसे देखकर कुमार साहब को कोई खास खुशी नहीं हुई। उम्र करीब पचास साल।

"माफ कीजिए, मि० कुमार, बिना पूर्व सूचना के आ गया आपको तकलीफ देने," कहकर उसने ब्रीफकेस नीचे रखा और एक कुर्सी खिसकाकर बैठ गया। आत्मविश्वास से लबालब उसका व्यवहार।

"कोई बात नहीं…।"

"जिंदल ने कहा, अभी तुरन्त चले आओ। मैं फोन किये देता हूँ।"

"कहिए, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?"

"मामला जरा नाजुक और पेचीदा है।"

"भूमिका बाँधने से फायदा? साफ-साफ कहिए!"

उसने एक की-रिंग निकाला। उसमें सिर्फ दो चाबियाँ थीं। उन्हें नचाता हुआ वह बोला, "मेसर्स ऐक्सपो कारपोरेशन के एम० डी० कंसल की फाइल आपके पास है।"

"कंसल ने तो जबरदस्त आर्थिक अपराध किया है। आयात लायसेंस के मामले में लाखों-करोड़ों की हेराफेरी की है। सारे तथ्य और प्रमाण उसके विरुद्ध हैं। उनको तो प्रोसिक्यूट करना ही है।" कुमार ने कहा।

"मैं इसी सिलसिले में आपसे मिलने आया था। अगर आप चाहें तो कंसल बच सकता है।"

"पर सारे प्रमाण उसके विरुद्ध हैं। मैं उसे कैसे बचा सकता हूँ?"

"कुमार साहब, आपके हाथ में जो कलम है, उसमें बहुत ताकत है।"

"मुझे अपनी सीमाओं और असमर्थताओं का आभास है।"

घड़ी के पेंडुलम की तरह कार की चाबियों को उनकी आँखों के आगे झुलाते हुए लाल ने मुसकराकर कहा, "कुमार साहब, मैं आपको आपकी सोयी ताकत का एहसास कराने आया था।"

"इस मेहरबानी के लिए शुक्रिया। मेरे ख्याल में इतना काफी है।"

"एक मिनट," कहता हुआ लाल उठा। वह कुमार की सीट के पास पहुँचा और शहद जैसे मीठे स्वर में बोला, "सर, थोड़ी-सी जहमत दूंगा। जरा पीठ पीछे, खिड़की के आर-पार मुख्य द्वार के पास जामुन के पेड़ के

नीचे देखिए। क्या है वहाँ ?"

घूमनेवाली कुर्सी पर बैठे-बैठे कुमार मघवन् खिड़की की तरफ घूम गये। वहाँ एक नयी कार खड़ी थी।

"एकदम ब्रांड न्यू है। डायरेक्ट फ्रॉम द शो-रूम। इसका कलर देख रहे हैं? इसे डेजर्ट मिस्ट कहते हैं। यही क्रेज है लोगों में इस रंग की।"

हल्का बादामी रंग। डेजर्ट मिस्ट अर्थात् रेगिस्तान में धुंधलका। मरुस्थली वीरानी और कुहासी रोशनी। बस में आलुओं के बोरों की तरह भरे इंसान। नयी गाड़ी में अस्सी की रफ्तार से उड़ते हम दो आगे, दो पिछली सीट पर।

"है न कमाल की चीज !"

कुमार साहब को गहरी चोट आयी। उनका अंतर चटक गया। वह बोले, "तो आप मुझे रिश्वत दे रहे हैं ?"

"छि-छि: ! यह रिश्वत नहीं, एक तुच्छ भेंट है।"

"अस्सी हजार रुपयों की चीज…!"

"सॉरी, अस्सी नहीं, पर्चेजिंग के साथ पूरे नब्बे की पड़ी है। अगर इजाजत हो तो मैं चलूँ ?"

कंपित होंठ। धड़कता हृदय। आवेश में गतिशील अंग-प्रत्यंग। कुमार लगभग चीख पड़े, "मि० लाल !"

"सर ! आप बेकार में टेंस हो रहे हैं।"

"तुमने मेरा अपमान किया है, लाल !" कहते हुए उन्होंने कार की चाबियाँ उसकी तरफ फेंक दीं और दीर्घ नि:श्वास छोड़, मृतप्राय स्वर में बोले, "अगर जिंदल बीच में न होता तो…!"

"तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता," लाल ने बेशर्मी से मुसकराते हुए कहा, "मैंने आपके पास आकर आपका अपमान नहीं किया है, आपका मान बढ़ाया है।'

"विल यू गेट आउट, मि० लाल ?" आवेश में कुमार खड़े हो गये।

लाल दरवाजे की तरफ बढ़ गया। पहुँचकर वह ठिठका। पलटकर उसने सर्चलाइट जैसी दृष्टि से कुमार को ताका। जाते-जाते वह एक धमाका कर गया, 'पिछले तीस वर्षों से यही खेल खेल रहा हूँ। पर आप

जैसा कालिदास अफसर आज तक नहीं मिला।"

वह कालिदास है ! मतलब मूर्ख। जिस डाली पर बैठे हैं, उसी को काट रहे हैं। यह है लाल का साराश उनके व्यक्तित्व के बारे में। सम्भवतः यही निचोड था शेखर की बातो का।

क्या वह सचमुच कालिदास है ? पिछले तीस वर्ष से सत्य और निष्ठा की विश्वामित्री तपस्या मे सलग्न, प्रलोभन को मेनकाओं से बचते हुए।

तभी घर से फोन आ गया। उधर से सीमा चहक रही थी। आठ साल पहले एक स्कूटर बुक कराया था। उसका एलाटमेंट आ गया था।

"अच्छा !" उनकी एकदम ठंडी, निस्पृह प्रतिक्रिया थी। वह कुछ उलझे हुए थे। आज कैसा वाहन-योग है !

"दाम बहुत बढ़ गये हैं। ग्यारह से ऊपर का है।" सीमा ने सूचना दी।

"ग्यारह हजार ! जब बुक कराया था तब शायद छह हजार···।"

कुमार सोच मे डूब गये। मन-ही-मन वह चारो तरफ बिखरे अपने देय पैसों का हिसाब लगाने लगे। बैंक बैलेंस हजार-बारह सौ से ज्यादा नहीं होगा। कमीशन की कुछ कॉपिया जांची थी। चार-पांच सौ वहाँ से आयेंगे। रेडियो पर एक वार्ता रिकार्ड की है। सौ-सवा सौ वहां से मिलेंगे। इस बार वह ईमानदार सरदार कबाड़ी पिछले सात महीनो से नहीं आया है। घर मे ढेरो रद्दी अखबार, डिब्बे, बोतलें इकट्ठे हो गये हैं। फिर अनायास वह मुसकरा दिये। जहां हजारो की कमी हो, वहां चंद रुपयों से क्या अंतर पड़ने वाला है ?

वह रिसीवर कान से लगाये बैठे थे। उधर सीमा लाइन छोड़ चुकी थी। वह बुदबुदाये—प्रोविडेंट फंड को ही देखना होगा।

पर तभी कोई उनके कान मे फुसफुसाता है—कुमार, पैसा बड़ा ताकतवर चीज होती है। उसकी तेज धारा जिन्दगी के सारे मूल्यों, मूर्तों और सिद्धांतों को जड़ से उखाड़कर फेंक देती है। बड़े-बड़े पाषाण-खंड जैसे अवरोधक रगड़ खा-खाकर शालिग्राम की बटिया जैसी आकृति अख्तियार कर लेते हैं।

शोर। जबरदस्त शोर। डेमंड मिक्स···। मदमयी मुद्राएं। क्रूर

के वक्तव्य की प्रतिध्वनि लाइट हाउस सरीखी रोशनी की तेज, तीखी, लंबी शहतीरें फेंक रही थी। और सामने दीवार पर गांधी और नेहरू के चित्र अपने समस्त व्यक्तिगत सन्नाटे-भरे मौन को समेटे लटक रहे थे।

इंटरकाम ने बजकर उन्हें इस मरुस्थली त्रासदी से मुक्ति दी।

"कुमार।" वह रिसीवर में फुसफुसाये।

"मैं सेक्रेटरी बोल रहा हूँ।"

"यस सर।"

"मिनिस्टर के स्पेशल असिस्टेंट ने फोन किया है। वह एक्सरो कारपोरेशन वाली फाइल मँगवा रहे हैं।"

"मैंने उस पर अभी नोट नहीं लिखा है।"

"जो लिखना है, लिख-लिखाकर मेरे पास जल्दी से भिजवा दो।"

"वेरी वेल, सर!"

उन्होंने कमल की फाइल उठायी। पी० ए० को बुलाया। अन्दर में प्रतिशोध का धधकता ज्वालामुखी फाइल में नोट की शक्ल में उभर आया। दस्तखत करके उन्होंने वह फाइल सचिव को भिजवा दी और विजयी योद्धा की तरह बड़बड़ाये, "मेरे इस जबरदस्त नोट के होते, देखते हैं, कौन तुम्हें बचाता है, मि० कमल?"

अगले दिन सुबह वह दफ्तर पहुँचे। पहला फोन आया। लाल का था।

वह कह रहा था, "कुमार साहब, मैंने कल क्या कहा था?"

"मुझे याद नहीं।"

"मैंने आप से कहा था, मैं आपका अपमान करने नहीं, आपको मान देने आया हूँ।"

"सुबह-ही-सुबह इन बातों का मतलब?"

"मैं सिर्फ आपको यही बताना चाहता था कि इस पूरी एडमिनिस्ट्रेटिव हायरारकी (प्रशासनिक शृंखला) में आपके अलावा और भी हैं जो हेमर्ड लिस्ट की कार्यवाही थामने के लिए लालायित हैं।"

"अच्छा, कितने बाकी?" कुमार साहब ने उपहास के मूड में पूछा।

"फाइल आपकी मेज पर है, खुद देख लीजिए न।"

कुमार विस्मित रह गये। मंत्रीजी के पास होकर यह फाइल इतनी जल्दी कैसे आ गयी? वैसे तो वहाँ महत्त्वपूर्ण फाइलें महीनों पड़ी रहती हैं।

उन्होंने फाइल खोली। उनके नोट पर सचिव ने हस्ताक्षर किये थे बस। बाद में मंत्रीजी का नोट था। एक संक्षिप्त निर्णय—इस केस में ऐसे तथ्य नहीं, जिनके आधार पर कंसल पर मुकदमा चलाया जाये। इस केस को बंद कर दिया जाये।

स्तंभित-से बैठे रह गये कुमार। चाबी किसने थामी, यह रहस्य खुल चुका था। तभी एक झटके से उनके अंदर कुछ टूटा। कहीं एक निष्ठावान कुमार की मौत तो नहीं हो गयी?

◻

कारावास

राजकुमार पिछली सीट पर नितान्त अकेले बैठे थे। सोच रहे थे—इस बार इस आजन्म कारावास से मुक्ति मिल जाती। पर कहाँ ? उनके भाग्य में तो संभवत, शाश्वत रिक्ति और पराजय ही लिखे हैं।

वे तीनों अगली सीट पर थे—रतीश, मार्या और प्रिया। प्रिया काफी तेज गति से गाड़ी चला रही थी। ग्रीन साइंस की सड़क और एयरपोर्ट की रंगीन चहल-पहल पीछे छूट गई थी।

आधी रात के बाद का समय। सूनी सड़क। भयावह-सा सघन अँधेरा चमगादड़-सा उलटा लटका हुआ था। दम तोड़ती अनुभूतियों जैसी दुस्तर निस्तब्धता अंदर-बाहर व्याप्त थी।

"ममी, गाड़ी कब खरीदी ?" रतीश ने पूछा।

"अपनी नहीं है। मिसेज वर्मा से माँग ली थी। रात में टैक्सी वाले···।"

बासी, मुरझाए फूलों जैसी बातें। कभी स्पष्ट, कभी फुसफुसाहट में। क्या उनके विरुद्ध वे तीनों कोई रहस्यमय षड्यन्त्र रच रहे हैं ? सोचकर राजकुमार आतंकित हो गए थे।

तीन दिन पहले रतीश का केबिल मिला था। शुक्र की रात को दो बजे पैन एम की फ्लाइट नंबर तीन सौ आठ से दिल्ली पहुँच रहा हूँ।

इससे अधिक अप्रत्याशित किन्तु सुखद सूचना और क्या हो सकती

थी प्रिया के लिए। पर उसकी संपूर्ण उत्तेजना दिसम्बर की शाम की तरह ढल गई। कैसा विचित्र है मानव मन। अलगाव की अंतहीन यात्रा शुरू करने के बाद भी बहुत कुछ अनपेक्षित छाती से चिपकाए रहना चाहता है।

ये दोनों ही आश्चर्यचकित थे, रतीश के विचित्र व्यवहार से। प्रिया की लंदन जाने की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं और रामकुमार बाबू भावी मुक्ति की संभावना से प्रसन्न थे। रतीश के केबिल ने उनकी संभावित मुक्ति, समय पूर्व रिहाई को मृगतृष्णा मात्र बना दिया था।

"साल भर से मार्था के साथ ऐफेयर चला रखा था ईडियट ने। मुझे वहाँ इनवाइट करके अब खुद चला आ रहा है यह स्टूपिड फैलो।" प्रिया की प्रतिक्रिया थी। वर्षों की सुनियोजित कूटनीति के मुँह के बल गिरने का परिणाम। प्रिया की इस असफलता से उनके अंदर एक उन्माद-भरी गुदगुदाहट उत्पन्न होनी चाहिए थी। वह इस स्थिति का भरपूर आनन्द नहीं उठा पा रहे थे। प्रिया की इस असफलता के साथ उनकी जिंदगी की असह्य घुटन तथा बिखराव अभिन्न रूप से जुड़े थे।

केबिल ने आकर दो कमरे वाले फ्लैट को और ज्यादा छोटा कर दिया था। तब रात के नौ बजे थे। उसी क्षण प्रिया अपने शयनकक्ष में गई और वर्षों से वहाँ बिछने वाले अपने पलंग को घसीट कर उनके शयनकक्ष में ले आई।

"अभी तो दो दिन हैं···" उनकी क्षीण-सी प्रतिक्रिया थी।

"राम, तुम तो महात्मा हो। इतना संयम तो होगा कि पत्नी के पास सोने पर भी···।"

एक विद्रूप-सी मुस्कान ने उनके शुष्क ओठों पर उभर कर, प्रिया के अधूरे वाक्य पर विराम लगा दिया। पति-पत्नी। अग्नि के सात फेरे। केवल एक खोखली परम्परा। एक बेटे का जन्म। सिर्फ शारीरिक स्तर पर एक दीमकचाटी औपचारिकता। या फिर दो कूलों के बीच पुल। यह दीर्घ, क्रूर, संबंधहीनता ही तो उनके जीवन का परम सत्य है।

"पापा, डॉक्टर मोहन कैसे हैं?" रतीश ने गर्दन मोड़ कर उनसे पूछा।

"अब नहीं रहे।"

"क्या हुआ ?"

"प्रिया ने तुम्हें [illegible] दी।"

"क्यों ?"

"उन्हीं का पता होगा। मैंने [illegible] नहीं है।"

[illegible]

यह डॉक्टर मोहन ही थे जिन्होंने [illegible] के बारे में याद बता दिया था। [illegible]

यह भी [illegible] उदासीन से रहे [illegible] के [illegible] लिए [illegible] देखते रहे थे। [illegible] से पूछ [illegible] अधिकारियों से [illegible]।

विवाह के कुछ महीनों बाद ही प्रिया का असली रूप खुल गया। एक [illegible]नी, उच्च कुल से आई इस आधुनिका का अपना इर्द-गिर्द [illegible] [illegible]यों, मर्जी-मौज, घूमना फिरना, [illegible] में इतनी फुरसत नहीं [illegible]ी कि वह यह देख सके कि [illegible] सिर्फ उसी का नहीं, किसी और का [illegible]ी हुआ है।

उस दिन प्रिया ने विवाह की पहली वर्षगांठ पर पार्टी दी थी। 20-25 जोड़े आए थे। शराब, सिगरेट, मांसाहारी भोजन तथा चमक-धमक वालियों से बतराने वाले और सुबह-शाम नियमित रूप से पूजापाठ करने वाले रामकुमार बाबू औपचारिकता से अधिक प्रिया की प्रेस्टीज की खातिर, सॉफ्ट ड्रिंक का गिलास थामे, उपेक्षित और निर्वासित से कमरे के एक कोने में खड़े थे।

अपने ही घर में, अपनों से मिले अपमान और उपेक्षा की वेदना आज तक सर्पदंश-सी टीसती है। प्रिया का अभिजात्यीय प्रदर्शन और अतिथियों का उच्छृंखल, उन्मादपूर्ण व्यवहार निर्लज्जता की सीमा तक पहुंच गया था।

डॉक्टर मोहन ने ही प्रिया को इस घर में मिसफिट कहा था।

"जो बिंध गया सो मोती," प्रिया ने स्वीकारा था।

"पर बिंधा कैसे ?"

"पापा ने बोर करके रख दिया। पर्वतीय उच्च ब्राह्मण कुल-जाति से बाहर जाने की विवशता।" प्रिया रुआँसी हो आई थी।

"आज के जमाने में इतनी दकियानूसी!" स्थूलकाय श्रीमती वर्मा ने टिप्पणी जड़ी।

"क्या फरक पड़ता है। पति को 'कवर' बना एनज्वाए करो," यह डॉ॰ मोहन का सुझाव था।

देर रात गए पार्टी खत्म हुई। उसी रात उन्होंने नशे में धुत प्रिया से कहा था, "प्रिया, विवाह एक पवित्र बंधन है। इसकी मर्यादा का पालन करने में सुख और शालीनता है। तोड़ने का दुःसाहस करोगी तो प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा।"

उनके हाथ को झटके से हटा कर प्रिया मिनमिनाई थी, "क्यों बोर करते हो, राम? गो एंड स्लीप।"

और अगले दिन सुबह प्रिया अपना पलंग पास के कमरे में घसीट ले गई। वह एक मौन, द्विपक्षीय समझौता था। संबंध-विच्छेद की पीड़ा से अधिक भयावह। एकदम आजन्म कारावास।

"पापा, आपकी प्रेक्टिस कैसी चल रही है?" रतीश ने फिर एक प्रश्न उनकी ओर उछाल दिया।

वह चौंके। चिहुँक कर बोले, "ढीली है।"

"फौजदारी के वकील के लिए केसों की क्या कमी?"

वह कुछ नहीं बोले। अपनी जिंदगी की सीमाओं पर होने वाली झड़पों और फौजदारी की घटनाओं की यादें ताजा हो गईं। वह 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' का पाठ करते और प्रिया के स्टीरियो पर ब्रेक शुरू हो जाता। वह रतीश को आइसक्रीम दिलाते, वह उसे छीन कर बाहर फेंक देती।

रतीश को उन्होंने नहीं, प्रिया ने पाला। डॉक्टरी की पढ़ाई के लिए भी उसे प्रिया ने ही लंदन भेजा। नाना ने आर्थिक सहायता दी थी।

रतीश ने लंदन में मार्था नामक लड़की से विवाह कर लिया था और डॉक्टर बन, वह वहीं सैटिल होना चाहता था। दो मास पूर्व इसी आशय का पत्र आया था। उसने अपनी माँ को भी वहीं आकर रहने का निमंत्रण

दिया था। प्रिया की योजना सफल हो गई थी। वह उन्हें छोड़, सदैव के लिए लंदन चली जाना चाहती थी।

इस संबंधहीनता के आजन्म कारावास से मुक्ति की संभावना उन्हें सुखकर लगी थी। पर रतीश की शिराओं में उनका रक्त प्रवाहित हो रहा था। अतः मार्था से उसका विवाह उन्हें आतंकित किए हुए था। उन्होंने हलका-सा विरोध किया था, "रतीश ब्राह्मण है। उसे मार्था से···।" प्रिया को हथियार डालने की आदत नहीं थी। विजय की कामना ने उसे एक ऐसा रहस्योद्घाटन करने पर मजबूर कर दिया जो उसे नहीं करना चाहिए था, "रतीश की शिराओं में अंग्रेज रक्त भी प्रवाहित हो रहा है।"

"असंभव है।"

"उसे यह उपहार मुझसे मिला है। मेरी असली माँ एक अंग्रेज महिला थी।"

रामकुमार बाबू सकपकाए, हतप्रभ से रह गए। इस वीभत्स सच्चाई के बोझ ने उनकी वाणी को पंगु कर दिया। इस कलुषित नग्नता ने उनके जीवन के शून्यों को शून्य से गुणा कर, उनकी पीड़ा की आयु को और ज्यादा बढ़ा दिया। दोनों के बीच एक दीर्घ, जंगभरी मौन की चीनी दीवार खिंच गई थी।

अनचाहे उन्हें एयरपोर्ट आना पड़ा था। दर्शक दीर्घा में उदास से खड़े, वह भीड़ से अपने आपको एकदम अलग महसूस कर रहे थे। रतीश और मार्था को देखने की उत्कंठा भर थी।

जो कुछ थोड़ी-बहुत उत्तेजना अंतर में सुगबुगाई थी, प्रिया ने शाम को ही उसकी हत्या कर दी थी। उनकी रेशमी रामनामी धोती, धार्मिक पुस्तकें, तुलसी की माला आदि की गठरी बाँध स्टोर में रख वह वितृष्णा भरे स्वर में बोली थी, "धर्म का डंका पीटने वाले इस आडम्बर को देख मार्था क्या सोचेगी?"

और फिर एयरपोर्ट जाने से पहले वह कसी टॉप तथा तंग जीन पहन, घंटों प्रसाधन करने में जुटी रही। चौखट पर उन्हें प्रतीक्षारत खड़े देख कर भी, अनदेखा करती हुई, वह स्वयं से कह रही थी, 'मुझे देख मार्था दंग रह जाएगी। सोचेगी, मैं रतीश की मदर नहीं सिस्टर हूँ।'

पेन ऐम की फ्लाइट आ चुकी थी। शायद उनके पास कस्टम से क्ल० वाला सामान नहीं था। इसीलिए अगले दस मिनट में वे प्लेन चैनल से बाहर आ गए।

प्रिया बेहद खुश थी। वह बहू-बेटे को आलिंगनबद्ध करने के लिए आगे बढ़ी। उससे पूर्व, वे दोनों आगे आए। रामकुमार बाबू के चरण स्पर्श कर, वे दोनों प्रिया से लिपट गए।

उनकी आँखों में चमक आ गई। वे मार्था को देख मुग्ध हो गए। हाँ, प्रिया अवश्य उखड़ गई थी रतीश और मार्था की पहल पर।

जब वे घर पहुँचे तो रात के सवा तीन बज रहे थे। पर किसी की आँखों में नींद नहीं थी। रतीश प्रिया के पलंग पर और मार्था उनके पलंग पर लेट गए थे। वे दोनों आराम कुर्सियों पर जम गए थे।

"यहाँ कितनी शांति है," मार्था ने बर्फीली स्तब्धता भंग की।

"तुम लोगों ने शादी कर ली और हमें सूचना तक नहीं दी," प्रिया की शिकायत थी।

"हम लोग आ ही रहे थे," रतीश बोला।

"कब तक ठहरोगे?" प्रिया ने पूछा।

"अब हम लोग भारत में ही सैटिल करेंगे," मार्था और रतीश ने संयुक्त स्वर में कहा।

"भला क्यों?" प्रिया हतप्रभ हो बोली।

"अब वहाँ क्या रखा है? पिछले हफ्ते मेरे फादर की डेथ हो गई। अब वहाँ कोई लिंक नहीं है। वहाँ जातिवाद के बढ़ते विद्वेष के कारण मैं रतीश की सेफ्टी के बारे में चिंतित रहती थी," मार्था एक साँस में कह गई।

रामकुमार बाबू मौन दर्शक बने बैठे थे। उन्होंने कनखियों से प्रिया को देखा। एक घनीभूत पीड़ा और असंतोष उभर आए थे उसके मुख पर। हर पराजय को विजय में बदलने वाली आज सचमुच पराजित हो गई थी।

रतीश और मार्था संतुष्ट लग रहे थे।

और वह स्वयं एक मिश्रित खुशी से ओतप्रोत। बहू-बेटे का स्थायी रूप से उनके पास रहना। खुशी की महक थी इसमें। पर प्रिया द्वारा प्रदत्त अलगाव के आजीवन कारावास की बदबू? □

अस्तित्वहीन

उन कारों को देखकर मुझे लगा इस बार पापा अवश्य आत्ममुक्त हो जायेंगे। कई वर्षों से वह अभिशप्त प्रेत से भटकते रहे हैं। मैंने उनके जीवन की भयावह त्रासदी देखी है, अपनी खुली आँखों से। वह भटकते हैं, मेरे कारण।

जिस व्यक्ति ने जीवन के पूरे पचास वर्ष स्वाभिमान से गर्दन ऊँची करके काटे हों, प्रलोभनों के बावजूद ईमानदारी और निष्ठा के कीर्तिमान स्थापित किये हों और किसी भी आर्थिक मजबूरी के होते किसी के सामने हाथ न पसारे हों वही दर-दर भटकता फिरा—एक दम हाथ से निरा-पद पाये।

मैं अपराध-बोध से ग्रस्त, पापा की इस दुर्दशा के लिए स्वयं को उत्तरदायी मान, कई बार सोचती—क्या हो गया है आज के इन्सान को? पैसा तो साधन है, साध्य नहीं। पैसे को साध्य मान, मानव-मूल्यों की हत्या कर, इंसान सब कुछ पा भी ले तो क्या? किस कीमत पर?

तीन वर्ष की अनवरत तलाश। दर-दर भटकन। पेट काट कर निश्चित ढंग रहना। न नौकरी मिलना और न घर। मैं देख रही थी पापा के व्यक्तित्व पर प्रतिदिन उगने वाले असफलता के गहरे खरोंचों को।

और एक दिन पापा दफ्तर से घर आए—सुमन की तरह महकते। काले बादलों के बीच एक चमकीली सूर्य-किरण जैसी खुशियाँ अपना बिखेरते।

"सीमा की मम्मी, लगता है इस बार काम बन जायेगा। लड़के के पापा से मिला था। कनाट प्लेस मे एक कंपनी है। उसी में काम करते हैं। कहते थे—हमें तो अच्छी लड़की चाहिए। दहेज लेना तो हम गऊमांस के समान समझते हैं।"

मम्मी की आंखों में चमक उभरी थी। जल से सिर बाहर निकालती मछली सी। साथ ही उसमें अविश्वास का भाव भी मिला था। वह बोलीं, "क्या सचमुच आज इन जैसे देवता मौजूद हैं?" "अरे सीमा की माँ, यह संसार इन्ही मुट्ठी भर अपवादस्वरूप महामानवों पर टिका है।"

और महामानव आज आ गए हैं, अपनी पत्नी, बेटे और बेटी को लेकर। मैंने चोरी-छिपे मम्मी-पापा का गोपनीय वार्तालाप सुन लिया था।

"सुनिए, लड़का चौबीस का है पर अपनी सीमा तो छब्बीस पार कर गई है।" मम्मी ने शंका व्यक्त की थी।

"अरे, तुम चुप लगाओ। अपनी सीमा मे उठान नही है। देखने में बीस-बाईस की लगती है। उम्र का क्या है। और सब तो फिर है।" पापा ने व्यवहार-कुशलता से काम लिया। मैंने कनखियों से रवि की ओर देखा। मुझे घोर निराशा हुई। वह मुझे कालिज विद्यार्थी की तरह बड़ी नदीदी दृष्टि से ताके जा रहा था। मुझे लगा, उसकी उम्र बीस से ऊपर नही होगी। साथ ही वह मुझे काफी अधकचरा, भावनात्मक रूप से अपरिपक्व नजर आ रहा था। क्या यह बेमेल संबंध उचित रहेगा?

"कुमार साहब, आपकी बेटी सचमुच लाखों में एक है।" रवि के पापा ने मेरी प्रशंसा की तो मम्मी-पापा एकदम आश्वस्त हो गए।

मैं सोच रही थी—इतने लड़कों ने मुझे देखा। अस्वीकृत करने का क्या कारण था? मैंने कई बार अपने को शीशे मे निहारा है। गोरी। आकर्षक व्यक्तित्व। तीखे नाक-नक्श। बी० ए० पास। मेरे पापा राजपत्रित अधिकारी हैं। समाज में उनकी प्रतिष्ठा है। मैं एकमात्र बेटी। एक बेटा अर्थात मेरा भाई पिलानी में इंजीनियरिंग मे पढ़ रहा है। हमारे पास सब कुछ है—सिर्फ पैसे को छोड़ कर। क्या इसी कारण हर लड़का मेरी आकांक्षाओं और सपनों के कफन में अपनी 'ना' की कील ठोकता चला गया?

"बहिनजी, हम लोग मध्यम वर्ग के हैं। हमारे पास दो नंबर का पैसा नहीं। गाढ़े पसीने की कमाई है। फिर भी हम अपनी बेटी को···।"

मम्मी की बात को बीच में काटकर रवि के पापा तेज स्वर में बोले, "देखिए बहिन जी, दान-दहेज की कुरीति में मैं विश्वास नहीं करता। मैं लानत भेजता हूँ उन व्यक्तियों पर जो अपने बेटों की शादी नहीं, सौदा करते हैं।"

"सीमा मेरी इकलौती बेटी है। मैं अपनी सामर्थ्य अनुसार इसकी शादी बड़ी शान से करूँगा।" पापा ने गर्व से कहा।

"शान तो सापेक्ष स्थिति है," सोचते हुए मैंने कनखियों से एक बार फिर रवि को देखा। वह काफी चिंतित, तनावग्रस्त और उलझा हुआ-सा लग रहा था। क्या वह दहेज के पक्ष में था और अपने मम्मी-पापा के मूल्यवान निर्णय ने उसे निराश किया था?

"यह गाजर का हलवा खाइए। आपकी सीमा ने बनाया है। घर के काम-काज में इतनी होशियार है कि बस पूछिये मत।

"जी, हमारा रवि भी कोई कम नहीं है। शुरू-शुरू में दो हजार ला रहा है। बहुत तरक्की करेगा।"

बातों का जैसे सैलाब उमड़ पड़ा। दोनों पक्षों के व्यक्ति वार्ता में तल्लीन थे। केवल मैं और रवि की बहन मौन आवरण में लिपटे बैठे थे। वह विचारमग्न थी और मैं सपने देख रही थी—अपने नए जीवन के।

बातचीत और खाने-पीने के पश्चात् रवि की मम्मी ने अपनी अंतिम उद्घोषणा कर दी, "हमें यह रिश्ता मंजूर है।"

मैंने अपनी मम्मी के चेहरे पर एक ऐश्वर्यपूर्ण मुस्कान उभरती देखी। और पापा कैसे तनावरहित, संतुष्ट और भारहीन से लग रहे थे। लड़की के लिए उपयुक्त वर तलाश कर लेना लड़की के माँ-बाप के लिए कोई कम बड़ी उपलब्धि होती है? एकदम ओलम्पिक में स्वर्ण पदक जीतने की महान खुशी-सा यह क्षण होता है।

एक निश्चित, कोमल-सा इतमीनान पापा के स्निग्ध मुख पर आकर ठहर गया था। पर मम्मी ने अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हुए कहा, "ऐसा करते हैं मिसेज लाल, हम लोग बराबर के कमरे में चलते हैं।

लड़के-लड़की को अकेला छोड़ देते हैं। अगर वे लोग आपस में कुछ बातें करना चाहें तो···। भई, नया जमाना है आजकल।"

रवि की मम्मी हँस पड़ी। बोली, "बहिन जी, आप गलत समझ रहीं हैं। यह रवि नहीं, उसका छोटा भाई सुरेश है।"

क्या ? मैं स्तब्ध रह गई। श्रीमान जी देखने तक नहीं आए।

"अच्छा ! तो कुँवर साहब क्यों नहीं आए ?" मम्मी ने घोर आश्चर्य से पूछा।

"बस, एक जरूरी मीटिंग में फँस गया।" रवि के पापा ने अपनी पत्नी को अटकता देख, फटाक से उत्तर दिया।

मेरे अंतर में उगती कोमल कल्पनाओं की हरी दूब को इस बदसूरत रहस्योद्‌घाटन के भारी बूटों से मसल दिया गया था। मैं अपने भावी पति को देखे बिना ही हाँ कर दूँ। मैंने अपनी भावी ननद और देवर को देखा। वे इतने गंभीर, मौन और चिंतित क्यों थे ?

"बिना लड़के-लड़की के आपस में मिले, देखे-सुने कैसे चलेगा ?" मम्मी जी ने जैसे मेरे अन्तर की कामना को व्यक्त कर दिया।

"देखिए बहिनजी, हमारा बेटा रवि एकदम गऊ है। बिलकुल देवता है। आजकल ऐसे लड़के होते कहाँ हैं ? उससे बहुत कहा लड़की देखने के लिए। वह शर्मीला, सकोची इतना है कि बस पूछिए मत। कहने लगा, आप देख आइए। आपको लड़की पसंद आए तो बस समझिए, मुझे पसंद है वह।" रवि की माँ ने अतिरिक्त उत्साह से भरकर कहा। उनके स्वर में व्यग्रता भी थी।

"आजकल के नए जमाने में ऐसे सीधे-सादे बच्चे होना बड़ी किस्मत की बात है। मेरे ख्याल से तो यह जिंदगी भर का बंधन है और बच्चों का एक-दूसरे को देखभाल लेना बहुत अच्छा रहता है। वे सहमत हो जायें तो बाद में कोई दिक्कत नहीं होती।" माँ अपनी विचारधारा पर अड़ी हुई थीं।

"दिक्कत ? दिक्कत क्या होनी है ? वैसे अगर आप ऐसा ही महसूस ·· हैं तो···" रवि की मम्मी अटक गई। शायद किसी धर्म-संकट में फँस ·

पापा ने सोचा होगा—जैसे-तैसे एक आगामी घटी और सीमा की मम्मी अपनी हठधर्मी और अदूरदर्शिता से उसे भी उखाड़े दे रही हैं। अतः उन्होंने रवि की मम्मी को नवट-मुखन करने के उद्देश्य से कहा, "देखिए, यदि आपके लिए इस औपचारिकता का कोई महत्त्व नहीं तो हमें कोई विशेष आग्रह नहीं। हमारी बेटी बड़ी परिपक्व है। उसमें हर स्थिति से समझौता करने की क्षमता है।"

मुझे लगा, यह मेरी प्रशंसा नहीं, मेरी परिपक्वता और प्रौढ़ता के लिए मुझे दंड दिया जा रहा है।

बस, रवि की मम्मी उठीं और उन्होंने अपने गले से सोने की चेन उतार मेरे गले में डाली, मेरा माथा चूमा और उत्साह में भरकर बोलीं, "लड़की हमारी हुई, बहिन जी।"

एक अकल्पनीय, अविश्वसनीय खुशी का क्षण। बधाइयों का आदान-प्रदान। खानपान का दौर। मम्मी-पापा ने भैया को बाजार भेजा मिठाई-नमकीन लाने के लिए। मम्मी ने उन चारों को एक सौ एक, एक सौ एक रुपये मिलनी के लिए दिए तो रवि के पापा बोले, "सगुन का एक-एक रुपया लेंगे हम लोग। इस तरह रुपये लेना जलालत का काम है, कुमार साहब!"

अपने विचारों में कितने महान थे वे। और अपने कृत्य से तो वे महान-तम बन गए थे। अनौपचारिक संबंध जोड़ कर वे चले गए। छोड़ गए अपने पीछे एक रासरंग की अनिर्वचनीय अनुभूति। पापा मुक्तपक्षी से चहक रहे थे और मम्मी उमंग भरी कोयल-सी कूक रही थी।

और मैं? खुश थी, किन्तु वह खुशी एकदम चमकीली, दपदप करती नहीं थी। अच्छा घर-वर मिल गया, इसका संतोष अवश्य था। परन्तु लड़के का मुझे देखने न आना, एक रहस्यमय स्थिति थी जिसने मुझे उलझा रखा था। चिंता की एक झीनी-सी चादर ने मेरी खुशी की चमक को श्यामल कर दिया था।

अपनी चिंता को व्यक्त कर मैं मम्मी-पापा के लिए कोई समस्या नहीं उत्पन्न करना चाहती थी। इतनी लंबी बोहड़-सी भाग-दौड़ के बाद पापा को सफलता मिली थी। उनकी हाल की जन्मी, नन्हीं चिरैया खुशी की मैं

अपनी आशंका के पत्थर से हत्या नहीं करना चाहती थी।

यूँ एक दिन मैंने मम्मी के समक्ष अपनी शंका को व्यक्त किया था। मैंने कहा था, "मम्मी, आप नहीं सोचतीं कि यह स्थिति कितनी विचित्र है ! न दान-दहेज की माँग। न लड़के का लड़की को देखने का आग्रह। लगता है इसमें कोई रहस्य है।"

"चल पगली तेरे पापा ने परसों रवि को देखा था। बिलकुल छोटे भाई की छवि मारती है," मम्मी ने मुझे एक महत्त्वपूर्ण सूचना दी।

मैं सन्तुष्ट हो गई। सुरेश जैसा है तो चलेगा। पर पापा उनके यहाँ क्यों गए ? मैंने सोचा। मम्मी से पूछा तो उन्होंने एक और महत्त्वपूर्ण रहस्योद्‌घाटन किया। बोली, "शादी की तारीख की चर्चा करनी थी। साथ ही, उपहारों के बारे में भी पूछताछ करनी थी। बड़े कमाल के आदमी हैं। कहने लगे शाहजी, हमें कुछ नहीं चाहिए। भगवान का दिया सब कुछ है। रेडियो, टी० वी०, वी० सी० आर , स्कूटर, फ्रिज सभी सुख-सुविधाएँ हैं। आप तो बस लड़के को आशीर्वाद दीजिए।"

मैं अभिभूत हो गई। संदेह और शंका का कोहरा धीरे-धीरे छँटने लगा और मेरा अंतर निरभ्र, नीले आकाश सा चमकने लगा।

"सत्ताईस मार्च को शादी तय हो गई है।" माँ ने इतनी जबर्दस्त सूचना इतने सादे ढंग से दी कि मैं उखड़ गई। सिर्फ दो हफ्ते रह गए। इत्ती जल्दी ? परन्तु मुझे महसूस हो रहा था जैसे किसी ने मुझे सशरीर उठाकर एक शांत, शीतल जलकुंड में फेंक दिया है। मेरा सर्वस्व भीग गया है, रासरंग की अनुभूति से।

···27 मार्च को विवाह हो गया। एक सादा किन्तु शालीनता भरा समारोह। विवाहोपलक्ष्य में अच्छे भोजन की व्यवस्था थी। न बारात। न बाजे। कोई व्यर्थ का खर्चा, दिखावा नहीं। सारी संक्षिप्त रीत-रस्में। बस। हर व्यक्ति के मुख पर इस आदर्श विवाह की चर्चा थी। न दान-दहेज के दानव का नग्न नृत्य, न ही पुरातन पंथी रीति-रिवाजों पर निरर्थक व्यय।

मैं विदा होकर अपने घर आ गई। मेरी खूब आवभगत की गई। ँ महिलाओं ने मुझे मुँह दिखाई के रूप में ढेरों उपहार दिए। दिन

घर घर में सहमा-सहमा उमसी माहौल रहा।

मैंने एक महत्त्वपूर्ण बात नोट की। मेरी सास, ससुर, देवर और ननद बेहद तनावग्रस्त और खिन्न से लग रहे थे। एक और विचित्र और रहस्यमय स्थिति ने मुझे विचारमग्न कर दिया था। मेरी सास बारात से लेकर अब तक हर क्षण रवि से ही चिपकी हुई थीं। कभी वह उनके मुंह में कुछ डालतीं, कभी कुछ। उनके माथे में का भूरे रंग का पाउडर रगड़तीं। मुझे लगता, जैसे वह कोई टोटका या जादू-टोना कर रही हैं।

मैं उलझी हुई थी। क्या यह वास्तविकता है अथवा मेरे अवचेतन मन का कोरा भ्रम?

और फिर आया वह क्षण जिसके सपने देखते हुए कितने वसंत बीत जाते हैं लड़कियों के। मधुयामिनी! सचमुच मधु में भीगा हर पल।

मैं और रवि अकेले थे कमरे में। आमने-सामने खड़े हुए। अचानक रवि ने मुझे आलिंगनबद्ध कर लिया। मैं तो मई-जून की तपती दोपहरिया में तप्त सड़क पर पड़े बर्फ के टुकड़े की भांति पिघलने लगी। अंदर ही अंदर मेरा मन प्रार्थना की मुद्रा में, ईश्वर की कृतज्ञता-ज्ञापन कर रहा था—हे प्रभु, तुम्हारी असीम कृपा है जो बिना दहेज के, इतना सुन्दर घर-वर मिल गया है। कितनी भाग्यशाली हूं मैं!

हम दोनों आपस में गुंथे पलंग पर पहुंच गए। शालीनतापूर्वक सजा बिस्तरा। प्रतीक स्वरूप चार-छह गमकते लाल गुलाब वहां रखे थे।

रवि ने मुझे अपने अंक में समोया हुआ था और वह एक गुलाब मेरे जूड़े में खोंसने ही लगे थे कि…?

यह क्या हुआ? भय और चिंता से मैं चीख पड़ी। यह क्या हुआ रवि को? वह बेहोश हो, पलंग पर अचेत पड़ा था। उसका शरीर अकड़ गया था। वह धीमे-धीमे हिल रहा था। मुंह से झाग निकल रहे थे, जिनका रंग लाल था। शायद खून आ रहा था। आंखों की पुतलियाँ उलट गई थीं। "मम्मी, जल्दी आइए। देखिए, इन्हें क्या हुआ है?" मैं घबरा कर चीखती हुई दरवाजा खोल कर बाहर आ गई।

अगले ही क्षण पूरा घर हमारे सुहागरात मनाने वाले कमरे में आ गया। वे लोग कतई नहीं घबराए हुए थे। उनके चेहरे दयनीय-से नजर

आ रहे थे।

माँ वही भूरे रंग का पाउडर कभी रवि के मुँह पर डालती और कभी उसके माथे से रगड़ती।

"तुम्हारी इस पीपल वाले पंडित की भभूत से कुछ नहीं होगा, माँ। कितनी बार कहा कि भैया को आल इंडिया में दिखा दो। पर मेरी सुनता कौन है?" कहते हुए सुरेश ने नीचे फर्श से एक चप्पल उठाई और रवि की नाक के पास रख दी।

कुछ ही क्षणों में रवि को होश आ गया। उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था, मानो महीनों से बीमार हो। वह बेहद कमजोर और निर्जीव नजर आ रहा था।

"इन्हें मिरगी के दौरे आते हैं?" मैंने उत्तेजित होकर पूछा। मेरी त्रासदी अकल्पनीय थी।

इन लोगों के मुँह पर लगे मुखौटे हट चुके थे। दहेज न लेने का आग्रह एक मुखौटा था जो इन लोगों ने मेरी जिंदगी बर्बाद करने के लिए लगाया था। इतना बड़ा विश्वासघात! मेरा संपूर्ण अस्तित्व हिल गया इसकी कल्पना करके। उन लोगों ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे सब अपराधियों की तरह गर्दन झुकाए खड़े रहे।

"मिरगी के रोगी से, झूठ बोल कर मेरी शादी कर, आप लोगों ने मेरी जिंदगी बर्बाद कर दी है! मैं···!" आवेश के कारण मैं अपनी बात पूरी नहीं कर पाई।

"रवि को मिरगी का रोग नहीं, कुछ ऊपरले पराए का चक्कर है। पीपल वाले पंडित जी का उपचार चल रहा है। पहले से बहुत फायदा है। भगवान चाहेगा तो तेरे इस घर में पाँव पड़ने से मेरा बेटा और तेरा पति बिलकुल ठीक हो जायेगा।" माँ कातर स्वर में बोली।

मैं पलटी और उनकी तरफ पीठ करके खड़ी हो गई। मेरे अंतर में आक्रोश का ज्वालामुखी धधक रहा था। मेरे अंदर का सारा कुछ कोमल और पवित्र इस गर्म लावा से झुलस कर नष्ट हो गया।

एक नहीं, अनेक प्रश्नों के नाग मेरे समक्ष सिर उठाए खड़े थे—त्याग कर चली आऊँ इन धोखेबाजों को? घर पहुँच कर क्या होगा? क्या पापा

दोबारा विवाह कर पाने में समर्थ हो सकेंगे ? फिर क्या एक मिरगी के रोगी के साथ वैवाहिक संबंध जीवित रह सकेंगे। क्या इन लोगों के खिलाफ इस विश्वासघात के लिए कानूनी कार्यवाही की जा सकती है ? क्या नाटक किया दहेज न लेने का ?

मर्मदंश से आहत मैं निर्जीव सी खड़ी थी। मेरे पास केवल प्रश्न थे, उत्तर नहीं। उत्तरों को खोजना था मुझे। पर कहाँ ? मेरे चारों ओर तो महाशून्य की सृष्टि हो चुकी थी और मैं अस्तित्वहीन सी उसमें भटक रही थी।

□

दलदल

कई दिन से बेहद चिंतित हूँ। समझ में नहीं आ रहा है कि आखिर नियति ने मुझे ही क्यों चुना इस अप्रत्याशित, अभूतपूर्व अस्तित्व-संकट के लिए।

संभवतः इसका एक ही कारण हो सकता है। मेरा व्यवस्थागत असीम सुरक्षा में अटूट विश्वास। अभिमन्यु की भाँति सीना तान, शौर्य-प्रदर्शन की आकांक्षा से मैं इस चक्रव्यूह में नहीं घुसा था। मैंने तो बैसाखियों पर टिककर अंदर प्रवेश किया था। बड़ी चिरौरी-मिन्नत की थी। तब बाप्पू ने गाँव से आकर श्यामसुंदर जी के दरबार में गुहार की थी। गृह मंत्री जी पिघल गए थे। साथी स्वतंत्रता सेनानी का एकमात्र पुत्र 'रोड मास्टरी' करता फिरता है, इस तथ्य ने उन्हें आवश्यक कार्यवाही करने के लिए प्रेरित किया।

बस, पहले तदर्थ बाद में अस्थायी, और अंत में स्थायी। जिस दिन मैं पक्का हुआ, मेरे विश्वस्त मित्र, सहयोगी तथा दार्शनिक मातादीन ने एक चिरंतन सत्य का उद्घाटन किया था। कहने लगे कि मित्र, इस चक्रव्यूह में घुसना बड़ा दुर्गम है, किन्तु एक बार घुस गए तो कोई माई का लाल तुम्हें हाँक कर बाहर नहीं निकाल सकता। जीवनपर्यंत सुख से रहो। ऐश्वर्य भोगो।

... परिप्रेक्ष्य में, मैंने जो कुछ किया, उसमें ऐसा क्या अप्रत्याशित
... इस व्यवस्था की मूल्यगत संस्कृति के अनुरूप था। मैंने स्वयं

... हुआ सच

अपनी आँखों से देखा था। हर कोई बहती नाली या गंगा या गहरे सागर में डुबकियाँ लगा रहा था—अपने आकार तथा अपनी पाचन-शक्ति के अनुरूप।

मैंने भी गंगा में एक छोटी सी डुबकी लगाई। अब यह मेरी किस्मत कि बिना गहरे पानी में पैठे ही, मेरे हाथ बहुमूल्य मोती लग गए। मजा आ गया। चाँदी हो गई। पत्नी के शरीर और मेरी आँखों पर चर्बी चढ़ गई। घर में सब कुछ आ गया—फ्रिज से लेकर वी० सी० आर० तक।

सब ठीक-ठाक था! पर तभी भास्करन नामक विजीलेंस अफसर ने आकर तहलका मचा दिया। हरिश्चन्द्र के वंशज होने का दावा करने वाले ये जीव बड़ी तकलीफ देते हैं। नई-नई तरक्की हुई इस पद पर। बस, भास्करन नामक मुल्ला हर समय 'अल्ला, अल्ला' की जगह 'निष्ठा, निष्ठा' चीखने-चिल्लाने लगा।

उनका पहला शिकार मैं ही था। अभियोग-पत्र मिला तो मैं समूचा हिल गया। नौकरी से बर्खास्तगी का प्रस्तावित दंड। मेरे मित्र मानाडीन ने निष्ठा की मूर्ति भास्करन से मिल, क्षमा-याचना करने की सलाह दी।

अपने 'भाग्यविधाता' से मिलना इतना सरल नहीं था। उनके निजी सचिव को डिनर खिलाया, पिक्चर दिखाई, तब कहीं जाकर उनके दरबार में एंट्री मिली।

मुझे देखते ही उनके झुर्रीदार चेहरे पर थोड़ी और शिकन रेखाएँ उभर आईं। मुझे बैठने को भी नहीं कहा। बेहद रूखे और कठोर स्वर में बोले, "क्या बात है? मेरे पास टाइम नहीं है।"

मास्टर, तुम्हारे पास टाइम क्या, कुछ भी नहीं है। न शालीनता, न मानवीयता। मैं सोचने लगा।

"यूँ चुप बने क्यों खड़े हो? बोलते क्यों नहीं?"

"सर, मैं बेकसूर हूँ।"

"हर अपराधी यही कहता है। मेरे मन में भ्रष्ट कर्मचारियों के लिए…।"

"सर," मैंने उनकी बात बीच ही में काट, उत्तेजित होकर कहा, "आज कौन दूध का धुला है? बस, अवसर का अभाव नैतिकता कहलाता है।"

भास्करन अचकचाए से मुझे देखते रह गए। तभी तनावपूर्ण माहौल में तनिक सा विश्राम हुआ। साहब का पी० ए० अंदर आया और बोला, "सर, मैंने दास मोटर्स से पता किया था। कार तो कल मिलेगी।"

"क्या मुसीबत है। आज रात रामास्वामी के यहाँ प्रीतविहार जाना है। उसकी लड़की की सगाई है। हमारे घर से 25 किलोमीटर है। वहाँ टैक्सी से गए तो दिवाला पिट जाएगा।"

"सर, मैंने स्टाफ कार का प्रबंध कर दिया है।"

भास्करन साहब प्रसन्न हो गए। उनकी आँखों में निजी सहायक के लिए प्रशंसा के भाव उभरे। पी० ए० भी उल्लास में भरा लौट गया। कृतज्ञता-ज्ञापन और प्रशंसा भाषा की मोहताज नहीं।

"सर, दया कीजिए। मैं बेमौत मारा जाऊँगा," मैंने नवनीत लेपन प्रक्रिया फिर से चालू कर दी।

"बेकार मेरा समय बर्बाद कर रहे हो! सरकार ने मुझे भ्रष्ट कर्मचारियों को दंडित करने के लिए लगाया हुआ है, न कि उन्हें प्रश्रय देने के लिए…। यू कैन गो नॉव…।"

कोई अन्य विकल्प शेष नहीं था। मैं बाहर आ गया—आगत की विभीषिका से आतंकित। भास्करन तो निष्ठा का अंगद-पाद बन गया। अब? अंधकारमय भविष्य की आशंका मुझे धमकाने लगी।

इस नौकरी में कितने मजे थे। जब मर्जी हो आओ, जब मर्जी हो जाओ। काम करो तो ठीक, न करो तो भी ठीक। वेतन, ओवरटाइम और महँगाई भत्तों की किस्तें नियमित रूप से मिलते रहेंगे।

यह नौकरी गई तो दूसरी मिलने से रही। भूखों मरने की नौबत आ जाएगी। फिर? न्यायप्रक्रिया को खरीदने और बरगलाने के प्रयास में जुट गया मैं।

तभी मेरा दोस्त मातादीन मुझे अपने एक दोस्त मिट्ठन लाल के पास ले गया। मिट्ठनलाल की फीस कोई ज्यादा नहीं थी। कुल जमा में ढाई सौ रुपये। मैंने तुरंत जेब से यह अल्प राशि निकाली और उसके सीधे हाथ में थमा दी।

मुट्ठी गरम होते ही मिट्ठनलाल मुखरित हुए। उन्होंने मुझे बताया

कराया तो वह बोला, "भाई, अगर उन्होंने दस हजार रुपये लिए थे तो तुम्हारे दोस्त का काम भी करवा दिया था। वह कोई टी० वी० या वी० सी० आर० तो नहीं बेचते जिसकी साल-दो साल की गारंटी दी जाए।"

बात ठीक थी। मैं नए सतर्कता अधिकारी से मिला। उन्होंने सहानुभूति प्रकट की, पर मेरे लिए कुछ भी करने में असमर्थ थे।

"सर, यह राष्ट्रपति जी को बार-बार क्या हो जाता है? कभी छोड़ देते हैं, कभी मार देते हैं," मैंने शंका व्यक्त की।

"भई, नए मंत्री जी ने स्वच्छ प्रशासन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता सार्वजनिक रूप से व्यक्त की है। चुन-चुन कर मारे जाएँगे भ्रष्ट कर्मचारी। बाद में आँकड़े प्रचारित होंगे जब मंत्री जी के कार्यकाल के सौ दिन की उपलब्धियाँ विज्ञापित होंगी…।"

"तो मंत्री जी अपने स्वार्थ के लिए मुझ जैसे निरपराध प्राणियों की बलि चढ़ाना चाहते हैं?"

"भई, बाहर कुछ मत कहना। अंदर की बात है। मंत्री जी कुछ करके नहीं दिखलायेंगे तो डिप्टी से स्टेट और स्टेट से कैबीनेट मिनिस्टर कैसे बन पायेंगे…?"

"तो आपका ख्याल है कि…।"

"हाँ, यह सब ऊपर के इशारों से हो रहा है। हमारे स्तर पर कुछ नहीं हो सकता।"

"तो मंत्री जी को ही पकड़ना होगा!" एक दीर्घ निःश्वास छोड़, असमर्थता के बोध से ग्रस्त मैं लौट आया।

घर में मातम छा गया। पत्नी ने यह समाचार सुना तो माथा पीट लिया और बोली, "जाओ गाँव।"

पत्नी का सुझाव कुछ जमा नहीं। क्या एक बार फिर बापू को बैंक नौकर बनाना पड़ेगा? मैं जानता था, मेरी कच्चा-कच्चा सुन उनके मन को बहुत क्लेश होगा। उन जैसे सरल, सदग्री, आदर्शवादी, स्वतन्त्रता सेनानी का पुत्र भ्रष्टाचारी! और वह भी ऐसा मूर्ख, जो निलंबित भ्रष्ट कि पकड़ा गया। किस मुँह से जाऊँ उनके पास?

कार्यालयी आदेश तत्काल प्रभावी हो चुके थे। मैं दरबदर हो गया

या चरण स्पर्श में से एक ही उपलब्धि प्राप्त होती है।"

फिर वह मिट्ठनलाल से बोले, "इन श्रीमानजी को बता देना कि [illegible] क्या करना है।"

हम लौट आए। मिट्ठनलाल ने अगले दिन मेरी अपील लिखवा[illegible] अनुग्रह राशि की शेष रकम ले, वह चला गया। चार सप्ताह तक [illegible] शांति व्याप्त रही। और एक दिन मुझे एक पीला, सरकारी लिफा[illegible] मिला जिसमें लिखा था कि राष्ट्रपति जी ने मेरी अपील स्वीकृत कर, मु[illegible] तत्काल सेवा में बहाल कर दिया है।

चमत्कार को नमस्कार! मैं नतमस्तक हो गया। मिट्ठनलाल औ[illegible] 'फाइलों के स्वामी' सत्ता के दलाल नहीं, वे तो हम जैसे दीन-दुखियों [illegible] प्राणरक्षक और अन्नदाता हैं।

मैं फिर से प्रतिस्थापित हो चुका था अपनी व्यवस्था में। जो [illegible] कमाया था, उसे लगभग गँवा चुका था। सोच रहा था कि गंगा के [illegible] प्रवाह में इस बार ऐसी गहरी डुबकी लगाऊँगा कि बस आगे-पीछे की [illegible] से कम तीन पीढ़ियाँ तो तर ही जाएँ। इस क्षेत्र के दावपेंच मैं सीख [illegible] चुका था।

पर तभी, लगभग एक वर्ष बाद मुझ पर यह वज्रपात हो गया। [illegible] महल में फेरबदल हुआ। सचिवों तथा सतर्कता अधिकारियों को भी [illegible] की गड्डी की तरह फेंटा गया।

एक दिन मुझे आदेश मिला कि राष्ट्रपति जी ने मुझे नौकरी पर ब[illegible] करने के अपने आदेश पर पुनर्विचार किया है और मुझे तत्काल सेवामु[illegible] करने के आदेश दिए हैं।

यह क्या हुआ? मेरी आँखों के सामने रंगीन चिनगारियाँ उड़ने लगीं। [illegible] मुझे चक्कर आ रहा था। मैं धम्म से अपनी कुर्सी में [illegible] गया—निर्जीव, अर्धमूर्च्छित।

[illegible]

कराया तो वह बोला, "भाई, अगर उन्होंने दस हजार रुपये लिए थे तो तुम्हारे दोस्त का काम भी करवा दिया था। वह कोई टी० वी० या वी० सी० आर० तो नहीं बेचते जिसकी साल-दो साल की गारंटी दी जाए।"

बात ठीक थी। मैं नए सतर्कता अधिकारी से मिला। उन्होंने सहानुभूति प्रकट की, पर मेरे लिए कुछ भी करने में असमर्थ थे।

"सर, यह राष्ट्रपति जी को बार-बार क्या हो जाता है? कभी छोड़ देते हैं, कभी मार देते हैं," मैंने शंका व्यक्त की।

"भई, नए मंत्री जी ने स्वच्छ प्रशासन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता सार्वजनिक रूप से व्यक्त की है। चुन-चुन कर मारे जाएँगे भ्रष्ट कर्मचारी। बाद में आँकड़े प्रचारित होंगे जब मंत्री जी के कार्यकाल के सौ दिन की उपलब्धियाँ विज्ञापित होंगी···।"

"तो मंत्री जी अपने स्वार्थ के लिए मुझ जैसे निरपराध प्राणियों की बलि चढ़ाना चाहते हैं?"

"भई, बाहर कुछ मत कहना। अंदर की बात है। मंत्री जी कुछ करके नहीं दिखलायेंगे तो डिप्टी से स्टेट और स्टेट से केबीनेट मिनिस्टर कैसे बन पायेंगे···?"

"तो आपका ख्याल है कि···।"

"हाँ, यह सब ऊपर के इशारों से हो रहा है। हमारे स्तर पर कुछ नहीं हो सकता।"

"तो मंत्री जी को ही पकड़ना होगा!" एक दीर्घ निःश्वास छोड़, असमर्थता के बोध से ग्रस्त मैं लौट आया।

घर में मातम छा गया। पत्नी ने यह समाचार सुना तो माथा पीट लिया और बोली, "जाओ गाँव।"

पत्नी का सुझाव कुछ जमा नहीं। क्या एक बार फिर बापू को बैसाखी बनाना पड़ेगा? मैं जानता था, मेरी व्यथा-कथा सुन उनके मन को बहुत क्लेश होगा। उन जैसे सरल, संयमी, आदर्शवादी, स्वतन्त्रता सेनानी शिक्षक का पुत्र भ्रष्टाचारी! और वह भी ऐसा मूर्ख, नौसिखिया भ्रष्ट कि पकड़ा गया। किस मुँह से जाऊँ उनके पास?

कार्यालयी आदेश तत्काल प्रभावी हो चुके थे। मैं पदमुक्त हो गया

था। क्या करूं? कुछ समझ मे नही आ रहा था। तभी एक शाम मे अंधेरी सागर-यात्रा मे लाइट हाउस बन मातादीन फिर चमका। वह बेहद धमाकेदार सूचना लाया था। मजा आ गया। बच गए अब। किना नजर आने लगा मुझे।

अगले दिन मैं मंत्री जी के कार्यालय मे पहुंच गया। सौभाग्यवश कोई उद्घाटन करने या हवाई सर्वेक्षण लिए के बाहर नही गए थे। अतिरिक्त निजी सहायक के जम कर तेल मालिश की। तब कही उसने जाने दिया।

बडी सौम्यता दिखाई मंत्री जी ने। बैठने को कहा। मैं बैठ गया।

"कहो, क्या बात है?"

"सर, मैं शंकर हूँ। मैं निर्दोष हूँ···। मुझे···।"

"अच्छा···अच्छा···," और तत्काल मंत्री जी की भ्रकुटी चढ ग वह भाषण देने के मूड में आ गए, "शंकर, भ्रष्टाचार से मुझे सख्त नफ है। सच तो यह है कि मेरा जी चाहता है कि सारे भ्रष्ट कर्मचारियो एक लाइन में खड़ा करके गोली से उड़ा दूं। इस देश का दुर्भाग्य है कि कुछ होते हुए भी हम प्रगति नही कर पा रहे। इसका मुख्य कारण व्यवस्था मे व्याप्त भ्रष्टाचार जो दीमक की तरह इसे चाटकर खोख किए दे रहा है।"

"यह तो है, सर!"

"हम पिछड़े इलाको के विकास के लिए एक रुपया निर्धारित करते हैं तो बीस पैसे खर्च होते हैं। शेष अस्सी पैसे अधिकारियो और कर्मचारियों की जेबों में चले जाते हैं। इस तरह देश कैसे तरक्की कर सकता है! मैंने प्रधानमंत्री जी से कह दिया है कि अगले एक वर्ष मे प्रशासन से भ्रष्टाचार को समूल नष्ट कर दूंगा, अन्यथा त्यागपत्र दे दूंगा," मंत्री जी जोश मे आ गए।

"सर, अपनी तरफ का आदमी और नेता ही ऐसी निष्ठा की बातें कर सकता है," मैंने साहस जुटा कर मंत्र फूंका। मातादीन यही समाचार लाया था कि मंत्री जी तेरे ही इलाके के हैं।

"अपनी तरफ? क्या मतलब?" मंत्री जी उत्सुक हुए।

"गुरपुरी गाँव का हूँ, सर। क्या इस इलाके का आदमी चरित्रहीन या भ्रष्ट हो सकता है? क्या पंडित रामनाथ पांडे जी का लड़का अपराधी हो सकता है? जिस महामानव ने स्वतन्त्रता की लड़ाई में हिस्सा लिया हो, जीवन भर ईमानदारी की रोटियाँ खाई हों, जिसने हजारों विद्यार्थियों को उँगली पकड़कर सत्य और निष्ठा के मार्ग पर चलना सिखाया हो, क्या उनका एकमात्र पुत्र···।"

मंत्री जी ने मेरी बात बीच ही में काटकर पूछा, "तो तुम पंडित रामनाथ के लड़के हो?"

"जी।" मैंने सोचा तीर ठीक निशाने पर लगा है।

"उन्होंने तो मुझे भी पढ़ाया है। वह मेरे गुरुजी हैं।"

"सर, उन्होंने तो बस मुझे एक ही गुरुमंत्र दिया था—बेईमानी की चुपड़ी रोटी से ईमानदारी की रूखी भली।"

"पर तुमने इस मंत्र का पालन नहीं किया। मुझे खेद है कि पंडित जी जैसे आदर्शवादी का बेटा भ्रष्ट निकल गया। सच, तुमने उनकी प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला दिया," मंत्री जी के मुख पर तमतमाहट उभर आयी।

"सर, मैं निर्दोष हूँ," मैं हाथ जोड़, गिड़गिड़ाया।

"मैंने पूरी फाइल देखी है। तुमने काफी बड़ा हाथ मारा था। नहीं, मैं भ्रष्टाचार की तरफदारी नहीं कर सकता। अगर तुम्हारी जगह मेरा खुद का बेटा होता, तब भी मैं उसे सजा देने में नहीं हिचकिचाता," मंत्री जी का स्वर निर्णायक हो चला था।

मेरा दिल डूबने लगा। यह भी कोई निष्ठा और ईमानदारी है कि अपनों परायों में भेद न कर सके।

"तुम जा सकते हो, शंकर। मुझे खेद है, मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर पाऊँगा।"

मैं लौट आया—पिटे मोहरे सा। मंत्री जी के पास आकर क्या पाया? केवल हृदयहीनता तथा सहृदयता और आदर्श का कड़वा घूँट।

गहरे पानी में डूब चला था मैं। तिनके का सहारा चुक गया था। अब तो आरक्षक डैडिट की अपेक्षा थी। बेड़ियों का बजना बाकी रह गया था। मैं घर पहुँच गया। बापू के पाँव पकड़, मैंने उन्हें अपनी करतूतों से अवगत कराय

ा ।

बापू के बूढ़े किंतु शालीन मुख पर पवित्र क्रोध की ज्वाला धधक
ी, आँखों से तिरस्कार का भाव विकीर्ण हो रहा था। वह रुंधे स्वर में
ले, "शंकर, तूने तो मेरे मुंह पर कालिख पोत दी ! अब किस मुंह से
ोमप्रकाश के पास जाकर तेरी सिफारिश करूं? नहीं, जा और अपने
िए की सजा भुगत।"

मेरे पास तर्क नहीं थे। हाँ, हठधर्मी थी। मैंने चौबीस घंटे की भूख
ड़ताल की। माँ मेरी पक्षधर बनी। बस, ममता ने आदर्शवाद को पराजित कर दिया।

अगले दिन सुबह की बस में बापू मेरे साथ आ गए। चार घंटे का
सफर। कुछ देर आराम किया उन्होंने। इतने तनावग्रस्त थे वह कि बहू और
नाती-नातिन तक से नहीं बोले।

शाम को मैं उन्हें मंत्री जी की कोठी पर ले गया। उस दिन शनिवार
की छुट्टी थी। कोठी पर उनसे मिलने वालों की भीड़ जमा थी। ड्राइंगरूम
भरा पड़ा था।

निजी सहायक ने मंत्री जी को बापू के आगमन की सूचना दी, तो वह
स्वयं बाहर आए और उन्हें ससम्मान अंदर लिवा ले गए। पहले से
प्रतीक्षारत भेंटकर्ता असमंजस में पड़े बैठे रह गए। मेरे अंतर में आशा की
ज्योति जली। इतना सम्मान दिया है बापू को तो उनका इतना छोटा-सा
काम वह अवश्य कर देंगे।

मंत्री जी ने बापू को बरफी खिलाई। शरबत पिलाया। फिर देर तक
मौसम, राजनीति और देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे में बातें करते
रहे।

कुछ देर बाद बापू बोले, "ओमप्रकाश, तुम बहुत व्यस्त हो। हम
तुम्हारा ज्यादा टाइम नहीं लेना चाहते। असल में हम···।
"मुझे पता है, आप शंकर के बारे में कहने आए हैं।"
"आना तो नहीं चाहता था, पर ममता के बंधन इंसान को बेहद कम-
जोर कर देते हैं। क्या कहूँ, इसने तो मेरी प्रतिष्ठा का दिवाला ही निकाल

मैं अंदर ही अंदर बेहद लज्जित हो गया। बापू के स्वर में उनके अंतर की गहनतम पीड़ा निहित थी।

"पंडित जी, आप खुद देख लें इसकी फाइल। सारे तथ्य इस लड़के के विरुद्ध हैं। इसे छोड़ दिया तो मेरी राजनीतिक प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगेगा। मेरे खिलाफ षड्यंत्र रचने वाले जरूर हाई कमांड के पास यह खबर पहुंचा देंगे कि मैं भ्रष्टाचार उन्मूलन की सैद्धान्तिक घोषणा करता हूं और वास्तविकता में भ्रष्ट कर्मचारियों को प्रश्रय देता हूं।"

बापू के चेहरे पर लाचारगी उभर आई। वह जैसे खुद से लड़ रहे थे। फिर वह निरीह स्वर में बोले, "भैया, देख लो। लड़का बाल-बच्चेदार है। नौकरी से बर्खास्त कर दोगे तो उसके बच्चे भूखों मर जायेंगे। इस उम्र में उसे दूसरी नौकरी मिलने से रही।"

"गुरु जी, बचपन में आपने हमें राजा हरिश्चंद्र की कहानी सुनाई थी।" मंत्री जी ने विद्रूप स्वर में कहा।

"संभवतः आज के युग में वह अप्रासंगिक हो गई है।"

"घोर आश्चर्य! गुरु जी, आप जैसा आदर्शवादी मुझे भ्रष्ट आचरण के लिए उकसा रहा है। मैं कानून का रक्षक हूं, भक्षक नहीं।"

पराजित, अपमानित और पिटे हुए से बापू उठे, हाथ जोड़े, कष्ट के लिए क्षमा याचना कर वह द्वार तक आ गए। उनके पीछे-पीछे मंत्री जी थे।

चौखट पर बापू ठिठके। विदा लेने के लिए पलटे तो मंत्री जी बोले "पंडित जी, कृपया अन्यथा न लें। मुझे तो खुशी है कि आपने विद्यार्थी जीवन में हमें निष्ठा और आदर्शवाद की जो शिक्षा दी थी, मैं उसे बड़ी ईमानदारी से कार्यान्वित कर रहा हूं।"

बापू कुछ नहीं बोले। सिर झुकाए बाहर आ गए। चलते-चलते मंत्रीजी ने बापू के गाल पर यह तमाचा मार दिया था। मैं तो जैसे सन्न शून्य हो गया। बेकारी, भुखमरी और अपमान की अनुभूति मुझे दंश रही थी।

मुझसे ज्यादा परेशान और चिंतित थे बापू। जीवन में पहली बार किसी ने उनके आदर्शवाद के प्रासाद को ध्वस्त किया था और इतनी

माध्यम [illegible] था। वह बेहद आत्मीयता से बात करते थे।

हम बाहर से निकल कर, गेट की ओर बढ़े, तभी वहां एक कार आ कर रुकी। अंदर से ड्राइवर बाहर निकला। वह झुका। उसने बापू के चरण स्पर्श किए और पूछा, "गुरुजी, आप यहां? क्या हुआ?"

अब कुछ इतनी देर बाद पहचान पाए, एक ही साथ पढ़े। हुआ कि बापू घर की परिस्थितिहीनता में खड़े रह गए। वह ताक रहे थे अपने भक्त को फिर पहचाना उनके मुंह से निकल गया, "राजन, [illegible]?"

"खूब पहचाना, गुरुजी।"

"तू कैसा है रे? आजकल क्या कर रहा है? इधर ओमप्रकाश पास कैसे आया?"

"गुरु जी, आपके आशीर्वाद से खूब खुश हूं। इलेक्ट्रोनिक उपकरण का व्यापार कर रहा हूं। अच्छा चल रहा है। मंत्री जी का वी० सी० आर० खराब हो गया था। उसको ठीक कराके लाया हूं। आप बताइए, आप कैसे आए इधर?" राजन ने पूछा।

बापू ने राजन को संक्षेप में सारी कथा सुना दी। इस दौरान मैं शारीरिक रूप से तो पृथ्वी पर खड़ा था किंतु भावनात्मक रूप से भूमिगत हो गया था—लज्जा के कारण।

"ऐसी की तैसी ओमप्रकाश की। उसकी यह मजाल कि वह गुरुजी की अवहेलना करे। आप निश्चित रहें पंडित जी, मैं बहाल करवाऊंगा शंकर को," राजन ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"मुश्किल है! ओमप्रकाश बड़ा अड़ियल है," बापू बुदबुदाए।

राजन ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने कार से वी० सी० आर० निकाला। उसे लेकर वह कोठी के अंदर चला गया। जाते-जाते वह हमें कुछ देर तक प्रतीक्षा करने का आदेश दे गया।

हम दोनों मेंहदी की झाड़ी के समीप खड़े, अगली घटना की बड़ी उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रहे थे। हमारे उत्साह की भांति सूरज डूब रहा था। चारों तरफ गोधूलि बेला का झुकमुका छाने लगा था।

कोई दस मिनट बाद राजन लौट आया। प्रसन्न और विजयी।

"बधाई, पंडित जी। आपका काम हो गया," वह बोला।

"कैसे, भैया ?" बापू के स्वर में घोर आश्चर्य और अविश्वास था।

"मैंने मंत्री जी की नैतिकता तथा तेजस्विता को पछाड़नी दे दी। शंकर की सिफारिश की और वी० सी० आर० की रिपेयर के दो हजार का बिल का पेमेंट लेने में इन्कार कर दिया," राजन ने अप्रत्याशित प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा।

मैं झुका और राजन के पाँव पकड़ लिए। रुंधे गले से बोला, "अंकल आपने मुझे नई जिंदगी दी है। मुझे अपने वेतन का पिछला बकाया धन मिलेगा। मैं आपके दो हजार चुका दूंगा।"

राजन ने जोर का अट्टहास किया और बोला, "बरखुदार, वी० सी० आर० का हैड खराब हो गया था। बीस रुपये का बिल बना था। वह पैसा मैंने वैसे भी नहीं लेना था। तुम्हें बहाल करवाने के लिए मुझे बिल की राशि बीस से दो हजार करनी पड़ी।"

मैं विस्मित सा खड़ा रह गया। पर बापू ? वह एकदम अप्रासंगिक से लग रहे थे।...

□

डाँट

[illegible] हुआ है। [illegible]
[illegible] पर [illegible]।
[illegible] में।
[illegible] रही है। [illegible]
[illegible] रहता है। [illegible] बिखी-बिखी-सी रहती है। कई
बार महसूस होता है जैसे पेट में कोई पक रहा है। कुछ घुटा-घुटा सा
कलेजे तक भर आता है। [illegible] आती है, पर अचानक उसे रोक जाती
हूँ। अब तो बड़ी दिक्कत है भूख का न लगना। पूरा तो क्या चौथाई खाना
भी नहीं खा पाती हूँ। इसलिए शरीर काम नहीं कर पाता। जी करता है
बस चारपाई पर पड़ी रहूँ, आँखें मूँदे।
आँखें मूँद कर चारपाई पर पड़े रहना बड़ा अच्छा लगता है। ब[illegible]
आँखों की ओट में कई सपने हैं जो साकार हो उठते हैं। पर माजी को [illegible]
सब कुछ अच्छा नहीं लगता। कल तो उन्होंने कमाल ही कर दिया।
आठ-दस दिन पहले की बात है। रात को खाना खत्म करके मुझे [illegible]
गुम हुआ जैसे थकान से मेरी नस-नस चटक गई है। मैं बाहर बालकनी [illegible]
बिछी चारपाई पर आकर पड़ रही थी। एक बार भरपूर आँखें खोल [illegible]
खुले आसमान को जी भर ताका। कितनी गहरी और विशाल कालि[illegible]
थी वहाँ। असंख्य तारों की जगमगाहट बुरी तरह मेरी आँखों में चुभी [illegible]
तभी मुझे माजी की बुदबुदाहट सुनाई दी। माजी बुदबुदाती [illegible]

कुछ इस तरह कि जो कुछ वह कहना चाहती हैं सब कुछ मेरे पास पहुँच जाता है। वह 'इनसे' कह रही थी—"समझ मे नहीं आता, बहू को क्या होता जा रहा है?"

"क्यो, क्या अब कोई नया नाटक रचा है?" इन्होने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"नाटक ही समझ ले, बेटा। हर समय महारानी की तरह खाट पर लेटी रहती है। हरामखोरी की भी हद होती है। अब तू ही देख ले। अभी रात का काम निपटा नही है और मेम साहब बाहर जाकर आराम फरमा रही हैं।"

"इसे क्या हुआ है, माँ?"

"मैं क्या जानूं? हर समय खटपाटी लेकर हवास-सी किए रहती है।"

"अभी तो पिंकी और पप्पू को दूध पिला कर सुलाना है?"

"उनकी तू फिकर मत कर बेटा। वह तो मेरे कलेजे के टुकड़े हैं, उनकी देखभाल करना तो मेरा फर्ज है। मैं तो उसे हाथ नहीं लगाने देती उनको।"

"पर, माँ, तुम्हारा भी आखिर बुढ़ापे का शरीर है। आखिर ऐसे कब तक चलेगा?"

"अरे, बेटा, जब तक जान है, इन दोनो बच्चो को पालना ही है। खाति की अमानत है। कहीं उन्हें कुछ हो गया तो " माँजी चुप हो गईं।

जिस तरह उन्होंने बात को अधूरी छोड़ा था उससे साफ जाहिर था कि उनकी आँखें डबडबा आई होंगी और वह धोती के पल्लू से पोंछ रही होंगी।

मेरा जी चाहा कि फौरन उठूँ और काम मे जुट जाऊँ, पर उठ न सकी। इतनी थकान और शिथिलता भर गई थी कि शरीर निर्जीव-सा हो रहा था।

मन बुरी तरह उखड़ा हुआ था। आखिर ये लोग क्यो ऐसा करते है? दूसरे पक्ष से बिना कुछ पूछे-ताछे, उसकी सफाई लिए बिना ही उसे अपराधी घोषित कर सजा सुना देते है। अगर 'इनको' बताऊँ तो? पर बताने से

इस नए घर मे पहला दिन मेरे अन्तर पर अमिट छाप छोड गया। मैं खुशी-खुशी आई थी यहाँ। विदा होकर जब मैं कार मे 'इनके' साथ आ रही थी तो 'यह' बोले थे, "तुम्हे तो मेरी सारी परिस्थितियाँ मालूम ही हैं।'

"जी।"

"तुम्हे मैं एक बात स्पष्ट कर दूँ। मैं तो दूसरा विवाह नही करना चाहता था, पर माँजी के अनुरोध को टाल नही पाया। सच तो यह है कि मैंने यह विवाह माँजी और दोनो बच्चो की खातिर किया है।"

यह था पहला 'शॉक' जो शादी के तीन-चार घटे के अदर ही लगा था। यह कोई प्रश्न नही, सिर्फ सूचना थी, मैं क्या उत्तर देती। मैंने तो कुछ और सोचा था। नारी और पुरुष विवाह-सूत्र मे क्यों बँधते हैं ? शायद इस शादी और उन शादियो मे कोई अतर नही होगा। पर इसमें अतर था। इनको पत्नी नही, बच्चो के लिए एक आया तथा बूढी माँ की सेवा करने के लिए एक नर्स की आवश्यकता थी, वह उन्हे मिल गई।

काश ! 'यह' कहते, 'शीला, तुम्हारा साथ पाकर मुझे कितनी खुशी हुई है। कितनो का अभाव पूरा करोगी तुम ! मेरे लिए पत्नी, बच्चो के लिए माँ, माँजी के लिए बहू....' मैं धन्य न हो जाती।

घर पहुँची। मेहमान थे। पर मेरा ऐसा स्वागत नही हुआ जैसा कि नई बहू का होता है। माँजी, 'इनके' भाई-बहन और अन्य लोग 'पहली बहू' के गुणगान मे लगे थे। मुझे लग रहा था जैसे मैं ही 'इनकी' पत्नी की मृत्यु के लिए उत्तरदायी हूँ।

शाम होते-होते, माँजी ने मेरे इस निर्मम विचार की पुष्टि भी कर दी। शायद वह पड़ोस की कोई महिला थी जिसे उन्होने कहा था, "अरे, बहन, दूसरी के भाग्य से ही पहली मरती है।"

न जाने कितनी गहराई तक उस बात ने मुझे कचोट लिया था। फिर ...उसी रात...विवाह की प्रथम रात...देर तक यह 'पहली' की बातें बताते रहे। वह सुन्दर थी, कितनी तकलीफ हुई पहली डिलीवरी में, फिर पप्पू हुआ, वह भी पेट चाक करके। उसके बाद तीन वर्ष की लबी बीमारी। 'यह' उदास हो, भीगे स्वर मे पुरानी कथा दोहरा रहे थे और मैं

थी। सुनते-सुनते मुझे लगा जैसे 'नई कथा' की भूमिका के लिए तरस रही थी। सुनते-सुनते मुझे लगा जैसे 'पहली' भी आसपास कहीं मौजूद है।

उसके बाद 'यह' थककर सो गए।

धीरे-धीरे करके सब मेहमान विदा हो गए। जब बड़ी ननद जा रही थीं तो उन्होंने माँजी से जो कुछ कहा, उसकी भनक मेरे कान में पड़ गई, "माँ, जिन्दगी तो इन बच्चों की बरबाद हो गई। कहीं सौतेली माँ अपनी माँ जैसा प्यार दे सकती है? फिर इसके अपने बच्चे हुए नहीं कि इनकी मिट्टी खराब हो जाएगी।"

"यही फिकर तो मुझे खाए जा रही है, बेटी।"

सुनकर बड़ा बुरा लगा था। मैंने तो ऐसी बात की कल्पना भी नहीं की थी। मैंने तो पिकी और पप्पू को देखकर सोचा था, विवाह के साथ, मेरा मातृत्व भी पूर्ण हो गया है।"

मैंने अपने आप को संयत कर दिया था। मैं सौतेली माँ नहीं थी। मैं सौतेली बहू या पत्नी भी नहीं थी। ये सब लोग मुझे 'सौतेली' बनाने पर तुले हुए थे।

एक भीषण लड़ाई लड़नी थी मुझे। इसके लिए मैंने अपने आप को तैयार कर लिया था। किसी पुरानी तसवीर को मिटा कर उसकी जगह नई तसवीर जमाना कितना मुश्किल होता है। फिर खासकर उन परंपराओं में जहाँ लोग जीते-जी पत्थर मारते हैं और मरने के बाद पूजते हैं।

मैंने पिकी और पप्पू का विश्वास जीतने में कोई कसर नहीं उठा रखी। शुरू-शुरू में वह लोग सहमे-सहमे से रहे। पिंकी को अहसास था कि मैं उसकी माँ नहीं हूँ। पप्पू को माँजी बिगाड़ देती थीं। जैसे-जैसे लाड़-प्यार करके मैं उसे पटरी पर लाती, माँजी उसे छाती से चिपटा कर रोने लगतीं और वह पटरी से उतर जाता।

गरमी की छुट्टियाँ हुईं। 'इनका' कालिज बंद हो गया। मैंने कश्मीर चलने का सुझाव दिया। यह बोले, "क्या हनीमून मनाना है?" मैं क्या कहती? मैंने इन्हें समझाया कि कभी-कभी कुछ दिन के लिए घर से बाहर निकलना मानसिक स्वास्थ्य लाभ के लिए निहायत जरूरी है। यह राजी

ए।

मांजी ने सुना कि हम कश्मीर जा रहे हैं तो वह एक दीर्घ निःश्वास कर बोली, "जाओ, जिसके भाग्य में घूमना बदा है, वह तो घूमेगा ।"

"हम बच्चों को साथ ले जाएँगे।" मैंने कहा।

"क्या ?" मांजी और वह दोनों चौंक गए।

"नहीं, मैं बच्चों को नहीं भेजूंगी। वहाँ इनकी कौन देखभाल गा ?"

"इनकी माँ तो मर गई। अब इनका मेरे सिवा है ही कौन ?"

"मांजी, आप बच्चों के सामने ऐसी बातें मत किया कीजिए। इससे पर बुरा असर पड़ता है," मैं उखड़ गई।

"अभी चार दिन आए हुए हैं और मुझे शिक्षा देने चली है। मैं खूब नती हूँ। मैं नहीं भेजूंगी अपने बच्चों को।"

मांजी अडिग रहीं अपने फैसले पर। मैंने भी कश्मीर जाने का प्रोग्राम गित कर दिया। नई जगह जा कर, हम सब लोगों के बीच जो एक क एकता और आत्मीयता जनमती, मांजी ने उसका गला घोंट दिया ।

ज़िंदगी यों ही रेंगती रही। इस पूरे वर्ष में मैंने पिंकी और पप्पू की बनने की पूरी कोशिश की। बाजार से उनके लिए खिलौने ला कर ी। उनको नहलाती, धुलाती, कपड़े पहनाती, गोद में बिठाकर अपने थों से खाना खिलाती। सोते वे लोग अपनी दादी के ही पास। इस सबके विजूद मुझे लगता, मैं इन बच्चों की माँ नहीं बन पाई हूँ। ये बच्चे तो झे माँ स्वीकारने को तैयार हैं, पर मांजी और पड़ोस की औरतें मेरे माँ नने में बाधक हो जातीं।

एक दिन दशहरा की बात है। पिंकी ने बिना बात पप्पू की पिटाई कर ी। उसके ऊपर थूका और गंदी-सी गाली दी। इधर कुछ दिनों से मैं ख रही थी कि पिंकी गंदी गालियाँ देना सीख रही है। मैं उसको प्यार से समझाती थी कि गाली देना बुरी बात है।

समझ पाई थी। वह मौन हो गई। कई दिन तक मैं सोचती रही थी। मुझे मांजी ने न तो पूरी तरह से बहू के रूप में स्वीकारा है और न ही मुझे इन बच्चों की माँ बनने दे रही हैं।

एक विषम समस्या की कल्पना से मैं कांप उठती। जब तक मांजी जीवित हैं, ठीक है। पर उनके बाद? पका फल है, न जाने कब टपक पड़े! बच्चे बड़े हो रहे हैं। यदि इनके मन में गहराई तक यह बात बैठ गई कि मैं माँ नहीं हूँ तो मांजी के बाद गाड़ी कैसे चलेगी? क्या जीवन-भर इस सौतेलेपन का भार ढोना पड़ेगा?

पर इस जरा-सी घटना ने जैसे घर में हलचल मचा दी। मांजी ने दोपहर वाली घटना की रिपोर्ट शाम को 'इनसे' भी कर दी।

रात को 'इनका' मूड भी खराब था। देर तक 'यह' नहीं बोले। हार कर मैंने पूछा, "आपको पता है कि इसमें किसका दोष है?"

"यह सब मैं नहीं जानता। मैं तो सिर्फ घर में शांति चाहता हूँ।"

"तो क्या इस अशांति के लिए मैं जिम्मेदार हूँ?"

'यह' कुछ क्षण के लिए शांत रहे। फिर जैसे कोई फैसला-सा कर लिया हो। सयत स्वर में बोले, "मैं तो पहले ही जानता था। इसीलिए माँ से मना करता था, पर वह नहीं मानी।"

शब्द क्या थे, असख्य विषधर थे जो मेरे शरीर से चिपट कर मुझे डस रहे थे। मुझे पत्नी के रूप में भी नहीं स्वीकारा जा रहा था। कैसी विडंबना थी, कैसा तिरस्कार! अंतर में एक क्रोध की ज्वाला भभकी। महसूस हुआ—माँ सौतेली नहीं होती, उसे सौतेला बना दिया जाता है। यदि इस घर का यही हाल रहा तो एक दिन मैं भी सौतेली माँ बन जाऊँगी।

यह सौतेलापन अंदर की भावना नहीं होती, उसके प्रति नारी जो विद्रोह करती है, वह 'सौतेलेपन' के रूप में प्रकट होता है। शायद इसके लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है पुरुष। यदि वह सबके बीच सतुलन रख सके तो 'सौतेली माँ' का कभी जन्म ही न हो।

देर तक बिस्तरे पर पड़ी मैं सिसकती रही थी। 'यह' सो चुके थे।

'इनसे' आगे और प्रतिवाद करना कटुता को बढ़ाना था।

पर मुझे लग रहा था, बस सबके यही उत्तरदायी हैं। यदि 'ये' पूर्ण पत्नी के रूप में स्वीकार लेते तो शायद मेरा माँ और बहू के रूप में स्वीकारा जाना सहज हो जाता पर…।

अब ?

पूरा सप्ताह बीत गया है इसी उधेड़बुन में। अब तो फैसला करना ही होगा। और ज्यादा देर करना खतरे से खाली नहीं।

क्या इस माहौल में एक नई जिंदगी का आगमन उचित होगा ?

मुझे बराबर अपनी बड़ी ननद के ये शब्द याद आ रहे थे—"माँ, जिंदगी तो इन बच्चों की बरबाद हो गई…। इसके अपने बच्चे हुए नहीं कि इन बच्चों की मिट्टी खराब हो जाएगी।"

क्या इस आरोप में कुछ सच्चाई है ? मैंने अपने मन को सच्चाई की कसौटी पर कई बार कसा है। हर बार लगा, यह आरोप एकदम निराधार है। मैंने पिंकी तथा पप्पू को कभी गैर नहीं समझा।

पर एक और जिम्मेदारी आने पर इन दोनों की तरफ से थोड़ा ध्यान हटना स्वाभाविक है। मेरी ममता के दो नहीं, तीन भागीदार हो जाएंगे। पर माँजी और दुनिया वाले तो इस प्यार के बँटवारे को सौतेलापन ही कहेंगे।

क्या सचमुच हमें एक तीसरे की आवश्यकता है ?

सच पूछो तो हमारा परिवार पूरा है। एक लड़का, एक लड़की। और क्या चाहिए हमें ? शायद आर्थिक दृष्टि से भी तीसरा एक बोझा सिद्ध हो। इनकी आय भी तो इतनी नहीं कि जो 'तीसरे' के खर्च को उठा सकें ?

नहीं, यह व्यर्थ का झंझट है। समस्या के हर पहलू पर विचार करके मैंने इस झंझट से मुक्ति पाने का फैसला कर लिया। यह फैसला करते समय मन के एक अनाम कोने में एक कसक-सी उठी थी। मैं अपने शरीर के एक अभिन्न अंश को नष्ट करने जा रही थी। और चारा भी क्या था ?

क्या 'इन्हें' बताना चाहिए ? क्या माँजी से पूछना चाहिए ? देर तक सोचने के बाद फैसला कर लिया, क्या फायदा ?

लेडी डॉक्टर ने कहा था, तीन दिन तक पूर्ण विश्राम करना है।

मैं चारपाई पर लेटी थी। पिंकी और पप्पू कुछ उदास से थे।

वह समझ रहे थे, मेरी तबीयत खराब है।

'यह' एकदम गुमसुम से थे, जैसे कोई बड़ा धक्का लगा हो।

माँजी को जैसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। काफी देर बाद उनका
ा टूटा। बोली, "बहू, यह तूने क्या किया ?"

"माँजी !" कमजोरी के कारण मुझे बोलने में कष्ट हो रहा था। मैंने
ने किंतु स्पष्ट शब्दों में कहा, "मैं नहीं चाहती थी कि पिंकी और पप्पू
मिट्टी खराब हो। ईश्वर ने दो दिए हैं, काफी हैं।"

"बहू, तू तो बड़ी महान निकली। पर इस तरह की जीवहत्या पाप
!"

"पाप-पुण्य कुछ नहीं, माँजी। सौतेलेपन के अभिशाप से बचने के लिए
छ-न-कुछ कीमत तो चुकानी ही होती।"

माँजी आगे कुछ नहीं बोली। उनकी आँखें छलछला आई थीं। मैंने
नज़रों से देखा, 'यह' नतमस्तक हो गए थे। □

विवेक

मैं जानता था कि इस दु:साहसपूर्ण कदम उठाने पर मेरी नौकरी पर आँच आ सकती है। प्राइवेट कंपनी में तो वैसे ही असुरक्षा रहती है। फिर भी युवावस्था में जोखिम भरे काम करने में रोमांच और सुख तो मिलता ही है।

मैं फाइलों में खोए हुए होने का नाटक कर रहा था। किन्तु मेरे कान दीक्षा और बॉस के बीच फोन पर होने वाले वार्तालाप को सुनने में व्यस्त थे।

"ठीक है, सर···। ठीक सवा छह बजे···जी, मैं नीचे आ जाऊँगी···। आप ऊपर आफिस में नहीं आयेंगे ?···ठीक है। नरीतो मर्सीडीज···वेरी वेल सर···।"

दीक्षा की टुकड़े-टुकड़े बातें मुझे उसके शाम के कार्यक्रम के बारे में सब कुछ बता गईं। ठीक है। आज दीक्षा को पीछा करना चाहिए।

दफ्तर साढ़े पाँच बजे बंद हो गया। फिर भी मैं बैठा रहा। ठीक छह-दस पर दीक्षा उठी। मैं भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। स्वचालित लिफ्ट में हम दोनों अकेले सातवीं मंजिल से नीचे जा रहे थे। बातों का सिलसिला मैंने ही शुरू किया, "आज आपको देर हो गई ?"

"नहीं तो। आज तो मैं जल्दी जा रही हूँ।"

"चलिए, आज मैं आपको लिफ्ट दे दूँ ?" मैंने उसको परीक्षा लेने के

उद्देश्य से कहा।

"नो, थैंक्यू।"

लिफ्ट नीचे पहुँच गई। जैसे ही हम लोग मुख्य द्वार से बाहर निकले, मैंने देखा—वहाँ नीली मर्सीडीज खड़ी है। पीछे की सीट पर बॉस बैठे थे। शोफर ड्राइवर की सीट पर था। दीक्षा ने पिछला गेट खोला और बॉस की बगल में बैठ गई। कार तेजी से चली गई।

मेरा मन वितृष्णा से भर गया। मेरी सम्पूर्ण योजना चौपट हो गई।

दीक्षा को बॉस की प्राइवेट सेक्रेटरी बनकर आए दो महीने हुए हैं। इससे पूर्व मिस रोजी थी इस पद पर। पूरे दफ्तर में बॉस और रोजी के रोमांस की चर्चाएँ होतीं। यहाँ तक सुनने में आया था कि रोजी कुछ 'चक्कर' में फँस गई तो बॉस ने उसे खासी मोटी रकम दे, नौकरी से अलग कर दिया था।

अब दीक्षा आ गई है। इतिहास अपने आपको फिर से दोहरा रहा है। वह मिस रोजी जैसी स्मार्ट, तेज-तर्रार और कहकहों के पटाखे फोड़ने में सक्षम नहीं। हर समय उदास और बुझी-बुझी-सी रहती है। फिर भी न जाने क्यों, दीक्षा का साधारण व्यक्तित्व मुझे पहली दृष्टि में ही भा गया। शायद अंतर्मन में एक और चोर-भावना सक्रिय थी? बॉस की सेक्रेटरी का कृपा-पात्र बनने का अर्थ था बॉस की नजरों में चढ़ना और फिर तरक्की ही तरक्की।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, दीक्षा मेरी आत्मा पर छाती चली गई। मैं दिल्ली जैसे महानगर में अकेला रहते-रहते तंग आ चुका था। होटलों का खाना खाते-खाते पेट में अलसरों ने वास कर लिया था। मेरे पास अपना स्वतंत्र, दो कमरों का फ्लैट था। मेरी आयु तथा आय एक पत्नी के लिए सर्वदा सक्षम थी।

दीक्षा से विवाह करने की उत्कट कामना का बीज उस दिन मेरे अंतर में जम गया जब बॉस ने दफ्तर में एक जबर्दस्त पार्टी दी। बीस लाख का कंट्रैक्ट कंपनी को मिला था।

पार्टी का सारा प्रबंध मैंने और दीक्षा ने मिलकर किया था। उस दिन मुझे दीक्षा को भली भाँति समझने का मौका मिला था। वह बेहद

थकी हुई-सी लग रही थी। अतः मैंने उसे सोफे पर बिठा कर, सारा काम अकेले ही निपटा दिया।

पार्टी के अंतिम क्षणों में मैंने पूछा, "दीक्षा जी, आप इतनी उदास और पीड़ित-सी क्यों रहती हैं ?"

"नहीं तो···।" उसका स्वर खोखला था।

"क्षमा करें, एक बात कहना चाहूँगा। आप विवाह क्यों नहीं कर लेती ? एक विशेष आयु के बाद, अकेलापन अभिशाप बन जाता है।"

दीक्षा ने एक दीर्घ निःश्वास से, बुझे स्वर में कहा, "विवाह ? मि० मोहन, जिनके भाग्य में दुःख-ही-दुःख लिखे हों, वे विवाह करके भी सुखी नहीं हो सकते।"

"ऐसी भी निराशा क्यों ? विवाह करके देखिए तो सही।

"किया था, मि० मोहन ! भाग्य में जो लिखा था, वही मिला।"

मैं बुरी तरह चौंक पड़ा। तो दीक्षा क्या विधवा है या परित्यक्ता ? उसकी आँखों में उभरी नमी मेरे अंतर्मन में उलझी गुत्थी को सुलझा नहीं पाई। मैंने सांकेतिक रूप से पूछा, "तो क्या ऽऽऽ ?"

"हाँ, केवल पाँच महीने का साथ रहा। फिर वह चले गए। एक सड़क दुर्घटना में।" दीक्षा का शेष वाक्य उसकी आँखों में उमड़ते आँसुओं की बाढ़ में बह गया।

कैसी त्रासदी जुड़ी थी दीक्षा की जिंदगी से ! यदि वह विधवा है तो क्या हुआ ? मैं उससे विवाह करूँगा, यदि संभव हुआ तो !

उस पार्टी के बाद फिर अपरिचय और तटस्थता की सीमा-रेखाएँ खिंच गईं मेरे और दीक्षा के बीच। हम दोनों ही मैनेजिंग डायरेक्टर के व्यक्तिगत अनुभाग में थे। तिस पर भी हम अलगाव की चारदीवारी में कैद थे। दीक्षा का ठंडा व्यवहार एक मुखौटा था। मन-ही-मन वह भी मुझसे प्रेम करती है, ऐसा मुझे लगा था। परन्तु हम दोनों के बीच शायद एक खलनायक उपस्थित था। हमारा बॉस।

एक दिन मेरे अनुमान की पुष्टि भी हो गई।

बॉस दो दिन के लिए बंबई गया था। डेढ़ दिन के लिए दीक्षा भी हो गई। दूसरे दिन लंच के बाद आई तो मैंने अपने मन की समस्त

अतृप्त भावनाओं को उसके समक्ष व्यक्त कर दिया।

"दीक्षा जी, एक बात कहना चाहूंगा।"

"कहिए।" दीक्षा सौम्य स्वर में बोली।

"यदि भाग्य ने एक बार धोखा दिया तो क्या ''?"

मेरी बात पूरी होने से पूर्व ही दीक्षा उत्तेजित होकर बोली, "आप जानते हैं, दूध का जला ''

मैंने भी दीक्षा की बात काट कर कहा, "दूध के जले दूध पीना नहीं छोड़ देते।"

दीक्षा कुछ नहीं बोली। छटपटाती, कसमसाती-सी बैठी रही। उसके बाद मैंने उसे कई बार कुरेदा। मेरे हर प्रश्न का उसके पास सिर्फ एक ही उत्तर था—मौन।

कुछ तो बोलो, दीक्षा! मैं तुमसे प्रेम करता हूं और तुम हो कि ''"

'मोहन, सच कहूँ। मैं तुम्हें पसंद करती हूँ, पर बॉस ''?"

वह उठ गई। बॉस के कमरे में चली गई। मैंने हाथों से अपना माथा पकड़ लिया। स्थिति स्पष्ट हो चुकी थी। मेरे अंतर में रोष का सागर उमड़ पड़ा। बॉस विवाहित है। उसके पास सब कुछ है। फिर वह रोजी जैसी अविवाहिता और दीक्षा जैसी विधवा से क्यों खिलवाड़ करता है?

मेरा अंतर आवेश से भर गया था। जी चाहा कि बॉस नामक इस खलनायक को अमिताभ बच्चन बन, मुक्के मार-मार कर धराशायी कर दूं। परन्तु यह फिल्मी स्थिति नहीं, जीवन की नग्न वास्तविकता थी। मैं हीरो का रोल करने में सर्वथा असमर्थ था।

फिर अपनी स्वप्न-सुन्दरी को खलनायक के पंजे से मुक्त कराने के लिए क्या किया जाए? कई दिन तक मैं योजना बनाता रहा। अंत में मुझे एक तरकीब सूझ गई।

एक दिन दोपहर को बॉस, दीक्षा को लेकर अशोका होटल गये थे, एक व्यापारिक लंच पार्टी में सम्मिलित होने के लिए। बस, मैदान साफ था। मैंने बॉस के घर फोन मिलाया। सौभाग्यवश श्रीमती सलूजा ही लाइन पर थीं।

"मैडम, मैं आपसे एकांत में मिलना चाहता हूँ।"

"क्यों ?"

"आपके हित में।"

"फोन पर बता दीजिए क्या बात है ?"

"फोन पर संभव नहीं है। मैं एकांत में मिल कर बताना चाहूंगा।"

"आपका नाम ?"

"उसका कोई महत्व नहीं है।"

"इतवार को सुबह ग्यारह बजे ठीक रहेगा।"

"मि० सलूजा तो उस समय नहीं होंगे ?"

"नहीं।"

"फिर ठीक है। मैं आऊंगा।"

बीच में तीन दिन थे। बड़ी तनावपूर्ण उत्तेजना में बीते वे। इस बीच दीक्षा से भी कोई बातचीत नहीं हुई। शायद बॉस बहुत व्यस्त थे।

इतवार को ठीक ग्यारह बजे मैं बॉस की कोठी पर पहुंच गया। मैं तो श्रीमती सलूजा को पहचान गया क्योंकि मैंने उन्हें दो-तीन बार पहले पार्टियों में देखा हुआ था।

श्रीमती सलूजा मुझे पुलिस अफसर की तरह ऊपर से नीचे तक घूर रही थीं। फिर वह बोलीं, "बोलो, क्या सूचना देना चाहते हो ?"

"आप अपने पति को अच्छी तरह जानती हैं ?"

"क्या बचपने की बातें कर रहे हो ?" वह उखड़ीं।

"मैडम, कुछ लोग उम्र-भर साथ रह कर भी अनसमझे रह जाते हैं।"

"साफ-साफ बताओ, क्या बात है। पहेलियां मत बुझाओ।"

"आपके पति आपके साथ विश्वासघात कर रहे हैं, मैडम।"

श्रीमती सलूजा को चौंकना चाहिए था। पर ऐसा नहीं हुआ। वह शांत स्वर में बोलीं, "यह गलत है। मेरे पति हमसे खूब प्यार करते हैं।"

"मैडम, वह आपसे प्यार करते हैं, ठीक है। पर दफ्तर में उनकी रंगीन मिजाजी के किस्से सबको पता हैं। पहले रोजी···और अब एक विधवा दीक्षा···," और संक्षेप में मैंने बॉस का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया उनके सामने।

श्रीमती सलूजा ने सारी बातें बड़ी धैर्यपूर्वक सुनीं। वह विचलित या उत्तेजित नहीं लग रही थी। हाँ, वह काफी गंभीर हो चुकी थीं। उन्होंने मुझे कुछ पीने के लिए पूछा। मैंने मना कर दिया।

वह मुसकरा कर बोलीं, "तुमने इतने परिश्रम से इतनी महत्वपूर्ण और रहस्यमय सूचना एकत्र करके मुझे दी, उसके लिए मैं तुम्हें इनाम देना चाहूंगी।"

"नहीं मैडम, यह सब मैंने इनाम के लिए नहीं किया।"

"फिर?"

मैं सकपका गया। कुछ उत्तर नहीं सूझा। जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"बैठ जाओ। क्या तुम दीक्षा से प्रेम करते हो?"

"जी, पर···।"

"क्या दीक्षा भी तुम से प्रेम करती है?"

"पता नहीं। ठीक से कुछ कह नहीं सकता।"

"पता कर लेते हैं," कह कर श्रीमती सलूजा ने ताली बजाई।

तभी मैंने अंदर से बॉस और दीक्षा को बाहर आते देखा। मैं स्तब्ध रह गया। मुझे लगा, मैं चेतनाशून्य हो जाऊंगा।

"दीक्षा, क्या तुम मि० मोहन से प्रेम करती हो?" श्रीमती सलूजा ने पूछा।

दीक्षा के मुख पर सिंदूरी रंग बिखर गया। वह गर्दन झुकाए खड़ी रही।

मैं भी बॉस को देख कर जड़वत् खड़ा हो गया। मेरी वाणी पंगु हो गई थी।

"मोहन!" यह बॉस का स्वर था। वह कह रहे थे, "बॉस और प्राइवेट सेक्रेटरी के संबंधों को संदेह की दृष्टि से देखना एक आम बात हो गई है। पर एक बात याद रखना। आँखें जो कुछ देखती हैं और मन जो विश्लेषण करता है, वह हमेशा सच नहीं होता।"

"मि० मोहन, दीक्षा हमारे दूर के रिश्तेदार की लड़की है। वह तो हमारी बेटी-सी है। हमारे साथ ही रहती है।" श्रीमती सलूजा बोलीं।

"रही रोजी, तो वह शादी करने जा रही थी। वह किसी चक्कर-वक्कर में नही फँसी थी। वह तो खुद अपनी मर्जी से नौकरी छोड़ कर गई थी।" बॉस बोले।

मेरे मुँह पर कालिख पुत चुकी थी। मुझे सलूजा दंपति से दृष्टि मिलाने का साहस नही हो पा रहा था। गई नौकरी। बस यही निष्कर्ष निकाल पाया मैं।

"दीक्षा से हमने बात की थी। वह तुमसे विवाह करने को सहमत है। इस 'विंटर' मे सूट करेगा तुम्हे?" श्रीमती सलूजा ने पूछा।

मैं मंत्रविद्ध, सज्ञाशून्य-सा इस नाटकीय परिवर्तन का साक्षी बना खड़ा था। लज्जित, ग्लानिभावना से ओत-प्रोत।

"किसी भी स्थिति को देख कर, फौरन कोई निष्कर्ष निकाल लेना विवेक नही मोहन कुमार!" बॉस ने शात स्वर मे कहा।

वे कितने महान थे और मैं कितना तुच्छ, इसकी अनुभूति मुझे हो चुकी थी। मैंने आहत दृष्टि उठाई। दीक्षा की दृष्टि में अनुराग भरा था।

□

नीचे-ऊपर वालों ने उनकी सेवा-निवृत्ति के अवसर पर उनकी जम कर प्रशंसा की थी। उन्होंने बेहद निष्ठावान, कार्यकुशल और सहृदय प्रशासक के रूप में उनका गुणगान किया था। नारायणन तो खुशी के मारे पागल हुआ जा रहा था क्योंकि उसी को उनकी जगह तरक्की मिल रही थी।

अपना परिचयपत्र प्रशासन अनुभाग में जमा करा कर जब वह दफ्तर से निकले थे तो दयाल उनके साथ था। वह उनके अधीन काम करता था। उसी ने उनसे पूछा था, "साहब, अब क्या इरादा है ?"

"कैसा इरादा ?"

"आपको देख कर कोई कह सकता है कि आप रिटायर हो गए हैं? साहब, एकदम 45 वर्ष के लगते हैं। आप शारीरिक रूप से चुस्त, मानसिक रूप से दुरुस्त और प्रशासनिक रूप से सक्षम। कुछ तो काम करेंगे ही...।"

"अरे, छोड़ो, दयाल। बहुत काम कर लिया। अब आराम करेंगे। खूब सोएँगे। बेटे के बेटे से खेलेंगे। बीवी से इश्क लड़ाएँगे और इसके बाद जो समय बचेगा, उसमें लिखेंगे—कहानियाँ, संस्मरण आदि।"

"बहुत सुंदर विचार है, साहब ! अब काम करके लेना भी क्या है? सारी जिम्मेदारियों से मुक्त हो गए हैं आप। एक लड़की थी, उसकी शादी कर दी। एक लड़का था, उसे एक प्राइवेट कंपनी में नौकरी लगवा दी। उसकी शादी कर दी। दो हजार पर रिटायर हुए हैं, साहब ! बारह सौ पेंशन तो मिलेगी ही। साहब, दो प्राणियों के लिए इतना पैसा काफी है," दयाल ने एक लम्बी साँस में उनके परिवार का चित्रांकन कर दिया था।

वह मंत्रमुग्ध से उसे बस देखते रह गए थे। बसस्टाप आ गया था। वह लाइन में खड़े हो गए थे। दयाल बजाय अपनी बस की पंक्ति की ओर जाने के उनके पीछे आ खड़ा हुआ था और बोला था, "साहब, दफ्तर आते-जाते रहिएगा। यह मत सोचिएगा कि अब दफ्तर में आपका कोई नहीं है।"

"ऐसा क्यों सोचते हो? मैं जरूर आऊँगा, पर आज नहीं। तुम इस बस से कहाँ जा रहे हो?"

"आपको घर छोड़ने।"

"अरे, छोड़ो, दयाल, क्या औपचारिकता में पड़ गए। मैं खुद ही चला

जाऊँगा।"

"अच्छा साहब," कह कर दयाल पंक्ति से बाहर निकल आया था। चलने से पहले ठिठका था। फिर पलट कर उनके मुँह के पास अपना मुँह ले जाकर वह बुदबुदाया था, "साहब, एक प्रार्थना करनी थी।"

"बोलो।"

"इस साल मुझे तरक्की मिल सकती है, अगर आप मेरी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट में मेरे बारे में बहुत अच्छी रिपोर्ट दे देते तो···।"

"मैंने तो तुम सब लोगों की रिपोर्ट लिख कर कई दिन पहले ही प्रशासन अधिकारी को भिजवा दी थी।"

"साहब, मेरी रिपोर्ट में क्या लिखा?"

"यह तो याद नहीं।"

दयाल चला गया। बिना अभिवादन किए। निराश सा।

"अरे जगत बाबू, आप इस कोने में खड़े क्या कर रहे हैं? आप कल रिटायर नहीं हो गए थे?" उनके सहयोगी रामास्वामी ने उनकी पीठ पर हाथ मारा और सामने आकर रुकी लिफ्ट में घुस गया।

संतरी द्वारा रोके जाने पर जगत बाबू लिफ्ट के बाईं तरफ एक कोने में खड़े हो गए थे और पिछली शाम उनके मानस-पटल पर जीवत हो उठी थी। अब क्या करें वह? घर लौट जाएँ? पर घर जाकर भी क्या करेंगे? अब आ गए हैं तो अंदर ही क्यों न चलें। पुराने साथियों और अधीनस्थ कर्मचारियों से भेंट ही हो जाएगी इसी बहाने।

वह स्वागत कक्ष की ओर बढ़ गए। जैसे ही उन्होंने स्वागत अधिकारी से अंदर जाने के लिए पास बनाने के लिए कहा, उसने पूछा, "किस से मिलना है? क्या काम है?"

इन दोनों प्रश्नों का उनके पास कोई उत्तर नहीं था। कुछ क्षण तक वह मौन खड़े रहे।

"क्या सोच रहे हैं? जल्दी बताइए! और लोग पास बनवाने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"अरे भई, मुझे नहीं पहचानते? मैं जगत···।"

"पर आप तो रिटायर हो चुके हैं।"

"तो... तो क्या मैं अब इस इमारत में भी नहीं जा सकता? इसमें मैंने जिंदगी के 35 साल गुजारे हैं।"

"तो क्या सारी उम्र इसी में रहने का इरादा है?" स्वागत अधिकारी ने कहा।

"ठीक है, मुझे नारायणन से मिलना है," जगत बाबू ने अनायास ही कह दिया। उनके अधीन काम करने वाला नारायणन तरक्की पा उनकी सीट पर आ बैठा होगा। चलो, चल कर देखते हैं, कैसा लगता है वह उनकी सीट पर बैठा हुआ।

स्वागत अधिकारी इंटरकाम पर शायद नारायणन से ही बात कर रहा था। यही पूछ रहा होगा कि जगत बाबू आए हैं। उनका पास बनाऊं या नहीं। कुछ देर के विचार-विमर्श के बाद स्वागत अधिकारी ने पास बना दिया।

वह लिफ्ट से दूसरी मंजिल पर गए। एक दिन पहले तक जो दफ्तर अपना था, अब वह कितना बेगाना, अजनबी-सा लग रहा था। रास्ते में दयाल मिला। देख कर उस अजनबी ने आंखें मूंद लीं। मुंह फेर लिया। अभिवादन तक नहीं किया।

"अरे भई, दयाल...," उन्होंने ही उसे रोका।

वह ठिठका। बेहद रूखे स्वर में बोला, "कहिए?"

एक ही दिन में इतना जमीन-आसमान जैसा अंतर! जगत बाबू ने उलझकर पूछा, "क्या बात है, जल्दी में हो?"

"नहीं तो।"

"फिर उखड़े हुए क्यों हो?"

"आप से ऐसी उम्मीद नहीं थी, जगत बाबू।"

उन्हें धक्का लगा। जिस व्यक्ति की साहब... साहब कहते जबान नहीं थकती थी, वही उन्हें नाम से पुकार रहा था। क्रोध और अवमानना की मिली-जुली अनुभूति से छटपटाते हुए उन्होंने पूछा, "मैंने क्या किया?"

रिपोर्ट में सिर्फ 'गुड' (अच्छा) लिखा और आप जानते हैं, अपने दफ्तरों में गुड का अर्थ है 'गुड फार नथिंग' (निकम्मा)। आज तक किसी

द' श्रेणी वाले को तरक्की मिली है ?" मुंह बना कर दयाल ने कहा र बिना उनकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए वह गलियारे में आगे बढ़ ा।

निर्जीव कदमों से वह अपने कमरे की ओर बढ़ गए। दरवाजा खोल अंदर घुसे तो अपनी सीट पर नारायणन को बैठे देख उन्हें इस कटु सत्य एहसास हुआ कि उनकी अपनी सीट अब पराई हो चुकी है।

और नारायणन ? ओह ! इतनी शुष्कता और अपमानित करने वाला वहार ! वह अंदर घुसे तो उसने सिर्फ गरदन उठा कर एक बार उन पर उचटी-सी निगाह डाली और फिर एक फाइल पढ़ने में खो गया। इल में निगाहें गड़ाए हुए ही वह बोला, "कहिए, जगत साहब, कैसे आना ा ?"

"बस यों ही चला आया।"

"पहला दिन है रिटायरमेंट का। आराम करना था।"

"जिसने 35 वर्ष तक•••।"

नारायणन ने बदतमीजी की हद कर दी। उनकी बात बीच ही में काट र वह बोला, "जगत साहब, 12 बजे सेक्रेटरी के कमरे में मीटिंग है। सी की तैयारी कर रहा था। इस समय मैं बेहद व्यस्त हूं।"

मतलब 'चले जाओ'। वह अपमानित से खड़े हो गए। बाहर आ ए। अब क्या करें ? अभी तो 11 भी नहीं बजे थे। वह तीन-चार और ोस्तों के पास गए। कुछ तो सीट पर ही नहीं थे। कुछ नारायणन की रह ही व्यस्त थे। उन्हें एक बात का विश्वास हो गया। दफ्तर में ज़िंदगी दस्तूर चल रही थी। वे सब हमेशा की तरह व्यस्त थे। हां, सिर्फ वह ही ालतू हो चुके थे।

अभी सिर्फ 12 ही बजे थे कि दफ्तर की अंधी गली के छोर पर पहुंच चुके थे। वह बाहर आ गए। बस से घर पहुंचे तो वे सबके सब चौंक गए।

"आज इतनी जल्दी कैसे आ गए ?"

पत्नी के इस प्रश्न ने उन्हें मर्माहत किया। वह महसूस कर रहे थे कि घर में उनकी उपस्थिति नापसंद की जा रही है। घर में जो स्वच्छंदता का

'गुड' श्रेणी वाले को तरक्की मिली है ?" मुंह बना कर दयाल ने कहा और बिना उनकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए वह गलियारे मे आगे बढ गया।

निर्जीव कदमो से वह अपने कमरे की ओर बढ़ गए। दरवाजा खोल वह अदर घुसे तो अपनी सीट पर नारायणन को बैठे देख उन्हे इस कटु सत्य का एहसास हुआ कि उनकी अपनी सीट अब पराई हो चुकी है।

और नारायणन? ओह! इतनी शुष्कता और अपमानित करने वाला व्यवहार! वह अंदर घुसे तो उसने सिर्फ गरदन उठा कर एक बार उन पर एक उचटी-सी निगाह डाली और फिर एक फाइल पढने मे खो गया। फाइल मे निगाहे गडाए हुए ही वह बोला, "कहिए, जगत साहब, कैसे आना हुआ ?"

"बस यो ही चला आया।"

"पहला दिन है रिटायरमेंट का। आराम करना था।"

"जिसने 35 वर्ष तक···।"

नारायणन ने बदतमीजी की हद कर दी। उनकी बात बीच ही मे काट कर वह बोला, "जगत साहब, 12 बजे सेक्रेटरी के कमरे मे मीटिंग है। उसी की तैयारी कर रहा था। इस समय मैं बेहद व्यस्त हूं।"

मतलब 'चले जाओ'। वह अपमानित से खड़े हो गए। बाहर आ गए। अब क्या करें ? अभी तो 11 भी नही बजे थे। वह तीन-चार और दोस्तो के पास गए। कुछ तो सीट पर ही नही थे। कुछ नारायणन की तरह ही व्यस्त थे। उन्हे एक बात का विश्वास हो गया। दफ्तर मे जिंदगी बदस्तूर चल रही थी। वे सब हमेशा की तरह व्यस्त थे। हाँ, सिर्फ वह ही फालतू हो चुके थे।

अभी सिर्फ 12 ही बजे थे कि दफ्तर की अंधी गली के छोर पर पहुँच चुके थे। वह बाहर आ गए। बस से घर पहुँचे तो वे सबके सब चौंक गए।

"आज इतनी जल्दी कैसे आ गए?"

पत्नी के इस प्रश्न ने उन्हे मर्माहत किया। वह महसूस कर रहे थे कि घर मे उनकी उपस्थिति नापसद की जा रही है। घर में जो स्वच्छदता का

"पर आप तो रिटायर हो चुके हैं।"

"तो ··तो क्या मैं अब इस इमारत में भी नहीं जा सकता? इसमें मैंने अपनी जिंदगी के 35 साल गुजारे हैं।"

"तो क्या सारी उम्र इसी में रहने का इरादा है?" स्वागत अधिकारी ने कहा।

"ठीक है, मुझे नारायणन से मिलना है," जगत बाबू ने अनायास ही कह दिया। उनके अधीन काम करने वाला नारायणन तरक्की पा उनकी सीट पर आ बैठा होगा। चलो, चल कर देखते हैं, कैसा लगता है वह उनकी सीट पर बैठा हुआ।

स्वागत अधिकारी इंटरकाम पर शायद नारायणन से ही बात कर रहा था। यही पूछ रहा होगा कि जगत बाबू आए हैं। उनका पास बनाऊं या नहीं। कुछ देर के विचार-विमर्श के बाद स्वागत अधिकारी ने पास बना दिया।

वह लिफ्ट से दूसरी मंजिल पर गए। एक दिन पहले तक जो दफ्तर अपना था, अब वह कितना बेगाना, अजनबी-सा लग रहा था। रास्ते में दयाल मिला। देख कर उस अजनबी ने आंखें मूंद लीं। मुंह फेर लिया। अभिवादन तक नहीं किया।

"अरे भई, दयाल···," उन्होंने ही उसे रोका।

वह ठिठका। बेहद रूखे स्वर में बोला, "कहिए?"

एक ही दिन में इतना जमीन-आसमान जैसा अंतर! जगत बाबू ने उलझकर पूछा, "क्या बात है, जल्दी में हो?"

"नहीं तो।"

"फिर उखड़े हुए क्यों हो?"

"आप से ऐसी उम्मीद नहीं थी, जगत बाबू।"

उन्हें धक्का लगा। जिस व्यक्ति की साहब···साहब कहते जबान नहीं थकती थी, वही उन्हें नाम से पुकार रहा था। क्रोध और अवशता की मिली-जुली अनुभूति से छटपटाते हुए उन्होंने पूछा, "मैंने क्या किया?"

रिपोर्ट में सिर्फ 'गुड' (अच्छा) लिखा और आप जानते हैं, अपने दफ्तरों में गुड का अर्थ है 'गुड फार नथिंग' (निकम्मा)। आज तक किसी

'गुड' श्रेणी वाले को तरक्की मिली है ?" मुँह बना कर दयाल ने कहा और बिना उनकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए वह गलियारे मे आगे बढ़ गया।

निर्जीव कदमो से वह अपने कमरे की ओर बढ गए। दरवाजा खोल वह अदर घुसे तो अपनी सीट पर नारायणन को बैठे देख उन्हे इस कटु सत्य का एहसास हुआ कि उनकी अपनी सीट अब पराई हो चुकी है।

और नारायणन ? ओह ! इतनी शुष्कता और अपमानित करने वाला व्यवहार ! वह अंदर घुसे तो उसने सिर्फ गरदन उठा कर एक बार उन पर एक उचटी-सी निगाह डाली और फिर एक फाइल पढने मे खो गया। फाइल मे निगाहे गडाए हुए ही वह बोला, "कहिए, जगत साहब, कैसे आना हुआ ?"

"बस यो ही चला आया।"

"पहला दिन है रिटायरमेंट का। आराम करना था।"

"जिसने 35 वर्ष तक···।"

नारायणन ने बदतमीजी की हद कर दी। उनकी बात बीच ही मे काट कर वह बोला, "जगत साहब, 12 बजे सेक्रेटरी के कमरे मे मीटिंग है। उसी की तैयारी कर रहा था। इस समय मैं बेहद व्यस्त हूँ।"

मतलब 'चले जाओ'। वह अपमानित से खडे हो गए। बाहर आ गए। अब क्या करें ? अभी तो 11 भी नही बजे थे। वह तीन-चार और दोस्तो के पास गए। कुछ तो सीट पर ही नही थे। कुछ नारायणन की तरह ही व्यस्त थे। उन्हे एक बात का विश्वास हो गया। दफ्तर मे जिंदगी बदस्तूर चल रही थी। वे सब हमेशा की तरह व्यस्त थे। हां, सिर्फ वह ही फालतू हो चुके थे।

अभी सिर्फ 12 ही बजे थे कि दफ्तर की अंधी गली के छोर पर पहुँच चुके थे। वह बाहर आ गए। बस से घर पहुँचे तो वे सबके सब चौंक गए।

"आज इतनी जल्दी कैसे आ गए ?"

पत्नी के इस प्रश्न ने उन्हे मर्माहत किया। वह महसूस कर रहे थे कि घर मे उनकी उपस्थिति नापसद की जा रही है। घर मे जो स्वच्छदता का

वातावरण था, उसमे व्यवधान आ गया था।

एक भयावह-सा खालीपन उन्हे कचोट रहा था। वह अपने कमरे में जाकर पढने लगे। किताब में मन नही रमा तो वह बैंक की पास बुक लेकर बैठ गए।

अरे, आज तो वेतन मिला नही। अब आगे से मिलेगा भी नही। तो फिर बैंक से ही पैसा निकालना होगा। सेवा-निवृत्ति से पूर्व मास का वेतन चेक द्वारा मिला था जिसे वह बैंक मे जमा कर चुके थे।

चेक काट वह बैंक पहुंचे। बचत खाता काउंटर पर काफी भीड़ थी। उस सीट पर कार्यरत कर्मचारी उनका बड़ा रोब मानता था। कितनी ही भीड़ क्यों न हो, सबसे पहले वह उन्ही को टोकन दे चेक पास कर देता था।

इस बार जब उन्होने उसे चेक दिया तो उसने उसे एक ओर दाब दिया। वह प्रतीक्षा करते रहे। पर काउंटर क्लर्क ने उन्हें क्यू मे लगा दिया था।

"भई जगदीश, जरा जल्दी···," उन्होंने दबे स्वर में कहा।

"थोड़ा इंतजार कीजिए। मैं नियमानुसार काम करूंगा, आपकी तरह," जगदीश ने बेहद रूखेपन से कहा।

वह सब कुछ समझ गए। जगदीश ने नहले पर दहला मारा था। कुछ दिन पहले न जाने कैसे टटपूंजिए से दीखते एक आदमी को वह ले आया था। कहने लगा कि इसकी पासपोर्ट की अरजी पर आप दस्तखत कर दीजिए। उन्होंने मना कर दिया था।

आधे घंटे बाद उनका चेक पास हुआ। वह सोच रहे थे। अगर वह जगदीश के आदमी की अरजी पर हस्ताक्षर कर भी देते तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ता है?

सेवा-निवृत्ति से पूर्व जगत बाबू ने दो योजनाएं बनाई थी। एक जम कर सोने की, दूसरी लिखने की। पर ये दोनो ही ठप हो गईं।

अब वह रात को निश्चिन्त हो सोना चाहते थे, पर नींद है कि सुबह चार बजे ही खुल जाती है। वह करवटें बदलते रहते हैं। पर कमबख्त

व्यक्तियों की नींद में खलल न पड़े, इसलिए वह उठते नहीं।

एक दिन वह जल्दी उठ कर रसोईघर में जा, अपने लिए सुबह की चाय बना रहे थे कि बरतनों की खटर-पटर से पत्नी की नींद खुल गई। वह बड़बड़ाती, कुनमुनाती आई और बरसने लगी।

"मैं कहती हूँ, तुम्हें क्या हो गया है? अब कोई दफ्तर जाना है जो इतनी सुबह उठ कर पूरे घर की नींद में विघ्न डाल देते हो? तुम्हें नींद नहीं आती, पर हम तो सारे दिन तुम्हारी तीमारदारी कर, मरपच के सोते हैं। सोओ और सोने दो।"

'जियो और जीने दो' के अन्दाज में पत्नी की कही इस बात ने उन्हें अंदर-ही-अंदर गुदगुदाया। न जाने उन्हें क्या सूझी, उन्होंने लपक कर पत्नी को आलिंगनबद्ध कर लिया।

"अरे, यह क्या कर रहे हो?"

"प्यार।"

"रिटायर हो गए हो। बुढ़ापे में यह चोचले नहीं सुहाते," कहते हुए पत्नी पाँव पटकती हुई चली गई।

चाय बना कर वह बैठक में पहुँचे। अपने रिटायरमेंट पर वह एक कहानी लिखने की सोच रहे थे। चाय पी कर वह लिखने बैठ गए।

लगभग आधे घंटे बाद पत्नी आई और बोली, "जरा डिपो से दूध तो ला दो।"

"देख नहीं रही हो कि मैं···।"

"किसलिए बेकार में कागज काले करते हो? नौकरी थी तो अखबार-पत्रिका वाले लिहाज में छाप देते थे, अब कौन छापेगा? पिछले चार हफ्ते में जितनी रचनाएँ भेजी थी, सब वापस आ गई हैं, कल शाम···।"

"क्या अंजुमन से भी?"

"हाँ।"

जगत बाबू का मन डूब गया। 'अंजुमन' का संपादक उनका पुराना दोस्त था। कई काम किए थे उसके। तो क्या वह भी उन्हें फालतू समझता है?

"उठो। बेकार स्याही और कागज में पैसा बरबाद करने से कोई लाभ

नहीं । जाओ दूध ला दो। डिपो पर बड़ी भीड़ है। दूध वाला लड़का तुम्हारी बड़ी इज्जत करता है।"

"ठीक है," एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर वह उठे। दस का नोट और छीके में चार खाली बोतलें लेकर वह दूध के डिपो पर पहुँचे। उनकी जान पहचान वाला लड़का दूध बाँट रहा था। उन्हें देख कर भी उसने अनदेखा कर दिया।

वह पंक्ति में खड़े हो गए। जब तक उनका नंबर आया, दूध खत्म हो चुका था। पहले ऐसा नहीं होता था। यदि बोतलें कम और आदमी ज्यादा होते थे तो वह प्रति व्यक्ति बोतलों की संख्या कम करके उनको दूध अवश्य दे देता था। पर आज ?"

"रघुवीर, दूध खत्म हो गया ?"

"जी, हाँ।"

"तुमने देखा तो था कि हम लाइन में खड़े हैं।"

"तो क्या हुआ ?"

"पहले तो तुम ऐसा नहीं करते थे।"

"बाबूजी, याद है, मैं आपके पास आया था। कमेटी के दफ्तर में नौकरी का इंटरव्यू था। इंटरव्यू लेने वाला अफसर आपका दोस्त था। मैं आपके पास गया था—पर आपने मुझे क्या उत्तर दिया था, याद है ?" रघुवीर एक ही साँस में कह गया।

वह हक्के-बक्के से रह गए। उन्हें याद आ गया। हाँ, उन्होंने कहा था, "बच्चे, मैं सिफारिश में विश्वास नहीं करता। हर इनसान को अपनी योग्यता तथा अनुभव के आधार पर नौकरी मिलनी चाहिए।"

वह हक्के-बक्के थे। तब उनकी यह बात सुन रघुवीर हक्का-बक्का रह गया था। वापस घर जाने के लिए वह मुड़े थे कि रघुवीर का स्वर सुन वह ठिठक गए : "पद, पैसा और शक्ति हमेशा साथ नहीं रहते, बाबूजी। ये हों तो इनका सदुपयोग करना चाहिए। वरना इनके न रहने पर मिट्टी खराब हो जाती है।"

रघुवीर के ये शब्द उनके कानों में गूंजने लगे। इतना अनुभवहीन,

अपरिपक्व लड़का जीवन की इतनी महत्वपूर्ण व्याख्या कर रहा है और एक वह हैं जिन्होंने पूरे 35 वर्ष यों ही गँवा दिए—सेवा-निवृत्ति के बाद के लिए अपने को बिना तैयार किए।

मरी चाल से वह घर की ओर लौट रहे थे। छीके में खाली बोतलें आपस में टकरा कर खनखना रही थी। उन्हें लगा, जैसे शक्ति का सूर्यास्त हो गया है। कुछ दिन पहले का शक्तिशाली व्यक्ति अब कितना बौना और नगण्य हो गया है। उनके चारों ओर गुमनामी के काले साए बिखर गए हैं।

रघुवीर ने एक बेहद कड़वे सच का उद्घाटन कर दिया था। अब उनका अस्तित्व इस खाली बोतल की भाँति था—मानव सवेदना के दूध से रहित।

□

स्वप्न-भंग

यह एक अत्यंत जटिल तथा जीवन पर दूरगामी प्रभाव छोड़ने वाला निर्णय था। कई वर्षों तक डॉक्टर सचिन ऊहापोह मे पड़े रहे। उधर अमरीका से सुरेंद्र का अंतिम पत्र आ चुका था। उसने अल्टीमेटम दे दिया था कि यदि अगस्त तक वह वहाँ नही पहुँचे तो उसकी तरफ से यह मामला समाप्त।

निर्णय के पक्ष-विपक्ष दोनो ओर वजनी तर्क थे।

इधर भारत मे उनके पास लगी-लगाई नौकरी थी। वह रेलवे चिकित्सा सेवा के अंतर्गत वरिष्ठ दंत-चिकित्सक थे। दिल्ली मे नियुक्ति, रहने के लिए सरकारी आवास, दो बच्चे, दोनो दिल्ली के एक प्रमुख स्कूल मे पढ रहे थे। घर मे समस्त सुख-सुविधाएँ थी। अच्छा फरनीचर, फ्रिज, कार, टी० वी०। पत्नी के भाई सुरेंद्र द्वारा यदाकदा अमरीका से भेजा ढेरों विदेशी सामान—टू-इन-वन से लेकर मिक्सी तक, नौकर-चाकर अलग। उन्हे किस बात का अभाव था? जीवन मे ऐसा क्या था, जो उन्हें नहीं मिला था? प्रतिष्ठा, भौतिक सुख-सुविधाएँ, सुखी परिवार, सेवा-संतोष और सबसे ऊपर मानसिक शांति।

... भी दो वर्ष मे एक बार सुरेंद्र और सुनीता अमरीका से ... जीवन की शांत झील मे असंतोष का एक ऐसा भारी ...व जो वर्षों तक उस जल को अशांत किए रहता।

हुआ सच

"यहाँ भारत में क्या रखा है, जीजाजी ? यह तो रेलवे लाइनों के किनारे-किनारे फारिग होने वाले और झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वालों का मुल्क है। यहाँ हर इन्सान चोर, बेईमान और भ्रष्ट है। यहाँ लोग गरीब और भूखे हैं, कीड़े-मकोड़ों की तरह मरते हैं। यहाँ आप अपनी योग्यता को नष्ट कर रहे हैं। ज़रा अमरीका आकर देखिए, क्या ठाठ है, डॉक्टरों की क्या आमदनी है। अमरीकी लोग दांतों के मामले में खास तौर से लापरवाह होते हैं। वहाँ किसी दंत-चिकित्सक से मिलना हो तो छः महीने बाद की तारीख मिलती है," सुरेंद्र अक्सर उनसे कहता।

"क्या वहाँ दांतों के डॉक्टरों की इतनी कमी है ?" डॉक्टर सचिन घोर आश्चर्य से पूछते।

"हाँ, जीजाजी, वहाँ आपके पेशे के काफी अवसर हैं, और आपको सुन कर आश्चर्य होगा कि वहाँ डॉक्टर की परामर्श फीस लगभग चार सौ डालर है।"

"चार सौ डालर अर्थात् चार हजार रुपए !" डॉक्टर सचिन अवाक् रह जाते।

"तभी तो भैया के इतने ठाट हैं," सीमा धीमे से कहती।

डॉक्टर सचिन विचारमग्न हो जाते। वह सुरेंद्र की अभूतपूर्व प्रगति और उसकी अविश्वसनीय भौतिक समृद्धि से बड़े प्रभावित थे।

वास्तव में दिल्ली के एक मेडिकल कालिज में वे दोनों साथ-साथ पढ़ रहे थे। दोनों घनिष्ठ मित्र थे। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् दोनों रिश्तेदार बन गए। सचिन ने सुरेंद्र की बहन से शादी कर ली। शादी के पश्चात् उन्हें रेलवे में नौकरी मिल गई।

सुरेंद्र ने [साथ पढ़नेवाली सुनीता से शादी कर ली। फिर वे उच्च डॉक्टरी शिक्षा के लिए लंदन चले गए। वहाँ तीन साल रहने के बाद वे अमरीका चले गए। वहाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर, मेरिलैंड में उन दोनों ने अपनी प्राइवेट प्रेक्टिस शुरू कर दी। धीरे-धीरे वे इतने सफल और समृद्ध हो गए कि बस पूछिए मत।

अब उन्हें वहाँ की नागरिकता भी प्राप्त हो गई है। उनका अपना

तिमंजिला मकान है। कैडिलक कार है। उनके पास इतना पैसा है जितना डॉक्टर सचिन पूरी उम्र में भी नहीं कमा सकते। जब भी वे दोनों भारत आते पैसा पानी की तरह बहाते थे। 60 हजार का कालीन, 40 हजार रुपये के पीतल और चाँदी के बरतन, हजारों रुपयों की साड़ियाँ—सब कुछ वे इतने सहज रूप से खरीद लेते थे, जैसे सब्जी-भाजी खरीद रहे हों।

सुरेंद्र और सुनीता ने ही यह सुझाव दिया था कि सचिन भारत छोड़ कर अमरीका आ जाएं। उनके साथ ही वह दंत-चिकित्सा की प्रैक्टिस करें। इसके लिए उन्होंने डॉक्टर सचिन और सीमा को अमरीका बुलाने के लिए आवश्यक कागजात भर कर भेज दिए थे।

और अब सुरेंद्र का अंतिम चेतावनी भरा पत्र भी आ गया था।

अमरीका और मार्ग में यूरोपीय देशों को देखने की ललक। पाश्चात्य देशों के विलासपूर्ण जीवन की चमक-दमक। भैया और भाभी के पास रहने का काल्पनिक सुख। जमने पर खुद वैसा ही वैभवपूर्ण जीवनयापन करने की आशा। कदाचित् अंदर-ही-अंदर पैसे की आदम भूख।

कई दिनों के विचार-विमर्श के बाद उन लोगों ने अमरीका जाने का फैसला कर लिया। वहाँ रहने के लिए घर था। करने के लिए काम था, काम के दाम थे। फिर डर किस बात का?

डॉक्टर सचिन ने एक वर्ष की छुट्टी के लिए आवेदन दिया। वह अस्वीकृत हो गया। जिस आधार पर वह छुट्टी ले रहे थे, वह कारण पर्याप्त नहीं था। अतः उन्हें त्याग-पत्र देना पड़ा।

नौकरी से त्याग-पत्र देकर, घर का सारा सामान औने-पौने दामों पर बेच कर, भारतीय मुद्रा को अपने बैंक में जमा करके, बच्चों का स्कूल से नाम कटा कर, केवल थोड़ा-सा ही आवश्यक सामान लेकर, जुलाई के अंतिम सप्ताह में डॉक्टर सचिन सपरिवार अमरीका के लिए एअर इंडिया से रवाना हो गए।

रास्ते में एक दिन के लिए वे लंदन रुके। वहाँ घूमे। कोई खास मजा नहीं आया। बंबई, कलकत्ता जैसी भीड़-भाड़। अंतर सिर्फ यह था कि यह भारतीय भीड़ की तरह अनियंत्रित नहीं, अनुशासित थी।

अगले दिन वे न्यूयार्क पहुँचे । उनके आगमन का दिन, तारीख और फ्लाइट सुनिश्चित थी । सुरेन्द्र ने फोन पर कहा था कि वह उन्हें लेने कैनेडी हवाई अड्डे पर आ जाएगा ।

सचिन ने एक घंटे तक प्रतीक्षा की । आठ घंटे तक सागर के ऊपर अनवरत उड़ान की थकान, पर सुरेन्द्र नहीं मिला । हार कर उन लोगों ने एक टैक्सी ली और मेरिलैंड पहुँच गए ।

सुरेन्द्र और सुनीता ने उनका जोरदार स्वागत किया ।

सचिन अमरीका पहुँचने पर, न्यूयार्क में सुरेन्द्र के न मिलने से उत्पन्न प्रथम झटके के प्रभाव से अभी मुक्त नहीं हुए थे, पर सुरेन्द्र को इसके लिए कोई खास अफसोस नहीं था । बातों ही बातों में उसने न आने का सिर्फ स्पष्टीकरण दे दिया । न कोई खेद प्रकट किया, न ही क्षमा माँगी । सुनीता की तबीयत ढीली थी । वह एक महिला-रोग-विशेषज्ञ डाक्टर के पास सुनीता को दिखाने ले गया था ।

सुनीता का रोग स्पष्ट दिखाई दे रहा था । सचिन और सीमा को घोर आश्चर्य हुआ । ताज्जुब की बात थी कि इन लोगों ने पत्र में कभी इसका जिक्र तक नहीं किया । कमाल करते हैं ये लोग !

"भाभी, कब तक होगा ?" सीमा ने मुसकरा कर पूछा ।

"10 अक्तूबर को," सुनीता ने धड़ल्ले से उत्तर दिया ।

"सुरेन्द्र, तुमने यह खुशखबरी पहले क्यों नहीं दी ?" सचिन ने शिकायती लहजे में कहा ।

"जीजाजी, यह कोई खुशखबरी की बात नहीं । इस देश में काम करने वाली औरतों के लिए गर्भधारण करने से ज्यादा झंझट कोई नहीं हो सकता," सुरेन्द्र ने उदास होकर कहा ।

"क्या करें, फैसला करना पड़ा । राजीव आठ का हो गया । अकेला पड़ता है । उसमें बड़ी अजीब भावनाएँ पैदा होने लगी थीं," सुनीता बोली ।

राजीव कमरे के एक कोने में अपनी बंदूक लिए खड़ा था । उसके मुख पर ऐसे भाव थे, मानो उसके घर में कोई अजनबी घुस आए हो । सीमा और सचिन ने उसे आलिंगनबद्ध कर चूमना चाहा, पर वह

छिटक कर दूर चला गया।

शुरू के दो-तीन हफ्ते तो यों ही गुजर गए। अमरीका के दर्शनीय स्थलों की सैर और सुरेन्द्र के समृद्धिपूर्ण जीवन की चमक-दमक के कारण जैसे उनकी आँखें चुंधिया गई थीं। उन्हें सिर्फ ऊपर की चमक ही दिखाई दे रही थी और वे इससे प्रभावित हुए थे।

पर काफी जल्दी ही उन्हें इस तेज चमक के नीचे की खुरदरी सतह दिखाई देने लगी। उन लोगों ने जो सपने देखे थे, वे भंग होने लगे।

पहला झटका तो उन्हें अमरीका की भूमि पर कदम रखते ही लगा था। जब कैनेडी एअरपोर्ट पर सुरेन्द्र और सुनीता उन्हें लेने नहीं आए। दूसरा हलका सा झटका तब लगा, जब अमरीका के दर्शनीय स्थलों की सैर के लिए उन्हें अकेले ही जाना पड़ा। सुरेन्द्र और सुनीता के पास बस एक ही हथियार था, "सचिन भाई, क्या बताएँ, यहाँ अमरीका में डाक्टरी पेशे में बस यही दिक्कत है। मरने तक को समय नहीं है। तुम देख ही रहे हो, मैं और सुनीता कैसे कोल्हू के बैल की तरह चौबीसों घंटों खटते रहते हैं।"

वे दोनों व्यस्त थे, इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु भारतीय परंपरा के अनुसार सप्ताहांत में अपनी गाड़ी में उन्हें सैर नहीं करा सकते, इस तथ्य से सचिन समझौता नहीं कर पा रहा था।

धीरे-धीरे और भी कई समस्याओं ने जन्म लेना शुरू कर दिया। वास्तव में सचिन को अमरीका में कुछ समय तक घूमने के लिए पर्यटक वीजा मिला है, वहाँ बसने की अनुमति नहीं। सुरेन्द्र ने उनसे कहा कि वह उनको वहाँ बसने की अनुमति दिलाने की कोशिश कर रहा है।

चूँकि वे लोग पर्यटक के रूप में एक निश्चित अवधि के लिए अमरीका में थे, उनके बच्चों को वहाँ किसी भी स्कूल में दाखिला मिलना असंभव था। प्रीति और पपली दोनों हर समय घर में रहते-रहते ऊब जाते और परेशान होते।

उधर राजीव ने इस तथ्य से समझौता नहीं किया था कि उसके घर में दो भाई-बहन आ गए हैं। वह अभी भी उनको घुसपैठिया समझता था।

मजाल है कि प्रीति और पपली में से कोई उसका खिलौना या किताबें छू भी लें।

एक दिन रात के खाने के बाद पपली ने राजीव की एक नई कामिक्स उठा ली और पढ़ने लगा।

राजीव ने रो-रो कर आसमान उठा लिया। फिर वह अपनी खिलौना बन्दूक उठा लाया और पपली को निशाना बनाकर अंग्रेजी में चीखा, "मैं इस बास्टर्ड (हरामी) का खून कर दूंगा।'

सीमा और सचिन को बहुत बुरा लगा। राजीव हर समय इन दोनों बच्चों से बदतमीजी से पेश आता था। उन्हें इतना दुख राजीव की बदतमीजी से नहीं, जितना सुरेन्द्र और सुनीता की लापरवाही से हुआ। इकलौता बेटा है तो क्या हुआ। मेहमानों से तमीज से पेश आना चाहिए। ये लोग अपने बेटे को इतना भी नहीं सिखा सकते? सीमा से रहा नहीं गया तो उसने धीमे स्वर में कह दिया, "सुनीता भाभी, राजीव को थोड़ा यह सिखाने की जरूरत है कि किसके साथ कैसे पेश आना चाहिए।"

सुनीता का चेहरा लाल हो गया। स्पष्ट था कि उसे सीमा की यह टिप्पणी बुरी तरह चुभी थी। अपनी बिखरती भावनाओं को नियंत्रित करते हुए वह सिर्फ इतना ही बोली, "बच्चों को पालना मुझे आता है। इसके लिए मुझे किसी से शिक्षा नहीं लेनी होगी।"

सीमा का अंतर कसक गया।

तभी सुरेन्द्र ने बात संभालने के लहजे में कहा, 'सीमा बहन इसने लम्बे अरसे तक अकेला रहा है, इसलिए इसमें ये भावनाएं आ गई हैं। बच्चों की बातों का बुरा नहीं मानना चाहिए। इसकी इन्हीं भावनाओं की वजह से हमने... ।"

दोनों में से कोई भी राजीव को कुछ कहने का साहस नहीं जुटा पा रहा था, पर इस घटना ने सीमा और सुरेन्द्र के अंतर्मन में एक अलगाव सा पैदा कर दिया।

अगले कुछ दिनों में सीमा को इस बात का एहसास हो गया कि अपने ही भाई के घर में उसकी हैसियत एक आया से ज्यादा नहीं है। जब वे लौट आए थे तो उन्होंने देखा था—इतने बड़े घर का सारा कारोबार

सुरेन्द्र और सुनीता ही करते थे। अमरीका में घरेलू नौकर तो होते नहीं। घर के सारे कामकाज के लिए विभिन्न प्रकार की [illegible] मशीनें होती हैं, पर उन मशीनों को चलाने के लिए भी तो आदमी चाहिए।

जिस दिन से सीमा यहाँ आई, सुनीता ने घर का सारा काम उस पर छोड़ दिया। सुरेन्द्र को क्लीनिक से लौटते रात के आखिरी [illegible] [illegible] दूध के गिलास तक सारा काम वह ही करती। फिर भी [illegible] [illegible] [illegible] ज्यादा [illegible] नहीं था [illegible] हुई नहीं कि सुनीता उस पर [illegible] [illegible] वह सचमुच नौकरानी हो।

"इतनी महँगाई है, जरा चीजों का भाव देखिए, आठ डालर किलो। और आप हैं कि बरबाद करने पर तुली हैं।"

दो महीने में ही सीमा का मन इस घर से ऊब गया। कहाँ भारत में अपने घर की स्वतंत्रता और कहाँ अमरीका में घर-बाहर की यह दमघोटू अपमानित करने वाली परतंत्रता।

घर में उसके साथ यह अपमानजनक व्यवहार और बाहर तो सामान्य घृणा का माहौल है ही। एक आम अमरीकी अश्वेत को घृणा की दृष्टि से देखता है। सामाजिक असुरक्षा इतनी जबरदस्त कि सुनीता और सुरेन्द्र क्लिनिक जाते तो सीमा को सख्त हिदायत कर जाते कि वह किसी भी हालत में दरवाजा न खोले। आए दिन वहाँ बलात्कार की घटनाएँ घटती रहती थीं।

सीमा दिन भर घर में रहती—आतंकित, अपमानित और ऊबी हुई सी। उसके बच्चों में भी हीन भावना आती जा रही थी। उधर सचिन सुरेन्द्र के क्लिनिक आने-जाने लगा था। वह वहाँ पर उनकी प्रशासकीय दृष्टि से थोड़ी सहायता कर देता। डाक्टरी करना निषेध था। प्रशासकीय काम भी वह चोरी-छिपे करता। अगर आप्रवास विभाग को कहीं पता चल गया कि पर्यटन वीजा लेकर आया व्यक्ति कोई काम कर रहा है तो उसे बंदी बना कर जेल में डाला जा सकता था।

इसी तरह अक्तूबर आ गया। सुनीता नरसिंग होम में भरती हो गई।

बढ़ गई हैं। एक मास के शिशु को समय से दूध पिलाना, नहलाना-धुलाना, कपड़े धोना, टट्टी-पेशाब साफ करना, बीमारी-हारी में देखभाल करना, तिस पर तनिक सी चूक होने पर सुनीता का उस पर चीखना।

एक दिन प्रीति ने बेबी को गोद में लेकर चूम लिया तो सुनीता ने उसे डांट दिया, "यह क्या करती हो? यहां भारतीय तौर-तरीके नहीं चलेंगे। इस तरह चूमने से इतने छोटे बच्चे को इनफैक्शन होने का डर रहता है।"

प्रीति खिसिया गई। वह दूसरे कमरे में जाकर रोने लगी। सीमा से रहा नहीं गया। उस रात वह खूब रोई और सचिन से बोली, "हम लोग कहाँ आ फँसे हैं?" मैं कहती हूँ, भारत वापस चलो। मैं यहाँ नहीं रह सकती।"

"सीमा, थोड़ा धैर्य रखो। अभी तक सुरेन्द्र सुनीता के प्रसव की वजह से व्यस्त था। मैं उससे बात करूंगा, सचिन ने सीमा को भावनात्मक सहारा दिया।

"जो भी फैसला करना हो, जल्दी करो। अगर अमरीका में रहना है तो अपना अलग स्वतंत्र घर लेकर रहो। मैं यहाँ, इस घर में अब किसी हालत में भी नहीं रह सकती," सीमा ने निर्णायक स्वर में कह दिया।

दिसम्बर की कड़कड़ाती सर्दी पड़ने लगी थी। 20 तारीख को खूब बर्फ गिरी। छुटके को सर्दी हो गई। उसकी नाक बहने लगी थी। पपली को भी हलका बुखार था।

अगले दिन सुनीता क्लिनिक नहीं गई। नवजात को हुई तनिक सी सर्दी ने उसे बेहद तनावग्रस्त कर दिया था। नाश्ते के बाद लगभग 11 बजे जब उसने सीमा को एक प्याला काफी बनाने का आदेश दिया तो जैसे एक भयंकर विस्फोट हो गया।

सीमा के अन्तर में कई हफ्तों से धधकता ज्वालामुखी फट पड़ा। वह उखड़ कर बोली, "खुद बना लो। मुझे क्या नौकरानी समझा हुआ है?"

"चार इन्सान तीन महीने से यहाँ पड़े रोटियाँ तोड़ रहे हैं, सो कुछ नहीं। जरा-सा काम के लिए कह दो तो बस।"

"भाभी!" सीमा चीख पड़ी।

"सीमा, मेरे ही घर में मुझ पर चीखने की जरूरत नहीं। अगर बिना मेहनत-मशक्कत रोटी तोड़ने का शौक है तो कहीं और तशरीफ ले जाइए। इस घर में कामचोरों के लिए जगह नहीं है।"

ओह! अपमान की पराकाष्ठा! उसकी सगी भाभी, सगे भाई की पत्नी द्वारा ऐसा व्यवहार! शायद ये अमरीकी संस्कार बोल रहे थे? "हमने तो सोचा था, तुम लोगों के आने से प्रसव के समय कुछ मदद मिलेगी, पर यह तो जी का जंजाल हो गया। चौबीसों घंटे का क्लेश। इससे तो अच्छा था, अमला को बुला लेती। महीने-दो महीने उसकी पढ़ाई का हर्ज ही तो होता।"

सीमा ने सुनीता की बड़बड़ाहट सुन ली थी। इतना जबरदस्त विश्वासघात। बुला लेती अपनी बहन अमला को। उनकी जिन्दगी क्यों तबाह की? अपने सुख और संकट के क्षणों में सहायता के लिए इन लोगों को सहारे की जरूरत थी और वे लोग मूर्खों की तरह अपनी जमी-जमाई जिन्दगी को त्याग कर, विस्थापितों की तरह यहाँ आ गए। बनावटी समृद्धि और काल्पनिक वैभव की मृगतृष्णा के पीछे भागते हुए।

सीमा रो पड़ी। वह अपने कमरे में जाकर पलंग पर गिर पड़ी। आँसुओं की धाराएँ बह रही थीं। दोनों बच्चे भी सहमे-से पलंग की पाटी पर बैठे, माँ को सांत्वना दे रहे थे।

"माँ, अपने घर चलो। अब हम यहाँ नहीं रहेंगे," प्रीति बोली।

"माँ, रोओ मत," पल्लो कह रहा था और माँ के आँसू पोंछ रहा था।

कुछ ही देर बाद सीमा ने अपने को संयत कर लिया। उसने भारत लौटने का अंतिम निर्णय कर लिया था।

शाम को सचिन लौटे। उनका चेहरा भी उतरा हुआ था।

"क्या हुआ ?" सीमा ने चिंतित स्वर में पूछा।

"पहले तुम बताओ। तुम भी तो काफी परेशान लग रही हो। क्या बात है ?"

"कुछ नहीं, मेरे ख्याल से हमें पहली उपलब्ध फ्लाइट से भारत लौट चलना चाहिए," सीमा ने निर्णायक स्वर में कहा।

"हाँ, सीमा, इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प भी तो नहीं है।"

"मतलब ?"

"मैंने तो पता किया है। यहाँ दंत-चिकित्सक को प्रैक्टिस करने के लिए पहले यहाँ की दो वर्ष की पढ़ाई करनी होगी। उसके पास होने पर वे प्रैक्टिस की आज्ञा देंगे। भारत की पढ़ाई करने के लिए कोई महत्त्व नहीं है।"

"हद हो गई !"

"यही नहीं, यहाँ बसने के लिए वीजा भी इतनी सरलता से नहीं मिलने वाला। हमारे सैलानियों के वीजा की मियाद भी अब जल्द ही खत्म होने वाली है।"

"हमें मूर्ख बनाया गया है," सीमा ने दृढ़ता से कहा।

"शायद तुम ठीक कह रही हो, सीमा," डाक्टर सचिन ने तत्काल कहा। फिर कुछ सोच-विचार कर वह बोले, ' शायद इसके लिए हम भी कुछ सीमा तक जिम्मेदार हैं।"

"हाँ···पर और आगे मूर्ख बनने से फायदा ?"

"हाँ, हमारे पास वापस लौटने के लिए टिकट तो है ही। मैं कल ही आरक्षण करा लेता हूँ।"

उस रात को घर में अनबोला जारी रहा। माहौल बेहद तनावपूर्ण बना रहा। त्रास भय, कौतूहल का वातावरण।

सीमा के अन्तर्मन में एक क्षीण सी आशा थी कि डाक्टर की बजाय सुरेन्द्र उसे थोड़ा बहुत भावनात्मक सहारा देगा, पर यह आशा भी दुराशा-मात्र ही थी। वे दोनों ही इस एक गहरे षड्यन्त्र में शामिल थे।

तीन दिन बाद वे अमरीका और भैया-भाभी से अलविदा कह भारत

के लिए रवाना हो गए। सीमा के मन में बार-बार एक बात ...
गूंज रही थी—'सब कुछ लुटा के होश में आए तो क्या हुआ?'

साथ ही उसके मन में एक और भयंकर समस्या ने जन्म ले लिया था। सचिन तो अपनी लगी-लगाई नौकरी छोड़ आए थे। अब भारत जाकर वह क्या करेंगे?

"मुझे उम्मीद है कि अधिकारी लोग मेरे स्वीकृत त्यागपत्र को वापस लेने की अनुमति दे देंगे," सचिन ने सहसा कहा।

तो क्या सचिन को उसके अंतर्मन में उठते झंझावात का आभास हो गया था? शायद, पर एक बात थी। दोनों को ऐसा अवश्य महसूस हो रहा था जैसे मोह-भंग तथा स्वप्न-भंग की स्थिति के बाद वे काफी परिप[क्व] हो चले हैं।

कड़वा अतीत

हर लड़की एक सपना देखती है—खुशी का सपना। वह चाहती है कि उसका अपना एक घर हो, चाहे वह छोटा-सा ही क्यों न हो। एक प्यारा-सा पति हो और यथासमय वह एक खूबसूरत बच्चे की माँ बन जाए।

शादी तय होने के साथ ही इस खुशी के सपने के साकार होने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। कितनी खुशी और उल्लास का अवसर होता है यह!

माला के जीवन में यह सुखद क्षण आ गया था। पर वह बेहद दुखी थी। साथ ही चिंतित और परेशान भी। आगामी विभीषिका ने उसके पेट की भूख, रातों की नींद और मन का चैन सब कुछ लूट लिया था। वह [illegible], दुखी-दुखी और परेशान-सी। उसने अपनी किसी भी सहेली को यह नहीं बताया था कि उसकी शादी तय हो गई है।

हुआ भी बड़ा झटपट काम। घरवालों ने पहला लड़का देखा और मामला पट गया। लड़का सुंदर, स्वस्थ और सुशील लग रहा था। एक प्राइवेट कंपनी में नौकरी करता था। करीब आठ सौ वेतन और तीन सौ भत्ते के मिला कर हजार से ऊपर पड़ जाते थे।

उनका विवाह पक्का हो जाने से घर में उत्सव जैसा माहौल छा गया। बाबूजी बेहद खुश थे। मुख पर उल्लास, पर आँखों में नमी। उनके [illegible]

पर लाड़ से हाथ फेर कर बोले थे, "कैसा संयोग है, माला। पहले ही लड़के से तेरी बातचीत चली और रिश्ता पक्का हो गया। आदमी भी बड़े शरीफ हैं। कोई मांग नहीं की है। काश, आज तेरी माँ जिंदा होती।"

वह क्या कहती? उसे तो पहले से ही माँ का अभाव खटक रहा था। यदि माँ जीवित होती तो उसकी ऐसी दुर्दशा होती? क्या सुरेश की इतनी हिम्मत पडती और वह उसे इस तरह सताता?

सीमा और नीना भाभी भी उसकी शादी तय हो जाने से बेहद खुश थी। सीमा की टिप्पणी बड़ी मजेदार थी, "दीदी, आजकल तो लड़कियों के लिए लड़का तलाश करने मे माँ-बाप के जूते घिस जाते हैं। पर तुमने तो कमाल कर दिया। पहले ही टेस्ट मैच मे सेंचुरी ठोक दी।"

नीना भाभी वडी चुहलबाज हैं। उन्होंने उसकी कमर मे चोंटा भरा और फिर कस कर अपने से भीच कर बोली, "ऐसी पटाखा चीज को कौन नापसद कर सकता है।"

माला को भाभी की सस्ती बातें और अश्लील हरकतें नही सुहाती पर वह विरोध भी तो नही कर पाती।

घर के इस उल्लासमय माहौल ने उसके अंतर के भय को कम किया। वह हर समय यही सोच कर छटपटाती रहती थी कि उसका काला अतीत उसके स्वर्णिम भविष्य को नष्ट करने जा रहा है।

एक दिन गजब हो गया। चौथे पीरियड के बाद वह कालिज से बाहर हो गई। अपनी सबसे पक्की सहेली इला के साथ वह कालिज से बाहर आई तो देखा, मुख्य द्वार के पास ही उसके भावी पति आलोक खड़े थे, अपनी मोटर साइकिल से सट कर।

उन्हें देख कर माला बुरी तरह चौंक गई। साथ ही वह बेहद घबरा गई। उसके मुंह से अनायास एक प्रश्न फिसल गया, "आप यहां कैसे?"

"तुम्हारे साथ डेट मारने आया था," आलोक ने मुसकरा कर कहा।

"क्या दफ्तर बंद है?"

"नही, छुट्टी ले ली थी।"

"तुम्हारा बायफ्रेंड है, माला?" इला ने पूछा। माला के उत्तर देने से पूर्व ही उन दोनों ने आपस मे एक-दूसरे का परिचय प्राप्त कर लिया।

यह सुन कर कि आलोक उसका भावी पति है, इला खुशी से उछल पड़ी और उसे झिड़कते हुए बोली, "शादी पक्की हो गई और मुझे बताया तक नहीं, यार। हद हो गई।"

माला कुछ नहीं बोली। उसकी आँखों में उदासी की बदली तैर रही थी।

"आप भी चलिए न, इलाजी," आलोक बोला।

"न बाबा, अपने कबाब में हड्डी बन कर क्या करेंगे?"

तभी माला ने एक महत्वपूर्ण फैसला कर लिया। उन दोनों के वार्तालाप को भंग करते हुए वह बोली, "आलोक, आज तो कोई कार्यक्रम नहीं बन सकता। पिताजी की तबीयत कुछ ढीली है। मुझे सीधे घर जाना है।"

"फिर किसी दिन सही। अगले शनिवार को दोपहर, यहीं, इसी समय। पहले सिनेमा चलेंगे, फिर शाम को किसी रेस्तोरां में शाम की चाय। समझी? घर पर कह कर आना। समझी और हाँ, कालिज के बाहर अकेली ही मिलना, समझी?"

"यह क्या समझी-समझी लगा रखा है, होने वाले जीजाजी साहब," इला ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया।

आलोक ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपनी मोटरसाइकिल पर सवार हो दोनों का अभिवादन कर चला गया।

"यार, तेरा होने वाला मियाँ तो बड़ी मजेदार चीज है," इला बोली।

इला की यह अनायास प्रशंसा भरी प्रतिक्रिया भी माला के अंतर में जमी अवसाद की बर्फ-शिलाओं को न पिघला सकी। अगले हफ्ते तो आलोक से मिलना ही होगा। तब?

वह आतंकित और भयभीत हो उठी। यदि आलोक से मिलने पर उसके काले अतीत का रहस्योद्‌घाटन हो गया तो?

"किस सोच में पड़ गई है तू? लगता है तू कुछ परेशान है," इला ने उसे कुरेदा।

"कुछ भी तो नहीं," माला ने उसे टालना चाहा।

"देख, माला, तू मुझसे कुछ छिपा रही है। जरूर कोई खास बात है,

वरना तू आलोक को इस तरह नहीं टालती। बता न क्या बात है?"

माला चुप खड़ी रह गई।

"नहीं बताएगी?"

"बड़ी लंबी कहानी है।"

"तो चल, कालिज के कैफे में जाकर बैठते हैं।"

इला माला को काफी हाउस ले गई। एक एकांत कोने में जाकर दोनों बैठ गईं। इला ने दो प्याले काफी मँगवा ली। काफी पीते हुए माला ने अपनी संपूर्ण व्यथा-कथा इला को सुना दी।

"इला, मेरी दुर्दशा की कहानी शुरू होती है उस दिन से जब मेरा ममेरा भाई सुरेश हमारे घर में सोने लगा।

"मेरे पिताजी ने सुरेश को तरस खा कर हमारे यहाँ सोने की आज्ञा दे दी थी। इसका कारण था, हमारे मामा भी उसी गली में रहते थे। उनकी आर्थिक स्थिति कोई खास अच्छी नहीं थी। वह एक कागज व्यापारी के यहाँ मुनीम थे। इतना कमा लेते थे कि बस परिवार को दो वक्त की रोटी जुट जाती थी।

"उनके पास सिर्फ एक ही कमरे का मकान था। उसी कमरे में बैठक, खाना-पीना, नहाना-धोना, सोना। सुरेश की पढ़ाई में हर्जा हो रहा था।

"मामाजी का खयाल था कि अगर सुरेश अपनी बूआ के घर सो जाए तो वह अपनी दोनों बहनों के साथ मिल कर आराम से, एकांत में भली भाँति पढ़ाई कर सकता है।

"घर वालों के इस निर्णय से मैं कतई खुश नहीं थी। इसका कारण था। मुझे शुरू से ही सुरेश के हाव-भाव अच्छे नहीं लगे थे। वह कई बार हाथ-पाँव चलाता। छेड़छाड़ करता। हँसी-मजाक और अश्लील हरकतों का अंतर तो कोई भी समझ सकता है। मैंने माता-पिता के निर्णय का हल्का-सा विरोध करते हुए कहा था, 'माँ, सुरेश का व्यवहार ठीक नहीं है।'

"'माला, सुरेश तेरा ममेरा भाई है। वह तुझसे क्या दुर्व्यवहार करेगा? बराबर के भाई-बहनों में थोड़ी बहुत चुहल और शरारत तो चलती ही रहती है।' मैं माँ को सब कुछ विस्तार से नहीं बता पाई थी

या माँ जान-बूझ कर अपने सगे भाई के आवारा लड़के के खोट को दरगुजर कर गई थीं।

"जो भी हो, माँ को इस प्रतिक्रिया के सामने मैंने हथियार डाल दिए। रात को सुरेश हमारे कमरे में सोने लगा। मुझे खूब अच्छी तरह याद है वह दिन, जब पहली बार सुरेश ने मेरे साथ स्वतंत्रता ली थी।

"न जाने क्यों मैं बड़ी गहरी नींद में सोती थी। एक बार नींद आई नहीं कि बस सुबह ही होती थी। उस दिन रविवार था। हम सबने टी० वी० पर पिक्चर देखी, खाना खाया, फिर अपने कमरे में आकर पढ़ने लगे। कोई पाँच मिनट बाद सीमा तो उबासियाँ लेने लगी और वह सो गई। साढ़े ग्यारह बजे के करीब मुझे भी जोर की नींद आने लगी। मैंने सुरेश से पढ़ाई खत्म कर बिजली बंद करके सोने को कहा तो वह बोला कि मैं सो जाऊँ, वह आधे घंटे बाद सोएगा।

"बाहर बड़ी तेज वर्षा हो रही थी। बिजली चमक रही थी। मैं सो गई। गहरी नींद में सपने भी तो नहीं आते। मैं घोड़े बेच कर सोई हुई थी कि अचानक मैं जाग गई। बड़ी असह्य-सी मीठी पीड़ा हो रही थी मेरे वक्षस्थल में। मैं हड़बड़ा गई। उठने को हुई तो किसी के दोनों हाथों ने मुझे दबा कर फिर से लिटा लिया।

"मेरी चेतना लौटी। मैंने आँखें खोलीं। कमरे में घना अँधेरा था। मैंने अपने वक्ष को मसलते दोनों हाथों को कस कर पकड़ लिया और लगभग चीखने ही वाली थी कि दोनों हाथों में से एक हाथ फिसल कर मेरे मुँह पर पहुँच गया। एक हाथ अभी भी मेरे शरीर के वर्जित क्षेत्र का अतिक्रमण कर रहा था।

"मैंने जोरदार संघर्ष कर अपने को मुक्त किया और बोली, 'यह क्या कर रहे हो, सुरेश ?'

"'श्री···श्री···' सुरेश ने एकबारगी फिर अपने हाथ से मेरा मुँह बंद कर दिया।

"'मुझे छोड़ो तो अच्छा नहीं होगा···।'

"'चुपचाप सो जाओ वरना सीमा जाग जाएगी।' सुरेश ने फुसफुसा कर कहा।

" बस, इसके बाद उसने मुझे छोड़ दिया और खुद सो गया। उस रात मैं कतई नहीं सो सकी। अगले दिन भी मैं बड़ी अन्यमनस्क सी रही। मेरे संपूर्ण शरीर में एक विचित्र-सी मीठी-मीठी पीड़ा हो रही थी।

" अगली रात को मैंने अपनी और सीमा की चारपाई हटा कर बिछा ली और सुरेश की चारपाई को कमरे के एक कोने में अपनी चारपाइयों से दूर कर दिया।

" उस दिन हम लोग पढ़ रहे थे किंतु पढ़ाई में हम तीनों में से किसी का मन नहीं लग रहा था। सीमा कोई फिल्मी पत्रिका ले आई थी और हेमा मालिनी व धर्मेन्द्र तथा रेखा व अमिताभ बच्चन के इश्क की कहानियों को चटखारे ले-ले कर पढ़ रही थी।

" मैं आधी रात के संकट के बारे में आतंकित थी। शाम से रात 10 बजे तक सुरेश मुझसे एक शब्द भी नहीं बोला था। हाँ, वह मुझे कनखियों से बार-बार देखता और स्वार्थ-भरी सी मुसकान उसके होंठों पर उभर आती।

" उस रात कुछ नहीं हुआ। शायद अगले कई दिन तक सुरेश ने कुछ न कर मेरा विश्वास जीत लिया था। मैं फिर से गहरी नींद में सोने लगी थी यह सोच कर कि सुरेश ने अपनी गलती को महसूस कर लिया है। शायद चारपाइयों की दूरी ने भी मेरी मदद की थी। पर तभी एक रात को हद हो गई। मैं बड़ी गहरी नींद में सोई हुई थी कि तभी मैंने महसूस किया कि जैसे कोई और व्यक्ति भी मेरे साथ बगल में मेरी ही चारपाई पर मुझसे लिपट कर सोया हुआ है। मैंने सोचा, हो न हो सीमा है। कई बार डर की वजह से वह मेरी चारपाई पर आकर सो जाती थी। अतः मैंने उसे कसकर अपने से लिपटा लिया।

" सहसा मैं यह सोचकर घबरा उठी कि अगर यह सीमा है तो वह मेरे शरीर से इस तरह निर्लज्जतापूर्वक क्यों खिलवाड़ कर रही है। मेरे शरीर के हर वर्जित क्षेत्र का उसके हाथ अतिक्रमण कर रहे थे।

" तभी मेरी नींद खुल गई। मैंने देखा, वह सीमा नहीं सुरेश था। मैं छटपटा कर उठ बैठी और सुरेश को अपनी चारपाई से धकेलती हुई बोली, 'ओह, यह तुम थे!'

" सुरेश उठा और चुपचाप अपनी चारपाई पर जा कर सो गया। पर मैं उस रात ही क्या अगली कई रातों तक नहीं सो पाई। सुरेश राहु-केतु बन मेरी जिन्दगी की खुशियों से चिपक गया था। मेरी समस्त खुशियों को जैसे ग्रहण लग गया था।

" और कई दिन के अंतराल के बाद एक दिन रात नौ बजे जागते हुए ही सुरेश ने स्वतन्त्रता ले ली। उस दिन शाम को तेज वर्षा हुई थी, इसलिए मौसम काफी ठंडा हो गया था। रात का खाना खत्म करके मैं तो अपने कमरे में आकर पढ़ने लगी। सुरेश और सीमा भाभी के कमरे में जाकर टी० वी० पर आ रही एक अंग्रेजी फिल्म देख रहे थे।

" कोई पाँच मिनट बाद ही सुरेश आ गया। मैं काँप गई। उसने कमरे का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया। मैंने भयभीत होकर कहा, 'दरवाजा बन्द मत करो।'

" 'बड़ी ठंडी हवा आ रही है।' सुरेश ने कहा।

" 'सीमा कहाँ है?' मैं काँप रही थी, ठंड के कारण नहीं, सुरेश के साथ अकेली होने की वजह से।

" 'वह टी० वी० देख रही है और आधे घंटे बाद आएगी,' कहता हुआ सुरेश किसी फिल्मी खलनायक सा मेरी तरफ बढ़ा। मैं भयभीत हो खड़ी हो गई। बिजली की सी गति से सुरेश ने मुझे आलिंगनबद्ध कर लिया। उसने मुझे इतनी जोर से भींचा हुआ था कि मैं बस पिसी जा रही थी। मैं चीखना चाह रही थी, पर चीख नहीं पा रही थी क्योंकि सुरेश के होंठों ने मेरे मुँह को सी रखा था।

" मैं बड़ी विचित्र दुविधापूर्ण स्थिति में फँस गई थी। मेरे अन्तर का एक हिस्सा एक अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति से आप्लावित हुए जा रहा था। किन्तु दूसरा हिस्सा अपराध-भावना से ग्रस्त हो विद्रोह पर उतारू था।

" काफी देर तक पिसने के बाद मैंने संघर्ष कर अपने को सुरेश से मुक्त किया। मेरी आँखों में आँसू थे। पता नहीं कहाँ से उपजे थे—क्रोध या पीड़ा से अथवा शारीरिक सुख के अतिरेक से?

" 'तुम्हें शर्म नहीं आती मुझे इस तरह परेशान करते हुए?' मैंने सुरेश

को डांटा।

" 'नहीं, माला,' वह बेशरमी से मुसकरा कर बोला, 'सच कहूं, मैं तुम्हे प्यार करता हूं। तुम्हें देख कर मैं पागल हो जाता हूं। माला, मैं तुम्हारे बिना नही रह सकता।'

" 'तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। सुरेश, हम दोनो भाई-बहन है।'

" 'कैसी दकियानूसी बातें करती हो, माला? हमारे हिन्दुओ में ही पोंगापंथी प्रचलित है, वरना मुसलमानो और ईसाइयो मे तो इस तरह की शादियां हो जाती है। दक्षिण भारतीय ब्राह्मणो मे तो मामा-भानजी तक मे शादी हो जाती है।'

" सुरेश के तर्क ने मुझे निरुत्तर कर दिया था। कुछ क्षण तक मैं मौन, मन्त्रविद्ध सी खड़ी रही। फिर साहस जुटा कर बोली, 'जो भी हो, मुझे यह सब अच्छा नही लगता।'

" 'असंभव। दुनिया में कोई ऐसा लड़का-लड़की नही होगा जिसे इस उमर में आकर यौन सुख अच्छा न लगता हो। हां, तुम्हारे अंदर के दकियानूसी वादी संस्कार तुम्हारे लिए ब्रेक बन जाते हैं।

" 'अभी हमारी उमर पढने की है, न कि इस तरह के गंदे काम करने की,' मेरा यह कथन डूबते को तिनके का सहारा था।

" 'मन-मन भावे, मूड़ हिलावे,' सुरेश ने हंसते हुए यह कहावत मेरे मुंह पर दे मारी। फिर वह गम्भीर स्वर मे बोला, 'माला, यौन सुख को ब्रह्मानन्द की संज्ञा दी गई है। यह परम आनन्द की वस्तु है। इसमें गन्दगी क्यों देखती हो?'

" 'मैं तुमसे बहस मे जीत नही सकती, पर एक प्रार्थना है, आज के बाद तुम मुझे तंग नही करोगे।'

" 'मैं यह आश्वासन नही दे सकता।'

" 'फिर मुझे माँ से तुम्हारी शिकायत करनी होगी।'

" 'बड़े शौक से कर देना।'

" उस दिन बड़ी स्पष्ट बातें हुई। सुरेश ने बड़ी निर्लज्जता और स्पष्टता से अपने इरादों और भविष्य की योजनाओं को प्रकट कर दिया था।

"मैं बेहद चिन्तित, परेशान और दुखी थी। सुरेश निर्द्वन्द्वतापूर्वक मेरे साथ खिलवाड़ करने लगा था। अब उसे रात की नहीं, एकान्त की तलाश रहती थी। मैं विद्रोह करती, परन्तु वह मेरे इस नपुंसक आक्रोश को नाकारा कर देता था।

"और कई महीने बाद एक रात को सुरेश का व्यवहार अपनी उच्छृंखलता की उस सीमा तक पहुँच गया जहाँ मेरा सर्वस्व नष्ट होने को आ गया। उसे अच्छा अवसर मिल गया था। सीमा दशहरे की छुट्टियों में दीदी के पास कानपुर गई हुई थी। कमरे में उस रात पहली बार मैं और सुरेश अकेले ही थे।

"रात करीब 12 बजे वह बेधड़क मेरी चारपाई पर आ गया। जबरन उसने मुझे वस्त्रहीन कर आत्मसमर्पण के लिए मजबूर करना शुरू कर दिया। पर मैंने दृढ़ता से काम लिया। उस रात मैंने सुरेश की मेरा सर्वस्व निगल जाने की सुनियोजित योजना को ठप कर दिया।

"पर मेरा मन बड़ा कसैला हो गया था। सुरेश जोंक बन कर मेरी जिन्दगी से चिपक गया था और धीरे-धीरे मेरा खून ही नहीं, मेरी खुशी और सुख को पीता चला रहा था। तंग आकर एक दिन मैंने माँ से कह डाला। सब कुछ कहने की हिम्मत तो नहीं पड़ी। सिर्फ इतना ही कह पाई मैं, 'माँ, वह सुरेश मुझे बहुत तंग करता है।'

"'बराबर के भाई-बहनों में यह हाथापाई, छेड़छाड़ तो चला ही करती है,' माँ ने ठंडेपन से कहा।

"'ऐसा नहीं है, माँ। उसकी वजह से मेरी पढ़ाई में बहुत हर्जा होता है।'

"'चल हट, पगली,' माँ ने मुझे डाँट दिया।

"आगे मैं विस्तार से माँ को कुछ नहीं बता सकी, शायद लज्जावश या फिर उनकी बीमारी के कारण। उनकी बीमारी बढ़ती जा रही थी और दीवाली से कोई चार दिन पूर्व उनकी मृत्यु हो गई।

"माँ के चले जाने से सबसे बड़ा आघात बाबूजी को लगा था। पर शायद उनके बाद दूसरा नंबर मेरा था। एक नवयौवना का हमराज उसकी माँ ही तो होती है। मेरा हमराज चला गया था। माँ के जाने के

बाद बाबूजी की उदासी, मामी की मनमानी, मीना की उन्मुक्तता और सुरेश की छेड़खानी काफी बढ़ गई थी।

" इधर मीना के रंग-ढंग भी कुछ बदलते जा रहे थे। पर मुझे तो अपनी ही समस्या से फुरसत नहीं थी। मैं उसे क्या देखती। हाँ, सुरेश ने जरूर मेरी नाक में दम कर रखा था। हार कर एक दिन मैं नानीजी के पास चली गई और खूब रोई।

" नानीजी को मैंने सुरेश के बारे में सिर्फ इशारा भर किया तो वह सब कुछ समझ गईं। उन्होंने मुझे अपने वक्ष से चिपका लिया और मेरे बालों पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरते हुए बोलीं, 'आने दे आज इसको, इसे मामा से कह कर इसकी कुटाई न कराई तो मेरा नाम नहीं।'

" मेरी यह योजना पूरी तरह से सफल रही। उस रात मामाजी ने सुरेश की खूब धुनाई की और हमारे यहाँ सोना बंद कर दिया। मैंने एक समस्या का समाधान तो कर दिया था, पर उसके दुष्परिणाम मेरे तन-मन से चिपके थे।

" मीना मामी हमेशा मुझे अश्लील ढंग से छेड़ती रहती थी। वह अक्सर कहतीं, 'माला, आजकल तेरा रूपरंग खूब निखर रहा है। कौन इतनी मेहनत कर रहा है?'

" मैं लज्जा से पानी-पानी हो जाती। उत्तर देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। हाँ, मेरा मन हमेशा अपराध-बोध से ग्रस्त रहता। मैं बड़ी तनावपूर्ण स्थिति में जी रही थी। मुझे अपने प्रयुक्त और जूठा होने का एहसास हमेशा कचोटता रहता था। मुझे लगता रहता था जैसे इतने दिनों तक कचरे की एक गंदी टोकरी में पड़ी रही हूँ। सुरेश ने मेरे अंग-प्रत्यंग के साथ खिलवाड़ करके उन्हें अपवित्र कर दिया।"

" और आज मेरे अंदर एक नए भय ने जन्म ले लिया है। क्या मेरा अपवित्र तन मेरे पति से सुहागरात के मादक क्षणों में मेरे पतन की चुगली कर देगा? क्या सुरेश के कारण मेरा संपूर्ण जीवन नरक बन जाएगा? इसकी कल्पना मात्र से मैं सिहर उठती हूँ। इसी कारण मैं आलोक के साहस नहीं जुटा पाई।"

'इला ने कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। फिर वह धीरे से

हँस पड़ी।

"तू हँस रही है ?" माला ने पूछा।

"हाँ, मैं हँस रही हूँ।"

"क्या यह हँसने की बात है ?"

"उतना रोने की भी नहीं है, जितना तू रो रही है।"

"तू क्या समझेगी मेरी व्यथा।"

"यार, क्या बताऊँ। एकदम कुछ ऐसा ही मेरे साथ होना था। पर मैंने तेरी तरह बेवकूफी नहीं की।"

"मतलब ?"

"मेरा भी रिश्ते का एक भाई बरेली से आकर हमारे यहाँ ठहरा था। कोई तीन-चार महीने टिका था। वह प्री-मेडिकल की तैयारी कर रहा था। पता नहीं, इन लड़कों की अक्ल को क्यों पाला मार जाता है। भाई हो या कुछ, बस लड़की देखी और मुँह में पानी आ गया।"

"क्या उसने तेरे साथ... ?"

रश्मि ने माला की बात बीच में काट कर कहा, "हाँ, उसने अभद्रता करने की कोशिश की। पहले ही मौके पर मैंने दो चाँटे रसीद किए और बोली, "यहाँ डॉक्टर बनने के लिए आए हो, शराफत से रहो। अगर बदतमीजी की तो डॉक्टर की जगह मैं तुम्हें खानसामा बना दूँगी।' बस, बच्चू की तबीयत साफ हो गई। उस दिन के बाद उसकी मुझसे स्वतंत्रता लेने की हिम्मत नहीं पड़ी।"

"पर मैं...।"

मेरी बात पूरी होने से पहले ही रश्मि बोल पड़ी, "माला, बुरा मत मानना। अपनी इस दुर्दशा के लिए तू खुद जिम्मेदार है। तेरे अंदर दृढ़ता की कमी थी। जिस दिन पहली बार सुरेश ने तेरे साथ स्वतंत्रता ली, तू उसी दिन अंदर दृढ़ता से फिर उस चोर के बच्चे का सिर कुचल देती तो किस्सा वहीं खत्म हो जाता। पर नहीं, तेरा अवचेतन अवश्य बार-बार उस घटना के शारीरिक स्पर्श का आनंद उठा रहा था। तू विभाजित हो गई थी। तेरा एक हिस्सा विरोध करता रहा और दूसरा हिस्सा इन स्पर्शों का मजा लेता रहा। दिमाग़ी द्वंद्व, अंतर्विरोध, बोध...

सुरेश तुझे कैसे तंग कर सकता था ?"

मैं मौन ही रही। शायद इला ठीक कह रही थी।

"तेरे साथ-ही-साथ तेरे परिवार के सदस्यों की लापरवाही और माँ की लंबी बीमारी भी तेरी इस व्यथा के लिए जिम्मेदार है। शायद तेरी माँ हर समय अपनी ही अस्वस्थता की पीड़ा से घिरी रही। उन्हें अपनी युवा होती लड़की की समस्याओं को समझने का न समय था, न उचित माहौल ?"

"वह तो सब ठीक है, इला। पर अब मेरी समझ मे नहीं आता कि क्या करूँ।"

"करना क्या है, जो हो गया, उसे भूल जा। मस्त रह और कल की कटु स्मृतियो के काले सायो को आने वाले खुशी भरे सुनहरे दिनो पर न पड़ने दे।"

"इला, शारीरिक रूप से मुझे ऐसा महसूस होता है जैसे मेरा कौमार्य भंग हो गया है, जैसे मेरे अंगों के साथ खिलवाड़ की गई हो। मुझे आलोक से मिलने में डर लगता है। इसीलिए आज मैं उसके साथ जाने से कतरा गई। यही नही, कई बार मुझे डर लगता है, कही सुहागरात के दिन अगर उन्हें यह पता चल गया कि···।"

इला बड़ी जोर से हँस पड़ी। फिर उसकी पीठ थपथपा कर बोली, "माला, लगता है कि तेरा मानसिक सतुलन बिगड़ गया है। अरे मूर्ख लड़की, क्या हमारा यह शरीर काँच है जो परपुरुष के स्पर्श मात्र से ही टूट कर बिखर जाए ? क्या यह कपड़ा है जो किसी लड़के के छूने से गंदा हो जाए। कोई लड़का किसी भी लड़की के अतीत के बारे मे, उसके शरीर के माध्यम से कभी कुछ नही जान सकता।"

माला चकित और विस्मित-सी इला की ओर देखती रह गई। धीरे-धीरे उसके अंदर आत्मविश्वास लौटने लगा। वह आश्वस्त हो चली थी।

"माला, एक बात और याद रख। इस तरह की बातें सब लड़के-लड़कियों के साथ होती हैं। यह उमर ही ऐसी है जब अपरिपक्वता की बातें हो ही जाती हैं। ऐसा कौन-सा लड़का या लड़की है जिसे ऐसे अनुभव नही होते ? तेरे ख्याल मे तेरा आलोक एकदम दूध का धुला हुआ है ?

पूछना बच्चू से। छिपा रुस्तम निकलेगा।

"*माला, इस तरह असावधानीवश हुई गलतियाँ या फिर दबाव में आकर क्षणिक समझौते कोई पाप नहीं। हाँ, पाप वह गलत काम है जिसे आप खुली आँखों से, अपनी पूर्ण सहमति से, परिणाम को जानते हुए करते हैं।*"

"इला, सच तूने मेरी आँखें खोल दी," माला ने भयमुक्त होते हुए कहा। वह अपने को एकदम भारहीन-सा महसूस कर रही थी।

"*तो आलोक से अगले शनिवार मिल रही हो न?*"

"हाँ, अवश्य।"

"बिना किसी अपराध भावना या असमंजस के मिलना। उसका अतीत कुरेदना। या हो सकता है, वह जोश में आकर खुद ही अपने कारनामों के सारे किस्से सुना दे। तब तू भी अपनी फुलझड़ी छोड़ देना। बस, किस्सा खत्म।"

"पर'''।"

"हाँ, यह 'पर' बड़ा महत्त्वपूर्ण है। अगर वह अपना अतीत सीलबंद रखे तो तू भी अपने बीते कल को उसे अपने अंतर के सॉकर में दफना देना।"

माला कालिज से लौट आई—एकदम तनावरहित, भारहीन, मुक्त और परिपक्व-सी, मन में अगले सप्ताह आलोक से मिलने की उत्कंठा सँजोए।

□

मेनका

हमारा विभाग बहुत छोटा था। कुल सात व्यक्ति थे। हम सभी एकता तथा स्नेह के सूत्र में बंधे हुए थे। इतना अनुशासन, कार्यकुशलता तथा पारस्परिक सौहार्द कम ही कार्यालयों में होता है।

लोगों को आश्चर्य होता कि आखिर आनंदजी का विभाग इतना बढ़िया कैसे चल रहा है। अफसर लोग बड़े खुश थे। वे हर समय हमारी प्रशंसा करते रहते थे।

वास्तव में हम लोग थे भी प्रशंसा के पात्र। व्यक्तिगत रूप से ही नहीं, समग्र रूप से भी।

आनंदजी विभाग के अधिकारी थे। यद्यपि वे धर्मभीरु, ईश्वर-भक्त और अंधविश्वासी थे, किंतु अपने काम में निपुण थे। वह हम सबसे अभिभावक जैसा स्नेह करते थे। हमको अपने बच्चों जैसा समझते थे। कभी किसी से ऊँचे स्वर में नहीं बोलते थे, फिर झाड़ लगाना तो दूर की बात रही। विभाग के किसी भी सदस्य को जरा-सी भी कोई परेशानी हुई तो आनंदजी उसे तुरंत ही दूर कर दिया करते थे। एक प्रकार से वह आदर्श अधिकारी थे और हम आदर्श अधीनस्थ कर्मचारी।

रंगनाथन कार्यालय सहायक था। अपने काम में वह इतना निपुण और कुशल था कि सब उसे 'सरकारी नियमों की चलती-फिरती पुस्तक' कहा करते थे।

रंगनाथन की बगल में बैठता था गोविंद—एक और कार्यालय-

सहायक। वह कुछ दिन पहले ही एक प्रतियोगी परीक्षा में सफल हो नियुक्त हुआ था। आनंदजी ने उसे रंगनाथन की बगल में बिठाया था, ताकि वह अपने सीनियर से सरकारी क्रिया-कलाप के गुर सीख सके। वह था तो अविवाहित नवयुवक, किंतु विभाग के सारे वरिष्ठ सदस्यों की इज्जत करता था।

गोविंद के बाद वाली सीट खाली थी। उस पर क्लर्क मनोहर बैठता था। उसने स्टेनोग्राफी सीख कर एक प्रतियोगी परीक्षा दी थी, जिसमें वह सफल हो गया था। वह स्टेनो बन कर अन्यत्र चला गया था।

खाली सीट के बाद उस पंक्ति में विभाग की अंतिम सीट थी राज की—क्लर्क व टाइपिस्ट। वह अंगरेजी टाइपिस्ट के रूप में नियुक्त हुआ था। खाली समय में उसने हिन्दी की टाइप भी सीख ली थी। आवश्यकता पड़ने पर वह दोनों में ही टाइप कर लेता था।

आनंदजी के दाहिनी ओर हम दोनों बैठते थे—मैं जूनियर अनुसंधान अधिकारी तथा सुमंगल—अपर डिवीजन क्लर्क। मैं साहित्य-प्रेमी तथा सुमंगल रवींद्र संगीत का दीवाना था। पर हम दोनों ही अपने-अपने काम में दक्ष थे।

यह था हमारा छोटा-सा संसार—एक प्रकार से सुखी, संपन्न, कुशल, अनुशासन में बंधा। हम सब समय पर आते, समय से जाते, दिन-भर ईमानदारी से काम करते। आपस में इतना सहयोग था कि एक-दूसरे का काम करने में भी हमें खुशी होती। किसी का काम हो और बॉस किसी और को उसे दे दे तो वह उसे खुशी-खुशी करता था।

अचानक एक दिन सुबह हमारे इस छोटे से संसार में हलचल मच गई। शायद साढ़े दस बजे होंगे। एक नवयुवती विभाग में आई। सीधी आनंदजी के पास गई और उनके सामने कोई कागज रखा।

आनंदजी अवाक और आश्चर्यचकित से उस नवयुवती को देखते रह गए। फिर उन्होंने राज और गोविंद के बीच पड़ी खाली कुरसी की ओर इशारा कर दिया।

इस अभूतपूर्व घटना ने हम सबको चौंका दिया। हमारे विभाग में पहली बार किसी लड़की की नियुक्ति हुई थी। और वह लड़की भी क्या

चीज थी !

एक आधुनिका, सुदर, गौरवर्ण, बड़ी-बड़ी आँखें, कंधों तक छितराए कटे हुए बाल। उसने इतने कसे हुए वस्त्र पहन रखे थे कि उसके मांसल शरीर का हर अंग चीख-चीख कर कह रहा था कि मैं यहाँ हूँ। मुझे तो ऐसा लगा जैसे वह निर्लज्जता की सीमा तक जाकर आधुनिकता का आवरण लपेटे हुए है। पूरे विभाग में एक सन्नाटा-सा छा गया।

वह लड़की अपनी सीट पर बैठ गई। उसने अपना वैनिटी बैग खोला। उसमें से कंघा, शीशा आदि निकाल कर वह अपना मेकअप ठीक करने लगी। फिर सामने मेज पर मोटे-मोटे रजिस्टरों का ढेर देख कर वह मुसकराई।

मेरा लेखक हृदय और अनुसंधानी मन भटक गया था। लड़की से फिसलती दृष्टि राज के मुख पर अटक गई। वह अपनी मासूम आँखों से लड़की को जी भर कर निहार रहा था। एकदम ऐसे ही जैसे कोई बच्चा दुकान से बाहर शीशे मे सजे खिलौनों को ललचाई दृष्टि से देखकर ठिठका खड़ा रह जाए। मुझे लगा जैसे राज के अंदर मे कविता का सागर गर्जन कर उठा है।

मैंने एक और बात नोट की। विभाग का हर व्यक्ति विशेष रूप से गोविंद उस लड़की की ओर चोर निगाहों से तक रहा है। राज और गोविंद की निगाहें भूखी थी।

लड़की ने गरदन घुमा कर पूरे विभाग का निरीक्षण किया और फिर उसने राज को संबोधित करके कहा, "हैलो !"

कैसा कड़कदार स्वर था। इससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात थी—लड़की का उन्मुक्त, स्वच्छंद व्यवहार।

पल भर को राज सकपकाया, हतप्रभ-सा बैठा रहा वह। फिर वह बोला, "हैलो !"

"आपका शुभ नाम ?"

"मुझे राजकुमार पसरीजा कहते है।"

"यह पसरीजा क्या बला है ?"

"मेरा जातिगत नाम है।"

"पहले कभी नही सुना, अटपटा है।" उस लड़की के चेहरे पर मुसकान की कदीलें जल उठी।

राज झेंपते हुए बोला, "मैं खुद इसे छोड़ने की सोच रहा था।"

"मेरे खयाल से आप जल्दी ही इस सोचने की स्टेज को पार कर डालें।"

'बड़ी तेज-तर्रार लड़की है,' मैंने सोचा।

"आपका शुभ नाम ?" राज ने पहली बार प्रश्न पूछा था उससे।

"मेनका।"

'बड़ा सार्थक नाम है,' मैंने फिर सोचा।

"इस विभाग मे आने से पहले आप कहाँ थी ?"

"घर पर माँ के साथ बड़ियाँ बनाती थी, साड़ियो मे फॉल टाँकती थी।"

"तो क्या यह आपकी पहली नियुक्ति है ?"

"जी हाँ," और अकारण ही वह हँस पड़ी। मैंने देखा, मेनका के दाँत एकदम चमकीले और साफ थे।

पर आनदजी कुछ उदास और निराश नजर आ रहे थे।

"मुझे गोविंद कहते हैं," गोविंद अपने को अधिक देर नियत्रण मे नही रख पाया और स्वय अपना परिचय दे बैठा। शायद उसे मेनका के स्वच्छद तथा स्वतंत्र व्यवहार से ही प्रेरणा मिली थी।

गोविंद के शब्द सुन कर मेनका के मुख पर विकृति की रेखाएँ उभर आईं। उसने आग्नेय दृष्टि से गोविंद को घूरा और कड़क कर बोली, "आप मे मामूली सा भी सलीका नही है। जब दो व्यक्ति बातें कर रहे हो तो बीच मे टपकना···।"

गोविंद का मुख लाल हो गया। एक तो लड़की, फिर क्लर्क और वह भी नई। इतना सार्वजनिक अपमान। फिर भी वह अपमान के इस विष को पचा गया।

शाम तक मुझे इस बात का विश्वास हो चला था कि मेनका मे इस विभाग रूपी विश्वामित्र की एकता रूपी समाधि भग करने की पूरी सामर्थ्य है।

अगले दिन की शुरुआत अच्छी नहीं हुई। अप्रियता का माहौल बन गया।

मेनका दस मिनट लेट आई। वह आनंदजी की मेज पर रखे रजिस्टर में हस्ताक्षर करने गई तो उन्होंने बड़ी शालीनतापूर्वक उससे कहा, "मेनकाजी, इस विभाग की परिपाटी के अनुसार आपको ठीक सवा दस बजे तक आ जाना चाहिए।"

"दस मिनट लेट होने से क्या फर्क पड़ता है?" मेनका ने टालना चाहा।

"सवाल फर्क का नहीं, अनुशासन का है," आनंदजी ने कहा।

"मैं कोशिश करूँगी," उसने सड़ा-सा मुँह बनाया और बुदबुदाती हुई जाकर अपनी सीट पर बैठ गई। फिर राज से बोली, "दफ्तर आते ही बुढ़ऊ ने मूड बिगाड़ दिया।"

थोड़ी देर विभाग में शांति रही। फिर उसने राज से कहा, "मैंने सुना है कि तुम कविता भी लिखते हो?"

"यों ही, कभी-कभार कुछ कह लेता हूँ।"

"तो फिर सुनाओ न।"

"यहाँ विभाग में?"

"तो क्या हुआ!"

"आनंदजी…।"

"तुम उस बुढ़ऊ की इतनी चिंता क्यों करते हो?"

"मेनकाजी, कुछ तहजीब सीखिए।"

नहीं, यह बात राज ने नहीं रंगनाथन ने बोली थी। शायद उस जैसे सुसंस्कृत तथा परिपक्व व्यक्ति को एक लड़की द्वारा विभागाध्यक्ष का अपमान सहन नहीं हुआ।

मेनका सुबह से ही कुढ़ी बैठी थी। रंगनाथन की इस टिप्पणी ने उसकी क्रोधाग्नि में घी का काम किया।

"हू आर यू टू इनसल्ट (तुम अपमान करने वाले कौन होते हो?)… तुवानु ऐन्नी वी अकल नईं कि कुड़ी नाल गल…" अँगरेजी और पंजाबी भाषा में मेनका ने बमबारी शुरू कर दी।

विभाग की शांति भंग हो चुकी थी। एक छोटे-मोटे युद्ध की भूमिका रच गई थी।

"यह दफ्तर है या अखाड़ा? शांति से बैठ कर काम कीजिए," आनंदजी ने ऊँची आवाज में कहा। उनका यह ऊँचा स्वर हम सब लोगों के लिए नया अनुभव था।

अगले कुछ दिनों की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि आनंदजी के विभाग में जो पक्के मानवीय संबंध थे, उनमें दरारें पड़ने लगी हैं। जब से मेनका ने रंगनाथन का अपमान किया था, वह इस ताक में था कि कब वह इस लड़की की कोई गलती पकड़े और उसे अपने मन की भड़ास निकालने का अवसर मिले।

एक दिन उसे यह अवसर मिल गया। एक अत्यंत महत्वपूर्ण पत्र विभाग में आया। उस पर सचिव ने तत्काल सूचना माँगी थी। पर मेनका ने वह पत्र दो दिन तक अपने पास रखा और फिर डायरी में दर्ज करके उसे रंगनाथन को दे दिया।

रंगनाथन भड़क गया और चीखा, "देवीजी, यह इतना जरूरी पत्र दो दिन तक आपने किसलिए अपने पास रखा?"

"अचार डालने के लिए," मेनका भुनभुनाई।

"क्या बोला?" रंगनाथन ने पूछा। शायद उसकी समझ में कुछ नहीं आया था।

"रह गया होगा। देखते नहीं, कितना काम है। सुबह से शाम तक इतने मोटे-मोटे रजिस्टर उठाते-रखते मेरी तो कलाइयाँ दुख जाती हैं।"

"इतनी नाजुक हो तो दफ्तर में काम करने क्यों आती हो? ठाट से घर पर बैठो और मौज करो।"

"तुमने सलाह दी है, सोचूँगी।"

"एक तो गलती, ऊपर से इस तरह की बेहूदगी।"

"चीखो मत, तमीज से बात करो," मेनका भी चीख पड़ी।

"रंगनाथन, शांत हो जाओ। इनसान से गलती हो ही जाती है," गोविंद ने मध्यस्थता करते हुए शांति स्थापित करने का प्रयास किया।

"क्या बोला, तुम भी इस छोकरी का पक्ष लेता है। तुम उत्तर भारत

[illegible] है। [illegible] तुमको [illegible] का काम निपटाता और [illegible] तुमको [illegible] दिखाता है?"

[illegible]

[illegible]

उस दिन सोमवार था।

तीन दिन की छुट्टियों के बाद दफ्तर खुला था। मैंने विभाग में तीन महत्त्वपूर्ण बातें नोट कीं। पहली तो यह कि मेनका बिना पूर्व सूचना या प्रार्थना-पत्र भेजे बिना अनुपस्थित थी।

दूसरी बात थी—गुमंगल का कायाकल्प। पिछले हफ्ते तक जो व्यक्ति साधारण धोती पाजामा-कुरता या पैंट-बुशशर्ट पहन कर आता था, आज वह नवीनतम फैशन की खूब चौड़ी मोहरी की पैंट तथा रंगीन [illegible] की रेशमी बुशशर्ट पहन कर आया था।

"अरे दादा मोशाय, यह क्या हुआ?" मैंने बड़े आश्चर्य से पूछा।

[illegible]

"[illegible] फंड से निकाल लिया।"

'हद हो गई,' मैंने सोचा।

गुमंगल की तरफ से ध्यान हटा तो एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटी। मैंने देखा कि राज गुलाब की तरह खिला हुआ है। वह अपनी सीट से उठ कर मेरे पास आया। जेब से सिगरेट का पैकिट निकाल उसने मेरी ओर बढ़ा दिया।

मैं आश्चर्यचकित रह गया। मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि से राज को देखा तो वह हँस कर बोला, "चौंक गए? भई, मैंने तो कल से पीनी शुरू कर दी है।"

"क्या डाक्टर ने सिगरेट पीने के लिए कहा था?" मैंने उखड़ कर पूछा।

"नहीं, मेनका ने कहा था। उसे सिगरेट का धुआँ पसंद है। उसे तो बड़ा ताज्जुब हुआ कि मैं कैसा कवि हूँ। आखिर बिना सिगरेट पिए कैसे कविता लिख लेता हूँ?"

"अगर मेनका जहर पीने को कहेगी तो···" मैं झुंझलाया।

"तो मैं पी लूँगा," राज मुसकराया।

"मर गए जहर पीने वाले मजनूँ," गोविंद बुदबुदाया।

आनंदजी ने सबको बुलाया। हम लोग अर्द्धचंद्राकार रूप में उनकी मेज को घेर कर खड़े हो गए। उन्होंने हम सबको बारी-बारी से घूर कर देखा। फिर भर्राए स्वर में बोले, "लगता है, मेरे विभाग के बुरे दिन आ गए हैं। अब तक हमारा विभाग हमेशा काम में अपटूडेट रहता था। हमारी साप्ताहिक रिपोर्ट देख कर हमारे अफसर कितने खुश होते थे। पर पिछले सप्ताह की रिपोर्ट देख कर मेरा तो मन डूब गया है। शुक्रवार की डाक आज सोमवार तक डायरी में नहीं चढ़ी है। वह मेज सप्ताह बिना फाइलों के पड़ी है। आखिर कैसे चलेगा यह विभाग?"

"आए दिन झगड़ा-झमेला होने लगा है। कोई किसी की इज्जत नहीं करता है। तुम लोग मौका पाते ही मुझसे एक-दूसरे की चुगली करने लगते हो। पहले तो यह सब नहीं था। अब क्या हो गया है? गोविंदजी नोट रख पाते हैं। सबसे जरूरी मुद्दा ही भूल जाते हैं। याद है कि टाइप करने बैठता है पत्र, पर पत्र की जगह मुझे मिलती है— कौन कितनी रात का घुप अंधियारी चाँदनी की' टाइप की हुई कविता। कुंदनजी की फाइलें व चित्रकला के आधुनिकतम नमूने मिलते हैं। और अनुसंधान अधिकारी एकदम उदास हैं कि वक्र रेखाओं की रिसर्च में जुटे हैं।"

"श्रीमान, बात यह है कि···" सुन्दरम कुछ कहना चाह रहा था, परन्तु

वह कुछ कह नहीं सका ।

उसकी बात को बीच में ही काट कर आनंदजी बोले, 'मैं कुछ सुनने के लिए नहीं, कहने के लिए सब साथियों को बुलाया है। मुझे स्पष्टीकरण नहीं चाहिए। मुझे अपना पुराना वाला विभाग चाहिए।"

"इस हालात का क्या कसूर है?" सब एक साथ बोल पड़े।

'तुम सब जिम्मेदार हो इसके लिए। जाइए, अपनी-अपनी सीट पर बैठिए, काम कीजिए।"

मुझे पता था कि हमारे विभाग को क्या हो गया है। मुझे ही क्या, सबको पता था। क्या आनंदजी को नहीं पता था?

अगले कुछ दिनों में हमें पता चल गया कि आनंदजी को भी इस बीमारी के कारणों का ज्ञान था।

अगले कुछ दिनों तक गाज और गोविंद की सीट खाली रही। उनका काम मुमताज देखता रहा। फिर एक दिन हमने देखा कि उस खाली सीट पर रामस्वरूप नामक एक तीस वर्षीय साधारण-सा व्यक्ति आकर बैठ गया, जो सुबह से शाम तक बस काम में जुटा रहता।

मेनका ने हमारी समाधि भंग अवश्य की थी, पर अब वह शायद सदैव के लिए हमारे विभाग से विदा हो गई थी।

आनंदजी ने उसका तबादला जो करा दिया था।

□

जलती दृष्टि से घूरा था। फिर तीखे स्वर में बोले थे, "उन्हे हमारे उपहार की जरूरत है? दोनो डाक्टर हैं। आस्ट्रेलिया मे खूब पैसा बना रहे हैं। वे तुम्हारी टुच्ची चीजो के मुहताज नही।"

मुझे इसी विषाक्त प्रतिक्रिया की आशा थी। अतः मैं हतप्रभ नहीं हुई। जो कुछ भी आग मे ऊष्मा शेष थी, उसे नष्ट करने के उद्देश्य से मैंने पूछा, "अभी भी कड़वाहट शेष है?"

"मेरी कड़वाहट से किसी को क्या फर्क पड़ने वाला है? दो हैं। दोनो ने ही कोच-कोच कर मारा है।"

"आप तो बेकार की बातें करते हैं। ऐसे सुयोग्य, मेधावी बच्चे कितनों को नसीब होते हैं? लड़का इंजीनियर, लड़की डाक्टर। अपने आप पढ़े, इंजीनियरिंग और डाक्टरी मे दाखिले कराए। पढ़-लिख कर दोनों ने अपने आप नौकरी तलाश कर ली। पढ़ाई के जमाने से आज तक उन दोनो ने आपको कोई तकलीफ दी? आप तो बस अपनी सरकारी फाइलो से जिंदगी भर इश्क लड़ाते रहे। उनके साथ होली-दीवाली मनाते रहे।"

मैं एक ही सांस मे अपनी घुटीदबी भावनाओं को उजागर कर गई। वह थोड़े विस्मित, थोड़े सकपकाए से लगे। पलाश मे वह भी फट पड़े, "जब सब कुछ दोनों ने अपनी मरजी से किया तो ब्याह-शादी हमारी मरजी से कैसे करते? लड़का ईसाइन पकड लाया। बनिया होकर ऐसी बेइज्जती कराई कि···।"

"अरे, बच गए लड़के-लड़की की तलाश करने से, वरना जितनी परेशानी लड़की के लिए लड़का तलाश करने मे होती है, उसमे ज्यादा परेशानी लड़के के लिए लड़की तलाशने मे उठानी पड़ती है।"

"अब तुम जले पर नमक तो छिड़को मत।"

"सुनिए, आठ साल पहले जले थे। क्या घाव आज तक नहीं भरा?" मैंने पूछ तो लिया, पर मैं जानती थी कि घाव भर चुका था। पर सीमा ने उसे फिर से हरा कर दिया। किसी पंजाबी लड़के से प्रेम करती रही थी वह शायद। उसके साथ मेडिकल मे पढ़ता था।

दोनों डाक्टर। लड़के को आस्ट्रेलिया मे नौकरी मिल गई। सीमा ने उनसे शादी की अनुमति मांगी। मौन रह गए राजेश। उसी मौन को

त्रि समझ मीमा ने कोर्ट में जाकर शादी कर ली। फिर एक शादी-पार्टी। और दो महीने बाद वे दोनों आस्ट्रेलिया चले गए। वहाँ से पत्र आते रहते हैं। वे दोनों खूब खुश हैं। जम कर कमाई हो रही है।

"ये घाव वे नहीं जो भर जाएँ," एक दीर्घ निःश्वास छोड़ राजेन ने कहा।

"हर इनसान को अपनी तरह जीने का अधिकार है। फिर प्रेम विवाह करने में हर्ज ही क्या है? आज अन्तर्राष्ट्रीय विवाह हो रहे हैं और एक आप हैं कि सिर्फ अन्तर्जातीय विवाहों को लेकर…।"

"सुनो," राजेन ने मेरी बात बीच ही में काट कर कहा, "मैं प्रेम और अन्तर्जातीय विवाहों के विरुद्ध हूँ और इस पर तुमसे बहस करने के मूड में नहीं हूँ।"

"लड़के तलाश करने में जूते घिसते। शादी में 50-60 हजार को पानी खर्च करते। बाद में लड़के वाले लड़की को दहेज के कारण तंग करते, जला देते। शायद तब आप को सन्तोष होता।"

"कुसुम!"

"चीखिए मत। अपने विचारों और मान्यताओं को कोई इस तरह दूसरों पर थोपता है? क्या कोई माँ-बाप इस तरह अपने बच्चों, अपने पुत्र को त्याग देते हैं? ठीक है, अतुल ने आपकी मरजी के खिलाफ [illegible] से शादी की। वह आपसे लड़ कर घर छोड़ कर चला गया। दिल्ली से उसने अपनी बदली बंगलौर में करा ली। पर इसका यह मतलब तो नहीं कि पुत्र के रिश्ते हमेशा के लिए…।"

"मर गया अतुल…।"

मैंने राजेन के मुँह पर अपनी हथेली रख कर कुछ और बोलने से रोक दिया और रुआँसी होकर बोली, "खबरदार जो दीवाली जैसे शुभ त्योहार पर [illegible] के लिए कोई अशुभ बात मुँह से निकाली।"

[illegible] कर रह गए राजेन।

"[illegible] नहीं। ठीक है, पर ब्याज से भी [illegible] नहीं रहा?"

[illegible] बोला।

"[illegible]?"

"सीमा की चिट्ठी आई थी। उसी में लिखा था कि मार्च में अतुल के बेटी हुई है। बेटा 5 साल का हो गया है। स्कूल जाने लगा है।"

"बेटा-बेटी होना कौन सी खास बात है? जहाँ पेड़ लगा हो वहाँ फल तो टपकेंगे ही," राजेश ने दार्शनिक अंदाज से कहा।

"मैं यह चिट्ठी भेज रही हूं अतुल को," कह कर मैंने एक अंतर्देशीय पत्र राजेश की तरफ बढ़ा दिया।

मेरा हाथ अधर मे लटका रह गया। उनका हाथ आगे नही बढ़ा पत्र को पढने के लिए। तो क्या अभी तक वह उस विद्रोह को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाए बैठे हैं? इन पिछले 8 बरसो मे बेटे और बाप के बीच कोई संपर्क नही हुआ। सारे सूत्र कटे हुए, निर्जीव से पड़े रहे। सिर्फ बहन-भाई के बीच पत्र आतेजाते रहे।

राजेश मेरी तरफ निर्निमेष दृष्टि से देखते रह गए, बोले कुछ नही।

"चिट्ठी नही देखोगे?"

"क्या करूँगा देख कर?"

"जानना नही चाहोगे कि मैंने क्या लिखा है?"

"दीवाली पर आने का आग्रह किया होगा।"

"तुम तो अंतर्यामी बन गए हो।"

"जूते मत मारो।"

"संधिपत्र पर हस्ताक्षर नही करोगे?" मैं हलके मूड मे आ गई।

"माँ-बेटे के बीच मे संधि नही, पुनर्मिलन होगा।"

"और तुम?"

वह चुप लगा गए, प्रतिक्रियाहीन और तटस्थ-से।

"पत्र तुम डाक मे डालोगे या मैं जाऊँ?"

"विश्वास हो तो मुझे दे दो। डबलरोटी लेने बाजार जाऊँगा, डाल दूँगा।"

"विश्वास के सहारे ही तो ये 30 साल पलक झपकते कट गए। काश, तुमने समय के साथ चलकर बच्चो की आकांक्षाओ, आशाओ और सपनों से समझौता कर लिया होता तो आज हम दोनो कितने खुश होते," मेरा स्वर भर्रा गया।

जब भी मैं भावुक हो उठती थी, राजेश एक दीर्घ मौन के आवरण में अपने को समेट लेते थे।

दीवाली आ गई।

सुबह से ही पूरे महल्ले में धूम-धड़ाका मचा हुआ था। बड़े-छोटे सब आतिशबाजी में व्यस्त थे।

मेरे अंतर में तो जैसे आशा के दीप जगर-मगर कर उठे थे। हाँ, रंग-बिरंगी फुलझड़ियाँ भी छूट रही थीं। मेरी निगाहें सड़क से चिपकी थीं। किसी भी स्कूटर या टैक्सी के रुकने की आवाज आती, मैं लपक कर द्वार पर आती, अपरिचितों को देख निराशा के गहन अंधकार में डूब अंदर चली जाती।

सुबह से शाम हो गई, पर मेरा बेटा अतुल नहीं आया। पूरे क्षेत्र के मकानों पर रोशनी हो गई। दीए, मोमबत्तियाँ और रंग-बिरंगी झालरें जल रही थीं। रंग-बिरंगी रोशनियों की आभा में नहाया हमारा मुहल्ला एकदम परीलोक जैसा लग रहा था।

पर मेरा अंतर अँधेरे के सागर में डूब चुका था। मेरा अतुल नहीं आ सका था। मैंने रेलवे से पूछताछ की थी। सुबह जी०टी० और दोपहर बाद के० के० आ चुकी थी। इन्हीं दो गाड़ियों से उसके आने की संभावना थी। बंगलौर से और कोई ट्रेन तो आती नहीं।

तो क्या इस बार मेरे बेटे ने पुनर्मिलन को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया है? 8 वर्षों में उसने एक बार नहीं सोचा कि चलो माँ से मिल आएँ। नहीं, इसमें सारा कुसूर उसका नहीं, राजेश का भी तो है।

कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि उसे चिट्ठी ही न मिली हो? आजकल डाक-सेवा बड़ी अनियमित और अविश्वसनीय हो गई है। उसका कोई पत्र भी नहीं आया। अवश्य उसे मेरा पत्र नहीं मिला होगा। यदि मिलता तो वह जरूर आता, नहीं तो लिखता जरूर कि मैं नहीं आ पा रहा हूँ।

मैं उठी। खिड़की पर जाकर खड़ी हो गई। मुख्य सड़क से मेरी निगाहें चिपकी रहीं, पर सब व्यर्थ। हार कर मैं पलटी। मैंने देखा, राजेश आरामकुरसी पर आँखें मूँदे बैठे हैं। उखड़े, छटपटाए-से।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"[illegible]"

"[illegible]"

[illegible]

[illegible]

[illegible] आतिशबाजियों [illegible]

[illegible]

"[illegible]"

[illegible] "[illegible]"

अंधकार में मुझे सांसों के उतार-चढ़ाव के स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। बाहर महल्ले का वातावरण एकदम दूषित हो चुका था। भारी शोर-गुल और आतिशबाजी का धुआं। मुझे तो कई बार सांस लेने में भी परेशानी हुई।

अनायास राजेश उठे। कोने वाले कमरे की बत्ती बुझा कर लौट आए। फिर पलंग पर लेट कर बोले, "मेरा अंतर कह रहा है, आज हमारे ही लक्ष्मीजी अवश्य पधारेंगी।"

"क्या करना है लक्ष्मी का ? हम दो हैं। दोनों के लिए काफी है। मुझे लक्ष्मी नहीं, अपने बच्चों का सुख चाहिए था।"

"नींद नहीं आ रही ?" राजेश ने पूछा।

"क्या बज गया ?"

"11 हो रहे हैं।"

तभी घंटी बजी। मैं स्प्रिंगदार खिलौने जैसी एक झटके से उठ कर बैठ गई। लपक कर मैंने दरवाजा खोला। सामने सचमुच लक्ष्मी खड़ी थी। वह मेरे पाँव पर झुक गई। मैंने उसे उठाया और वक्ष से चिपका लिया।

"अजी, सुनते हो !" अनिर्वचनीय सुख से मैं तो जैसे पागल हो गई। मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो पा रहा था। वह सत्य था या स्वप्न ? नहीं, वह वास्तविकता थी।

बहू के पीछे अतुल खड़ा था। उसकी गोद में सोती हुई बच्ची थी और नीचे पाँव से लिपटा उसका बेटा। बच्ची को मुझे पकड़ा, वह मेरे पाँव छूने को नीचे झुक गया और बोला, "बंटी, यह दादी माँ हैं, इनके पाँव छुओ।"

नाती ने पाँव छुए तो मैं रोमांचित हो गई।

"क्यों रे, तू इस समय कौन सी गाड़ी से आ रहा है ? सारे दिन राह देखते-देखते मेरी तो आँखें पथरा गईं," मैंने शिकायती लहजे में कहा।

"दादी माँ, हम तो हवाई जहाज में उड़ कर आए हैं," बंटी बोला।

"सच ?" मैंने घोर आश्चर्य से पूछा।

"बड़ा मजा आया दादी माँ।" बंटी मुझसे घुल गया। जैसे ही मैंने बिटिया को पलंग पर लिटाया, बंटी मेरी गोद में चढ़ गया।

राजेश अभी भी पलंग पर लेटे थे।

अतुल और उसकी पत्नी पलंग के पास गए। दोनों ने एक साथ उनके पाँवों पर अपना माथा टिका दिया !

"पिताजी, क्या इतने सालों बाद भी आपका गुस्सा नहीं उतरा ?" अतुल ने भर्राए स्वर में पूछा।

राजेश उठ कर बैठ गए। भावातिरेक के कारण उनके मुख का रंग बार-बार बदल रहा था। वह कुछ भी नहीं कह पा रहे थे।

"पिताजी, सचमुच हम लोग खूब खुश हैं। मेरी और मरियम की ऐसी पटी कि बस पूछिए मत। सच कहता हूं, आज तक एक बार भी हम दोनों में झगड़ा नहीं हुआ," अतुल बोला।

राजेश अवाक और पराजित से सब कुछ सुन रहे थे। पता नहीं, उन की अभिव्यक्ति को क्यों पाला मार गया था।

"मांजी, घर में कुछ खाना होगा? बड़ी भूख लगी है," मरियम ने पूछा।

"झूठ क्यों बोलती हो, मां। हवाई जहाज में तुमने खूब खाया। पिता जी का हिस्सा भी।" बंटी ने मां को छेड़ा।

"अरे पागल, मैं अपने लिए थोड़े ही पूछ रही हूं। तेरे पिताजी के लिए खीलें, मीठे सेव, मावे की गुझिया और उड़द की दाल की पापड़ियों का प्रबन्ध नहीं करना? रास्ते भर सोचते रहे थे। पता नहीं, मांजी ने उनकी मनपसन्द की चीजें बनाई होंगी या नहीं," मरियम खुशी से झूमती हुई बोली।

"सब कुछ बनाया है। तू ठहर, बहू, मैं अभी लाई।"

"अरे वाह! मांजी, मेरे होते आप घर का काम करेंगी?" मरियम उठ कर रसोईघर में चली गई।

"पिताजी, अब तो हमें स्वीकार कर लीजिए," कहता हुआ अतुल राजेश के पांवों पर बिछ गया।

मैंने देखा, इनकी आंखें भीग गई है।

"पिताजी, देखो, दादाजी रो रहे हैं। आपने उन्हें डांटा। मैं आपसे कुट्टी कर दूंगा। आप दादाजी से कुछ नहीं कह सकते। वह मेरे दादाजी हैं," कहता हुआ बंटी उनके ऊपर चढ़ गया। एकदम उनका सुरक्षा-कवच बन कर।

मेरे घर में तो खुशियों की दीवाली जगमगा उठी थी।

प्रतिष्ठा और हठ का पक्का बांध ध्वस्त हो गया। वर्षों का कैद जल हरहराकर वह निकला। राजेश ने अपनी बांहों में बेटे और नाती को समेट लिया। पुरुष हो कर वह रो रहे थे।

पता नहीं, मेरे आंसुओं को क्या हुआ? मेरी आंखें सूखी थी। शायद

वह इस गीले पुनर्मिलन का आनंद उठा रही थी।

मरियम दो थालियों में मांग कुछ मजा लाई। [illegible] लिए वे थाल। और हम साढ़े चार प्राणी दीवाली की [illegible] में [illegible] हो गए।

"माँ, सारी चीज़ें बड़ी स्वादिष्ट बनी हैं। [illegible] रहा है," अतुल ने गुझिया खाते हुए कहा।

"जैसे मालो के बाद बनाया है वह सब कुछ। [illegible] में," राजेश ने खीलें खाते हुए कहा।

"मेरे आगमन की खुशी में? आप लोगों को [illegible] रहा हूँ? बड़ा सोमा की चिट्ठी आई थी? [illegible] कि अब माँ और पिताजी न [illegible]" अतुल अधकचरा बन बोला।

मैं चौंकी। मेरी और राजेश की दृष्टि [illegible] मैंने पूछ लिया, "तुझे मेरी चिट्ठी नहीं मिली?"

"नहीं तो," अतुल घबरा गया। फिर उसने पूछा, "[illegible] थी?"

"हाँ, मैंने खुद पोस्ट की थी," राजेश ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"तुम्हें सोमा की चिट्ठी मिली, माँ?" अतुल ने पूछा।

"नहीं तो..."

"समझा। 8 साल से [illegible] हाथों में तलवार थामे। [illegible] था। [illegible] बिना किसी हानी के।"

मैं और राजेश एक-दूसरे को देखते रह गए।

"माँ, मैंने अपनी [illegible] करता था। [illegible] कि हम लोग दीवाली के बाद [illegible] है। [illegible]" अतुल बोला।

"माँजी, मेरा विश्वास कीजिए। मैं आपकी और पिताजी की खूब सेवा करूंगी। आपसे कभी नहीं लड़ूँगी," मरियम बोली।

राजेश के चेहरे पर दीवाली के दीए जल उठे। उन्होंने मरियम के सिर पर हाथ रख दिया और बोले, "सदा खुशी रहो, बेटी। इनसान को इनसान के रूप मे न परख कर, उसे जाति या धर्म की चौखट मे जड़ कर मैंने जो गलती की, उसका एहसास मुझे आज हो गया है। इस दीवाली ने मेरे अंतर के समस्त संकुचित विचारों, धार्मिक संकीर्णताओं के अंधकार को नष्ट कर दिया है।"

मैं उमंग में भर गई थी। मेरे घर मे सचमुच खुशी की लक्ष्मी आ चुकी थी।

अलगाव

एक गहरी तंद्रा से अचानक वह जाग गई। लगा, किसी ने सिर पर लगातार हथौड़े मारे हैं। रात्रि की घोर नीरवता तथा चारों तरफ व्याप्त गहन अंधकार को चीरता हुआ एक कर्कश-सा स्वर गूंज रहा था। फोन की घंटी।

उसने पलंग से जड़े स्विच को दबाया। कमरे में प्रकाश फैल गया। पलंग के पास रखी मेज पर 'अलार्म' घड़ी रखी। उसके पास ही था लाल रंग का फोन। रात दो बजे फोन आना बिल्कुल भी अप्रत्याशित बात नहीं थी। अवश्य किसी गंभीर रूप से बीमार व्यक्ति का होगा।

अलसाई सी वह मेज की तरफ खिसकी। कितनी कठिनाई से रात 12 बजे के करीब वह सो सकी थी। पता नहीं, जानलेवा गंभीर रोग लोगों पर आधी रात के समय ही आक्रमण क्यों करते हैं? उसने रिसीवर उठाया और बेहद ऊंचे स्वर में बोली, "हैलो!"

"डाक्टर विमला बोल रही हैं?"

"जी, फरमाइए। क्या तकलीफ है?"

"देखिए, डाक्टर साहब, मुझे कोई तकलीफ नहीं है। मैं पुलिस थाने से बोल रहा हूं।"

पुलिस थाने से ! वह अचकचा कर बैठ गई। पुलिस थाने का नाम सुन कर और उधर से आने वाले स्वर की रूक्षता से उसे दोहरा चौंका दिया।

"मुझे अफसोस है कि इतनी रात गए मैं आपको तकलीफ दे रहा हूं, पर क्या करूं, मजबूर हूं। आपकी बेटी अपने एक साथी के साथ पुलिस की हिरासत में है।"

"क्यों ? क्या किया उसने ?"

"एक मोटर साइकिल चुराई है दोनों ने। नशे की हालत में चोरी की मोटर साइकिल पर सवारी करते हुए उन्होंने एक साइकिल सवार को टक्कर मार दी। बालक को काफी चोटें आई हैं।"

फोन का रिसीवर उसके कांपते हाथों से छूट कर गिरते-गिरते बचा।

यह कैसी भयावह सूचना है ! माला खो गई थी ? पास होते हुए भी इतनी दूर ! फिर आज मिली है तो इस हालत में।

"तहकीकात से पता चला कि इसमें सारी गलती उस बदमाश प्रतापकिशोर की है। अगर आप ठीक समझें तो आ कर अपनी बेटी को ले जाएँ। शहर की इतनी मशहूर लेडी डाक्टर की लड़की इस तरह आवारा छोकरों के साथ रहे, अच्छा नहीं मालूम देता।"

"ठीक है। मैं आ रही हूं," उसने कहा और फोन बन्द कर दिया।

पुलिस वाले ने जो कुछ अभी कहा, क्या वह एक करारा तमाचा नहीं था उसके गाल पर ? पर वह क्या करे ? शायद कुछ भी नहीं कर सकती वह ? जिंदगी ने उसे सब कुछ दिया है—व्यावसायिक सफलता एक डाक्टर के रूप में ख्याति, पैसा, बंगला, कार तथा आधुनिक जीवन की समस्त सुख-सुविधाएँ। नाम, काम, पैसा सभी कुछ है उसके पास।

पर इतना सब कुछ देकर भी जिंदगी ने सब कुछ छीन लिया है। रोगियों को नया जीवन देने वाली वह किस तरह धीरे-धीरे तिल-तिल कर के नष्ट होती जा रही है। अकेलेपन और असमर्थता का कैंसर उसके जीवन को कुतर-कुतर कर खाए जा रहा है।

वह पलंग से नीचे उतरी तो सिहर गई। वह क्या दिसंबर के पहले हफ्ते की गुलाबी ठंड का असर था या फिर माला ने अंत में पुलिस थाने पहुँचकर उसे झकझोर दिया था, उसकी जिंदगी के खोखलेपन को नग्न कर दिया था।

कपड़े पहन, मुखिया नौकरानी को जगा, वह कार में बैठ पुलिस थाने की तरफ रवाना हो गई। आज की रात उसकी जिंदगी मे जो अँधेरा फैला है, क्या वह उसके जैसे 20 वर्ष पूर्व लिए गए निर्णय की निकृष्टतम पराकाष्ठा है ? क्या उसी फैसले की वजह से उसने माला को खो दिया था ?

कार मे बैठी वह पुलिस थाने जा रही थी, पर मन था कि अतीत की धूल-भरी गलियों में भटके जा रहा था। स्मृतियों की आंधी चक्रवात बन उसके संपूर्ण अस्तित्व को उड़ाए लिए जा रही थी।

चिकित्साशास्त्र की शिक्षा समाप्त होते ही वह उसी हस्पताल मे लग गई जहाँ के कालेज मे वह पढ़ी थी। नौकरी के साथ-साथ पति भी मन चाहा मिल गया था। राजेश उसके ही साथ पढ़ता था। पाँच वर्ष के लंबे प्रेमी जीवन के बाद वे दांपत्य-सूत्र में बँध गए थे।

तब उसे महसूस हुआ था कि जिन्दगी कितनी खुशनुमा है। उसे लगता जैसे उसके चारों ओर हरसिंगार के फूल बिखरे पड़े हैं। कश्मीर में मधु-मास मना कर वे दोनों लौटे तो जिन्दगी कितनी भरी-भरी और सुखमय थी।

जब उसने स्वर्णिम भविष्य मे होने वाली सुखद घटना की सूचना राजेश को दी तो वह इतना प्रसन्न नहीं हुआ जितना होना चाहिए था। वह सिर्फ इतना ही बोला था, "क्या यह काफी जल्दी नहीं है ?"

"आने दो आने वाले को। इसमे देर या जल्दी क्या ?" उसने दार्शनिक मूड में कहा था।

उसे खूब अच्छी तरह याद है वह दिन, तारीख और समय जब एक नया प्राणी उसकी जिंदगी मे आया था, माला बन कर। 10 अगस्त, मंगलवार, रात नौ बजकर 27 मिनट पर। उसे वह दिन, तारीख और समय भी याद है जब एक जीवन-साथी उसे हमेशा के लिए छोड़ कर विदेश चला गया था। 20 मई, सोमवार, शाम चार बज कर 20 मिनट।

क्या उनके सुखद वैवाहिक जीवन की इतनी अल्प आयु थी ? मुश्किल से सात महीने। आज भी वह सोचती है तो लगता है कोई दिल पर घूँसे बरसा रहा है।

शुरू से ही राजेश बहुत महत्त्वाकांक्षी था। वह अपनी नौकरी से संतुष्ट नहीं था। वह ढेरों पैसा कमा कर प्राइवेट प्रैक्टिस शुरू करना चाहता था जिसमें वह सर्जन और उसकी पत्नी मेडिसिन विभाग देखे। वह हमेशा यही कल्पना किया करता था कि उसका एक बहुत बड़ा नर्सिंग होम बन गया है और उसने दर्जनों डाक्टरों को नौकर रखा हुआ है। पूरे देश में उसकी ख्याति फैल गई है।

सपने देखना अच्छी बात है, पर उन्हें पूरा करने के लिए आंतरिक निष्क्रियता और बाह्य क्रियाशीलता नहीं, मन की शांति तथा बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयासों की आवश्यकता होती है। सपनों को सच करने के लिए शेखचिल्ली बनने से क्या लाभ?

राजेश हमेशा अपनी तत्कालीन स्थिति से असंतुष्ट रहा। वह हर समय सरकार की आलोचना करता रहता था।

"यह क्या तमाशा है? सरकार की कैसी ढुलमुल और असंगत नीति है। बीमा कम्पनी में एक क्लर्क को ढाई हजार रुपये वेतन मिलता है और हमने पांच साल तक एड़ी रगड़, रात-दिन एक कर के डाक्टरी पढ़ी है और हमें कुल 1,500 मिलते हैं। भला यह भी कोई बात हुई।"

"प्राइवेट प्रैक्टिस की सामर्थ्य नहीं है। फिर नौकरी में ही संतुष्ट रहना सीखो, राजेश," वह कहती थी।

"नहीं, विमल, संतुष्टि मृत्यु है, महत्त्वाकांक्षा ही जिन्दगी है।"

"परन्तु हर समय असंतोष और अंधी दौड़ से भी कौन-सा सुख और समृद्धि मिलने वाली है?"

यह थी शुरुआत उनके दृष्टिकोणों के अंतर की। एक मामूली-सी दरार धीरे-धीरे चौड़ी खाई बनती चली गई। और एक दिन राजेश ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि वह यह नौकरी छोड़ विदेश चला जाएगा।

उसे राजेश का यह विचार अच्छा नहीं लगा था, पर वह टाल गई थी। उन दोनों ने भारत के गृह मंत्रालय में विदेश सेवा के लिए अपने नाम पंजीकृत करा रखे थे। जब किसी डाक्टर का नम्बर आता तथा अन्य किसी देश में डाक्टरों की मांग आती, वे चले जाते। ऐसी दशा में वे

सरकार द्वारा विदेश भेजे जाते। तीन-चार साल में वापस आ जाते। उनकी सरकारी नौकरी बरकरार रहती और वे पुनः उसे ग्रहण कर लेते।

परन्तु राजेश अधीर होने लगा था। वह अपने चिकित्सक का उत्तरदायित्व भी ठीक से नहीं निभा रहा था। जब उसे हस्पताल में होना चाहिए था, उस समय वह किसी व्यक्ति से अथवा सरकारी अधिकारी से भेंट कर अपनी विदेश-यात्रा का जुगाड़ लगा रहा होता था।

उसे यह सब अच्छा नहीं लगता था। पर वह अप्रिय स्थिति उत्पन्न नहीं करना चाहती थी। अतः टकराव और बहस को वह टाल जाती थी।

पर विदेश में जाकर नौकरी करने के लिए राजेश जैसे कटिबद्ध हो गया था। नौकरी, पत्नी, आने वाली संतान, देश में प्रथम श्रेणी का नागरिक होने की प्रतिष्ठा—इन सबका उसके लिए कोई आकर्षण नहीं रह गया था। उसे तो बस एक ही चीज चाहिए थी—पैसा।

तभी उसकी जिंदगी में तूफान आ गया। ईरान से डाक्टरों का एक प्रतिनिधि मंडल भारत आया और खुले बाजार से उसने काफी सारे डाक्टरों का चयन कर लिया। उनमें राजेश भी था।

"तुम्हारा चयन कैसे हो गया?" उसने घोर आश्चर्य से पूछा था।

"स्थानीय एजेंट को 10 हजार रुपये रिश्वत दी।"

"इतने पैसे कहाँ से आए?"

"डाक्टर हो, पुलिस वालों की तरह पूछताछ मत करो।"

"पर क्या इस तरह जाने से इस नौकरी से त्यागपत्र नहीं देना होगा?"

"वह तो देना होगा।"

"लौट कर हमें ये पद नहीं मिलेंगे।"

"झाड़ू मारो इस नौकरी को। लौट कर हमारे पास इतने नोट होंगे कि हम एक बड़ा हस्पताल खरीद सकते हैं।"

"न बाबा, मुझे नहीं खरीदनी ऐसी समस्या। आखिर हम इतने पैसे का करेंगे क्या? राजेश, मेरे ख्याल से हमारे इस विदेश सेवा करने का कोई औचित्य नहीं है।"

"ठीक है। तुम यही सड़ो। मैं तो चला।"

"सोच लो, राजेश। एक तो इस तरह लगी-लगाई नौकरी छोड़ना, गैर-सरकारी ढंग से विदेश मे जा कर नौकरी करना, सब जोखिम भरा है। मैंने काफी सारे डाक्टरो से बातें की हैं, वे कह रहे थे कि कई बार इस तरह अनधिकृत रूप से बाहर जाने मे तुम्हे इतनी धनराशि नही मिलती जितनी के लिए तुमसे समझौता किया जाता है।"

"बड़ा बीमार दृष्टिकोण है तुम्हारा," राजेश ने गरम होकर कहा था।

"यही नही, जिस दिन देश मे तुम जाना चाहते हो, वह राजनीतिक दृष्टि से भी एक अस्थिर दौर से गुजर रहा है। वहाँ आंतरिक अशाति है। बरसों से पड़ोसी देश से उसका युद्ध चल रहा है। वहाँ रोज बम विस्फोट होते हैं। क्या तुम समझते हो, वहाँ जीवन सुरक्षित रहेगा?"

"विमल, मैं जाऊँगा। यदि तुम नही चलना चाहती तो अलग बात है। मैं यहाँ कीडे-मकोड़ों की तरह मरने की बजाए।"

"राजेश!" उसने चीख कर राजेश द्वारा कही जाने वाली अशुभ बात का गला घोंट दिया था।

अपनी धुन का पक्का राजेश उसकी भावनाओं और तर्क की चिंता किए बिना जाने की तैयारी करने लगा। उसने बहुत कोशिश की पर वह नही माना। हार कर एक दिन राजेश ने यहाँ तक कह दिया, "विमल, मैं तुम्हे छोड़ सकता हूँ, पर इस विदेश सेवा के प्रस्ताव को नही।"

उस क्षण उसका समस्त विश्वास चूर-चूर हो गया था। घर नरक हो गया। इस विषय को लेकर रोज झगड़ा होने लगा था। दानो मे बिलकुल नही पट रही थी। दोनो मे से कोई भी नही झुक रहा था, न ही दोनों की विरोधी भावनाओं और विचारधाराओ के बीच समन्वय या सामंजस्य स्थापित हो पा रहा था।

फिर एक दिन जैसे बम-विस्फोट हो गया। उसे एक विवाह मे जाना था। उसने राजेश से कहा कि वह लॉकर से उसका सेट निकाल कर ला दे। उस दिन पता चला कि राजेश ने वह सेट उससे बिना पूछे ही बेच दिया

था, स्थानीय एजेंट को 10 हजार रिश्वत देने के लिए।

उसके अंदर जैसे एक भयंकर ज्वालामुखी फट पड़ा। वह चीख पड़ी थी, "यह तुमने क्या किया, राजेश?"

"फिक्र मत करो। ईरान से लौट कर ऐसे 10 सेट दिलवा दूँगा।"

"पर मेरी शादी का यह सेट…।"

"मेरा-मेरा मत करो। यह तुम्हारे पिताजी के पैसे का नहीं, मेरे अपने पैसे का था।"

"तो तुम इस सीमा तक जाकर।"

बस, दोनों ही पक्ष आक्रमण और प्रत्याक्रमण पर उतर आए थे। जब ऐसा होता है तो सब कुछ नष्ट हो जाता है। एक ऐसी विनाश-लीला होती है जिसमें कुछ भी तो शेष नहीं रहता।

क्रोध में भरा राजेश उस दिन घर से चला गया। कुछ दिन बाद वह उसकी जिंदगी से भी हमेशा के लिए बाहर चला गया।

पहले तो वह गया ईरान। कुछ मित्रों के माध्यम से पता चला कि वहाँ उसे वे ही समस्याएँ पेश आईं जिनकी चर्चा उसने की थी। अपने अहं के कारण वह भारत नहीं लौटा।

स्थानीय भारतीय दूतावास में किसी मित्र की सहायता से वह जाम्बिया चला गया और एक खान कंपनी में स्थायी नौकरी पर लग गया।

राजेश तो चला गया, पर वह अकेली रह गई। एकदम अकेली। एक विचित्र स्थिति में फँसी-सी। वह क्या थी? विवाहिता या तलाकशुदा?

कुछ दिन के अकेलेपन ने उसे कुछ विशेष कष्ट नहीं दिया; क्योंकि उसके अंतर में अलगाव का विषाद नहीं, राजेश की महत्त्वहीन महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित व्यवहार से उत्पन्न आक्रोश का सागर ठाठें मार रहा था।

फिर आ गई माला। राजेश और उसके प्रणय की प्रतीक। जिंदगी काफी भरी-भरी हो गई। अगले कुछ वर्ष पलक झपकते बीत गए। जब माला करीब सात-आठ वर्ष की हुई और अलग पलंग पर सोने लगी, तब उसे सूनी रातों का कसमसाता अकेलापन कचोटने लगा। रात-रात भर वह जागती। दिन-भर के परिश्रम के बाद, कारोज खाने के बावजूद, वह अशांतमना सो नहीं पाती थी।

कुछ दिन पश्चात् क्रोध और आक्रोश की जगह खेद और पश्चाताप की भावनाएं आ गई थीं। किस शॉक से आकर वह राजेश की मां बैठी थी।

एक माला, दूसरा उसका अहंकार और तीसरा खेद और पश्चाताप की भावना—इन्हीं कारणों से उसने दोबारा विवाह न करने का फैसला कर लिया। साथ ही उसने माला को मां-बाप दोनों का प्यार देने का निश्चय कर लिया।

पर माला की 10वीं वर्षगांठ पर उसे जीवन के एक विगत सत्य का ज्ञान हुआ। साथ ही साथ माला के व्यक्तित्व के बारे में एक चौंकाने वाला रहस्योद्घाटन भी हुआ।

विगत सत्य था—पिता पिता है और मां उसका केवल अभिनय-भर कर सकती है, वह उसका स्थान कभी नहीं भर सकती।

रहस्योद्घाटन था—माला के अंदर से कई तरह की भावनाएं पैदा होने लगी थीं।

हुआ यह कि जिस दिन माला की 10वीं वर्षगांठ थी, उस दिन सुबह जब वह जागी तो उसने माला को गले से भींच कर वर्षगांठ की बधाई दी और पूछा, "सोनो, मेरी बेटी, आज अपने जन्मदिन पर तुम्हें क्या उपहार चाहिए?"

"कुछ भी मांगूं तो आप देंगी?" माला ने मुसकराते हुए पूछा था।

"हां, मेरी बच्ची।"

"मुझे एक पिता उपहार में दीजिए, मां।"

इतनी अप्रत्याशित मांग! उसका अंतर छटपटा गया था। आंखें नम हो गई थीं। तो माला के अंदर हीन भावनाएं पैदा होने लगी हैं? शायद डाक्टरों के फ्लैट्स के बच्चे साथ-साथ खेलते हैं, वहीं से माला ने पिता के अभाव को महसूस किया होगा।

वह माला को पिता कहां से लाकर देती? शायद वही एक मनोक्षण था जहां से माला और उसके बीच अलगाव की खाई खुदनी गई थी। यही नहीं, वह पिता की भूमिका तो दूर, मां के कर्तव्यों

का पालन तक करने में असमर्थ थी।

सुबह-ही-सुबह हस्पताल चले जाना, दोपहर के भोजन के समय आधे-पौने घंटे के लिए घर आना, फिर हस्पताल की ड्यूटी। सिर्फ रात को खाने पर माला से मुलाकात होती। सच तो यह था कि माला को सुखिया पाल रही थी। वही उसकी माँ थी और वही उसकी पिता।

धीरे-धीरे उसे माला के व्यक्तित्व में उभरने वाले व्यतिक्रमों का आभास होने लगा। स्पष्ट रूप से बड़ी होती लड़की उसके खिलाफ विद्रोह पर उतारू हो चुकी थी। हायर सेकंडरी पास करते-करते माला एक उद्दंड, अनुशासनहीन और उसके आदेशों की अवज्ञा करने वाली नवयुवती बन चली थी।

वह ऐसे विचित्र कपड़े पहनती जिन्हें साधारणतया सुरुचिपूर्ण नहीं समझा जाता था। वह माला से कहती कि अमुक लड़का ठीक नहीं है, उससे मत मिला करो। वह जानबूझ कर उसी लड़के से घनिष्ठता स्थापित कर लेती। क्या पढ़ाई, क्या वेशभूषा, मित्रों का चुनाव या फिर खान-पान, हर क्षेत्र में माला उसकी इच्छा और आज्ञा के विरुद्ध जाती।

और एक दिन माला ने उससे एक बेहद अंतरंग प्रश्न पूछ कर उसे स्तब्ध कर दिया था। उस दिन वह कुछ धुले मूड में थी। अतः उसने पूछा, "*माँ, एक बात बताइए। पिताजी आपको छोड़ कर क्यों चले गए?*"

[illegible] कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दे सकी।

शायद सबसे बड़ी दुर्घटना तब हुई जब उसने सरकार द्वारा प्रदत्त एक विदेशी प्रशिक्षण का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। आठ महीने का आस्ट्रेलिया का प्रवास आने-जाने और वहाँ रहने, ठहरने, खाने-पीने का सारा खर्चा सरकार द्वारा। उसने माला को छात्रावास में दाखिल कर दिया और खुद आस्ट्रेलिया चली गई।

वह तो निश्चित अवधि के बाद लौट आई, परन्तु इस दौरान माला फिसलन-भरे मार्ग पर इतनी दूर निकल गई थी कि उसको लौटा पाना लगभग असंभव हो गया था। उसने माला से छात्रावास छोड़कर घर आने को कहा तो वह बोली, "माँ, अब तो खुली हवा में रहने की आदत पड़

गई है। जेलखाने में क्यों बुलाती हो ?"

शायद माला ने उसकी इच्छा के विरुद्ध ही काम करने की जैसे कसम खा रखी थी। बाद में उसे छात्रावास की संरक्षिका द्वारा भेजी गई सूचनाओं से पता चला कि माला सिगरेट तथा अन्य मादक द्रव्यों का सेवन करने लगी है।

उसका अंतर कसक गया। एक दिन वह माला के छात्रावास पहुँची उसे लौटा लाने के लिए, पर माला एकदम बेहोश-सी पड़ी थी अपने कमरे में, किसी मादक द्रव्य के प्रभाव में। उसने अपनी एकमात्र बच्ची को बहुत समझाने की कोशिश की। उसे अपने साथ घर लाने का प्रयास किया, पर सब व्यर्थ।"

"आप बैरंग लौट जाइए। मैं आपकी शक्ल से भी घृणा करती हूँ। जो औरत अपने पति को घर से निकाल सकती है, वह अपनी औलाद को कैसे प्यार कर सकती है ?"

माला नशे में थी और नशे में इनसान अंतर की सचाई को उजागर कर देता है। तो यह थी माला के अंतर की सचाई।

एक-एक शब्द हथौड़ा बन उसके कलेजे को कूट रहा था। वह लौट आई—खाली हाथ, माला को हमेशा-हमेशा के लिए खो कर। साथ ही एक अभिशाप-भरे एहसास को समेटे कि उसका और राजेश का संबंध-विच्छेद ही माला की इस दुर्दशा के लिए उत्तरदायी है। काश राजेश होता तो माला को छात्रावास में दाखिल कराने की क्या जरूरत होती।

और फिर कुछ महीनों बाद उसे छात्रावास से सूचना मिली कि घोर अनुशासनहीनता के आरोप में माला को छात्रावास से निकाल दिया गया है। वह माला के घर लौटने की प्रतीक्षा करती रही, पर आशा के विरुद्ध माला घर नहीं लौटी।

पहले पति और उसके बाद एकमात्र पुत्री—दोनों को खो कर वह लगभग विक्षिप्त हो गई। दिन तो व्यावसायिक व्यस्तता में निकल जाता, परंतु रात'''।

वह पुलिस थाने पहुँची। कार से उतर कर वह अंदर गई। माला कोने में सिकुड़ी, गठरी बनी पड़ी थी। कितना बदलाव आ गया था

उसने आँखें निस्तेज हो चुकी थीं। होठों पर काली पपड़ियाँ जमी थीं। रंग स्याह हो गया था। बाल बुरी तरह उलझे हुए। बेहद गंदी जीस और टाट पहने थी वह। उसका पूरा व्यक्तित्व निस्तेज और श्रीहीन हो चुका था। गिरफ्तार व्यक्ति को छुड़ा कर लाने की संपूर्ण जटिल प्रक्रिया को पूरा कर, माला को कार में साथ ले जब वह लौट रही थी तो केवल एक ही विचार उसे घेरे हुए था—जैसे-तैसे उसकी खोई बच्ची मिल गई है। वह इसका पुनरुद्धार कर लेगी। काश, राजेश भी लौट आए। देर से ही सही, उसकी जिंदगी एक बार फिर नए सिरे से जन्म लेकर जीने योग्य तो हो जाए।

□

गई है। जेलखाने में क्यों बुलाती हो ?"

शायद माला ने उसकी इच्छा के विरुद्ध ही काम करने की जैसे क़सम खा रखी थी। बाद में उसे छात्रावास की संरक्षिका द्वारा भेजी गई सूचनाओं से पता चला कि माला सिगरेट तथा अन्य मादक द्रव्यों का सेवन करने लगी है।

उसका अंतर कसक गया। एक दिन वह माला के छात्रावास पहुंची उसे लौटा लाने के लिए, पर माला एकदम बेहोश-सी पड़ी थी अपने कमरे में, किसी मादक द्रव्य के प्रभाव में। उसने अपनी एकमात्र बच्ची को बहुत समझाने की कोशिश की। उसे अपने साथ घर लाने का प्रयास किया, पर सब व्यर्थ।"

"आप बैरंग लौट जाइए। मैं आपकी शक्ल से भी घृणा करती हूं। जो औरत अपने पति को घर से निकाल सकती है, वह अपनी औलाद को कैसे प्यार कर सकती है ?"

माला नशे में थी और नशे में इनसान अंतर की सचाई को उजागर कर देता है। तो यह थी माला के अंतर की सचाई।

एक-एक शब्द हथौड़ा बन उसके कलेजे को कूट रहा था। वह लौट आई—खाली हाथ, माला को हमेशा-हमेशा के लिए खो कर। साथ ही एक अभिशाप-भरे एहसास को समेटे कि उसका और राजेश का संबंध-विच्छेद ही माला की इस दुर्दशा के लिए उत्तरदायी है। काश राजेश होता तो माला को छात्रावास में दाखिल कराने की क्या जरूरत होती।

और फिर कुछ महीनों बाद उसे छात्रावास से सूचना मिली कि घोर अनुशासनहीनता के आरोप में माला को छात्रावास से निकाल दिया गया है। वह माला के घर लौटने की प्रतीक्षा करती रही, पर आशा के विरुद्ध माला घर नहीं लौटी।

पहले पति और उसके बाद एकमात्र पुत्री—दोनों को खो कर वह अर्द्ध-भग्न विक्षिप्त हो गई। दिन तो व्यावसायिक व्यस्तता में निकल जाता, पर रात...।

वह पुलिस थाने पहुंची। कमरे में
एक कोने में सिकुड़ी, सहमी बनी

उसमे आँखें निस्तेज हो चुकी थीं । होठों पर कानी [illegible]
स्याह हो गया था । बाल बुरी तरह उलझे हुए । [illegible]
पहने थी वह । उसका पूरा व्यक्तित्व निस्तेज और [illegible]
गिरफ्तार व्यक्ति को छुड़ा कर लाने की संपूर्ण जटिल [illegible]
माला को कार मे साथ ले जब वह लौट रही थी तो [illegible]
उसे घेरे हुए था—जैसे-तैसे उसकी खोई बच्ची फिर [illegible]
पुनउंद्धार कर लेगी । काश, राजेश भी लौट आए । [illegible]
जिंदगी एक बार फिर नए सिरे से जन्म लेकर जीने [illegible]

अगली बार

ममी-पापा की इस अप्रत्याशित मांग ने अजीत को बुरी तरह चौंका दिया। इतनी बड़ी रकम का वे क्या करेंगे ? पूरे एक हजार रुपए !

विस्मित-सा वह उन दोनों को ताकता रह गया। उसने महसूस किया, ममी उसे ऐसी उत्सुक दृष्टि से ताक रही हैं मानो वह अगले ही क्षण उनके भाग्य का निर्णय घोषित करने वाला हो। कुछ-कुछ उसकी समझ मे आने लगा था इस मांग का रहस्य। दीवाली आ गयी थी।

पिछले डेढ़ वर्ष से इला दीदी उन लोगों से एकदम कट गयी हैं—स्वयं नही, अपने सास-ससुर के शुष्क, क्रूर तथा निरंकुश व्यवहार के कारण। फिर मोटी को भी देखने की ललक इन लोगों के मन मे होगी।

"क्या सोचने लगा रे ?" माँ ने उसे कुरेदा। अनुमान के बीरान प्रदेश से वह वास्तविकता के संसार में आ गया। हाँ, उसे आठ सौ रुपए बोनस मिलनेवाला है। बैंक मे भी थोड़ा सा रुपया बचा हुआ है। उसका बजट पूर्ण रूप से नियन्त्रित है। यदि वह ये एक हजार रुपए ममी को दे भी दे तो···? तो अभी नही, बाद में अवश्य आर्थिक संकट उत्पन्न हो सकता है।

"नही जुटा सकता तो साफ-साफ बता दे। तू तो ऐसे चुप हो गया जैसे सांप सूंघ गया हो !" पापा ने कटुता-भरे स्वर में कहा।

वह निर्णय-कूल तक पहुँच चुका था। हाँ, मन मे एक चोर-भावना

जल में झाँकती मछली के समान सिर उठा रही थी। यह तो जया की कृपा है जो पिछले इतने वर्षों में वह अपनी सीमित आय में घर की गाड़ी को खींच रहा है। पाँच वर्ष पूर्व उसकी शादी हुई। विवाह में जो कुछ उपहार तथा नकदी भेंटस्वरूप मिली, उसे और पापा के फंड तथा ग्रेच्युटी के रुपयों को मिलाकर उसने इला की शादी कर दी।

फिर सीमित आय में चार प्राणियों का जीवन-यापन। पापा प्राइवेट कम्पनी से रिटायर हुए। इसलिए न तो उन्हें कोई पेंशन मिलती, न ही उन्होंने कोई पार्ट-टाइम धंधा ही शुरू किया।

आज तक उनके घर का खर्चा भली भाँति चलता रहा। दो कारण थे इसके। एक तो मम्मी-पापा ने इला दीदी के विवाह के पश्चात उनको हर तीज-त्योहार पर कड़ियल तरीके से उपहार नहीं भेजे। दूसरा, इला को मातृत्व का वरदान नहीं मिला। मम्मी ने कितना पूजापाठ, गंडे-तावीज आदि का नाटक किया, परन्तु नाती को खिलाने की उनकी मनोकामना पूरी नहीं हुई।

दोनों कारणों ने दोनों ही परिवारों में मतभेद उत्पन्न कर दिया। इधर जया के बच्चा न होने से उसके मम्मी-पापा बेहद तनाव में रहने लगे। क्या उनको नाती को खिलाने का स्वर्गीय सुख कदापि प्राप्त नहीं होगा? क्या उनकी वंश-परंपरा समाप्त हो जाएगी? बुढ़ापे में नाती के बिना घर कितना सूना-सूना लगता है।

उधर इला के सास-ससुर ने इस घर से लगभग नाता ही तोड़ लिया। तीन वर्ष पूर्व जब 'सरिता' के वैवाहिक विज्ञापन के माध्यम से इला का रिश्ता मोहन से पक्का हुआ, तो नरेंद्रनाथ फूले नहीं समाए। लड़का इनकम टैक्स अधिकारी था। नागपुर के रहनेवाले थे वे लोग। वहीं एक कारखाना लगा रखा था—सौंदर्य-प्रसाधन सामग्री बनाने का। लड़का वहीं नागपुर में आयकर अधिकारियों के प्रशिक्षण संस्थान में एक वर्ष की ट्रेनिंग ले रहा था।

वह तो इला की सुन्दरता जादू कर गयी, वरना दोनों परिवारों के आर्थिक स्तर में जमीन-आसमान का अंतर था। तब इला के ससुर ने कहा था—नरेंद्रनाथ जी, हमें तो केवल लड़की चाहिए। बाकी भगवान का

दिया-लिया सब कुछ है।

पर इंसान की कथनी-करनी में कितना अंतर होता है! बाद की घटनाएँ इसकी साक्षी थी। एक वर्ष के अंदर ही इला ने एक पुत्र को जन्म दिया। ममी-पापा ने उपहारस्वरूप एक हजार रुपए भेजे। पैसे वापस आ गये। साथ में नोट था—इतना पैसा तो हम लोगों ने अपने नौकरों को इनाम में बांट दिया। आपको हमारा अपमान करने का कोई अधिकार नहीं है।

यही नहीं, पिछले दो वर्ष से उन लोगों ने इला को पीहर जाने की आज्ञा नहीं दी है। दीदी की चिट्ठी आती है—मैं खुश हूं। तुम लोगों को देखने को जी भटक रहा है। पर क्या करूं, घर-गृहस्थी के जंजाल में ऐसी फंसी हूं कि बस पूछो मत।

मां पत्र पढ़ती और उनकी आंखों में आंसू आ जाते। पापा के चेहरे पर सूखाग्रस्त क्षेत्र की भयावहता आकर थम जाती।

अचानक अजीत का अतीत-विचरण भंग हो गया। उसने देखा, मां सुबकने लगी हैं। वह बड़बड़ा रही थी, "दूसरों पर आश्रित रहने का यही सुख मिलता है। ठीक है जी, मेरी ये दो सोने की चूड़ियां…।"

"मां!" वह चीख पड़ा था।

"चीखता क्यों है? घंटे भर से गुमसुम बैठा है। एक हजार रुपए क्या मांग लिए, दुनिया भर का सोच-विचार करने बैठ गया," पापा थोड़े कर्कश हो गये।

"मेरे ख्याल से आप लोग इला दीदी को दीवाली का उपहार भेजना चाहते हैं?" अजीत ने पूछा।

"भेजना नहीं हम लोग खुद जाना चाहते हैं," पापा ने शांत स्वर में कहा।

"आप लोग नागपुर जाएंगे?" अजीत बुरी तरह चौंक पड़ा। "हां, हम लोग भटक गये हैं इला को बिना देखे। फिर धेवते को अभी तक नहीं देखा। [redacted] अक्टूबर को दीवाली है। हम लोग 20 को शाम जी० टी० से जाकर 21 को दोपहर एक बजे नागपुर पहुंचेंगे। उसी शाम साढ़े आठ की गंगा एक्सप्रेस से लौटकर, दीवाली के दिन दोपहर ढाई बजे दिल्ली

पहुंच जाएंगे," पापा ने अपने कार्यक्रम की पूरी रूपरेखा उसे बता दी।

"क्या आपका वहां जाना उचित होगा ?" अजीत ने दबी जबान से पूछा।

"इसमें अनुचित क्या है ?" ममी ने प्रश्न के उत्तर में एक प्रश्न पूछ लिया।

"देख लीजिए। मैं नहीं समझता, आपको इला के यहां जाकर कोई खुशी होगी।"

"वे उसे यहां आने की आज्ञा नहीं देते। तू हमें वहां जाने से रोक रहा है। इसका मतलब है, हम अपनी बेटी और धेवते से कभी मिल ही नहीं सकेंगे," ममी ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया।

"जैसी आपकी इच्छा। मैं एक हजार रुपये का प्रबंध कर दूंगा," अजीत ने डूबे स्वर में कहा। माया और नरेंद्रनाथ के चेहरे खुशी से चमक उठे।

...दो घंटे लेट थी गाड़ी। नागपुर के विशालकाय, शानदार रेलवे स्टेशन से वे दोनों बाहर आए। स्कूटर लिया। सिविल लाइन्स का पता बताकर वे दोनों उसमें बैठ गये।

"मेरा तो दिल घबरा रहा है। बिना किसी खबर के जा रहे हैं। कहीं उन लोगों ने हमारा अपमान किया तो ?" माया ने शंका व्यक्त की।

"माया, अब तो आ ही गये हैं। जो होगा सो देखा जाएगा। बेटी और धेवते को देखने का जो सुख मिलेगा, उसकी खातिर हम लोग अपमान का विष भी पी लेंगे।"

कोई दस-मिनट में वे लोग इला के घर पहुंच गये। बड़ी शानदार कोठी थी। लोहे के मुख्य फाटक के अंदर कार-पोर्च था। वे अंदर घुसे। पोर्च में तीन आराम-कुर्सियां पड़ी थीं। उनमें से एक पर उनके समधी बैठे थे। उन दोनों को देखकर पहले तो समधी की आंखों में अविश्वास का भाव उभरा। फिर शीघ्र ही एक उत्सुकता भरी, ठंडी औपचारिकता से वह बोले, "अरे आप लोग ? इस तरह ? कैसे आए ?"

सुदामा की भांति वे दोनों खड़े थे। माया के हाथ में एक थैला था।

[illegible] के हाथ से अटैची लटक रही थी। उनके बैठने को कहा गया [illegible] बैठ गये। समधी ने बड़ी अनमनता तथा शुष्कता से उन्हें पूछा। [illegible] इस तरह अचानक [illegible] कैसे आना हुआ?"

"सोचा, आप लोगों के दर्शन कर आएं। इला और [illegible] को देखने के लिए मन ललक रहा था," माया ने कहा।

समधी चुप लगा गये। अठारह घंटे की थकान-भरी यात्रा और [illegible] का स्वागत! न चाय पीने की पूछ, न इला को उनके [illegible] बताया। माया की आंखें अंदर अपनी बेटी को खोज रही थीं। [illegible] [illegible] के बाद वह बोली, "मैं अंदर जाकर इला को देखती हूं।" [illegible] माया उठी, इला अंदर से बाहर आई। उसकी गोद में गोरा, [illegible] मोंटू था। मां को यूं अचानक आया देख इला अचम्भित रह गई। [illegible] भाग बढ़ी और मां से लिपट गयी। माया की आंखों में आंसू [illegible] स्नेहाधिक्य के कारण। उन्होंने मोंटू को गोद में लिया हुआ था। [illegible] बार उसे चूम रही थी।

मोंटू [illegible]

[illegible] की गर्मी से कहीं मोंटू को कोई इनफेक्शन न हो जाए।"

समधी की बात क्या थी, एक गोली थी जिसने उनके [illegible] आहत कर दिया। इस आक्रमण से वे दोनों तिलमिला [illegible] अंदर को मनन कर वे अंदर चले गये। नहा-धोकर और [illegible] दोनों [illegible] पर बिछे कालीन पर बैठ गये। सामने [illegible] मामा की गोद में खेल रहा था मोंटू। दामाद एक दिन के लिए [illegible] जबलपुर गया था।

[illegible] ने अटैची खोल थैला खोला और [illegible] कालीन पर सजा दिया—इला के लिए शिफोन की साड़ी, [illegible] [illegible] सिले-सिलाए कपड़े, मिठाई, नमकीन के [illegible] [illegible] [illegible] खूबसूरत [illegible] [illegible], दामाद के लिए [illegible] कपड़ा। इला भैया-भाभी के बारे में पूछताछ कर रही थी। [illegible]

बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहती थीं। अभी कोई दस मिनट का एकांत भी नहीं मिला होगा कि समधी-समधिन वहाँ पहुँच गये।

समधी साहब ने कई डकारें एक साथ ली और बोले, "यह तकलीफ क्यों की नरेंद्रनाथ जी?"

"तकलीफ काहे की ! हम तो गरीब आदमी हैं। हम किस लायक हैं !" नरेंद्रनाथ ने औपचारिकतावश कहा।

"तभी न ! गरीबी और ऊपर से इतना खर्च कर डाला। क्या कर्जा-वरजा उठाना पड़ा ?" समधी के स्वर में विष-ही-विष था। नरेंद्रनाथ ने विषपान की कड़वाहट को आत्मसात कर लिया। कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

मोटू नानी की गोद से फिसल अपने खिलौने से खेलने लगा।

"बेकार में इतने कीमती खिलौने खरीदे। उसके पास तो पहले से ही आधुनिकतम देशी-विदेशी खिलौनों से कमरा भरा पड़ा है !" इस बार सास बोली।

चोट पर चोट ? वे दोनों सहते चले जा रहे थे। बेटी और मोटू को देखकर जो सुख प्राप्त हुआ, उसके सामने इन चोटों का कोई महत्त्व नहीं था।

"लड़के के कपड़े कैसे गँवारू हैं। वह पहनेगा इन्हें ? इसे छोटे बच्चे के लिए पटाओ ! हद हो गयी बौड़मपने की। पैसा है नहीं। फिर भी मूर्खतापूर्ण खर्चे अवश्य करेंगे !"

"बहू की साड़ी का रंग देखो। कैसा गँवारू है ? और मोहन के सफारी सूट का कपड़ा ! ऐसे कपड़े तो हमारे यहाँ नौकर भी नहीं पहनते।"

टीका-टिप्पणी चालू थी। नरेंद्रनाथ ने फैसला कर लिया था कि वह एकदम प्रतिक्रियाहीन, तटस्थ-से बैठे रहेंगे। दीवाली के इस हँसी-खुशी के अवसर पर वह कोई अप्रियता उत्पन्न नहीं होने देंगे। ताली दो हाथों से बजती है। वह अपने हाथ का प्रयोग कदापि नहीं करेंगे। फिर देखते हैं, कैसे ताली बजती है। उन्होंने आँखों के संकेत से पत्नी को चाय लाने के लिए आदेश दिया। नरेंद्रनाथ जानते थे इस व्यवहार का रहस्य। बना

बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहती थीं। अभी कोई दस मिनट का एकांत भी नहीं मिला होगा कि समधी-समधिन वहाँ पहुँच गये।

समधी साहब ने कई डकारें एक साथ लीं और बोले, "यह तकलीफ क्यों की नरेंद्रनाथ जी?"

"तकलीफ काहे की! हम तो गरीब आदमी हैं। हम किस लायक हैं!" नरेंद्रनाथ ने औपचारिकतावश कहा।

"तभी न! गरीबी और ऊपर से इतना खर्च कर डाला। क्या करजा-वरजा उठाना पड़ा?" समधी के स्वर में विष-ही-विष था। नरेंद्रनाथ ने विषपान की कड़वाहट को आत्मसात कर लिया। कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

मोटू नानी की गोद से फिसल अपने खिलौनों से खेलने लगा।

"बेकार में इतने कीमती खिलौने खरीदे। उसके पास तो पहले से ही आधुनिकतम देशी-विदेशी खिलौनों से कमरा भरा पड़ा है!" इस बार सास बोलीं।

चोट पर चोट? वे दोनों सहते चले जा रहे थे। बेटी और मोटू को देखकर जो सुख प्राप्त हुआ, उसके सामने इन चोटों का कोई महत्त्व नहीं था।

"लड़के के कपड़े कैसे गँवारू हैं। यह पहनेगा इन्हें? इसे छोटे बच्चे के लिए पटाखे! हद हो गयी बौड़मपने की। पैसा है नहीं। फिर भी मूर्खतापूर्ण खर्च अवश्य करेंगे!"

"बहू की साड़ी का रंग देखो। कैसा गँवारू है? और मोहन के सफारी सूट का कपड़ा! ऐसे कपड़े तो हमारे यहाँ नौकर भी नहीं पहनेंगे।"

टीका-टिप्पणी चालू थी। नरेंद्रनाथ ने फैसला कर लिया था कि वह एकदम प्रतिक्रियाहीन, तटस्थ-से बैठे रहेंगे। दीवाली के इस हँसी-खुशी के अवसर पर वह कोई अप्रियता उत्पन्न नहीं होने देंगे। ताली दो हाथों से बजती है। वह अपने हाथ का प्रयोग कदापि नहीं करेंगे। फिर देखते हैं, कैसे ताली बजती है। उन्होंने आँखों के सकेत से पत्नी को चुप रहने के लिए आदेश दिया। नरेंद्रनाथ जानते थे इस व्यवहार का रहस्य। क्या

पैसा आता है तो दर्प और गर्व साथ ले आता है। गरीब रिश्तेदारों को हेय दृष्टि से देखना इस नव-समृद्धि शैली का प्रमुख अंश है। ठीक है, पैसे का जोश है। इसमें वह उनका अपमान नही कर रहे, अपनी ही सीमाओ तथा अपूर्णताओ का परिचय दे रहे हैं। इस विचार के साथ नरेंद्रनाथ के अंतर में कोई हलचल नही, उथल-पुथल नही—बिल्कुल शांति व्याप्त रही।

"ऐसा क्या लाड टपक रहा था जो दिल्ली से नागपुर तक की दौड़ लगा दी। तीन-चार सौ रुपये तो इसी में बरबाद हो गये होगे।"

सास की इस टिप्पणी ने इला के धैर्य का बांध ध्वस्त कर दिया। वह तीखे किंतु संयत स्वर में बोली, "मांजी, क्षमा करें। गरीब हैं मेरे मां-बाप। अपनी सामर्थ्य के अनुसार दीवाली पर वे जो भेंट लाये है, हमे उसे खुशी-खुशी स्वीकार कर लेना चाहिए। महत्व वस्तुओ का नही, भेंट के पीछे छिपी भावना, स्नेह, ममता, सम्मान का है।"

"ये लो, इस बहू ने तो पूरा भाषण ही दे डाला। ऐसा हमने क्या कह दिया ?" इला की सास उबल पड़ी।

"इला, सासजी से तर्क-वितर्क करना ठीक नही!" माया ने उसे समझाया।

"ठीक है। हम लोगों का होना इतना खटक रहा है तो हम चले जाते हैं," कहती हुई सास उठी और पांव पटकती हुई बाहर चली गयी। उसके पीछे-पीछे ससुर भी चले गये।

"इला, यह तूने क्या किया ?" माया भयभीत हो गयी।

"मां ! इन लोगों को पैसे का बहुत घमंड हो गया है। पैसा कमाना अच्छा है। धनवान होना सुख की बात है। पर जीवन मे पैसा ही सब कुछ नही। शालीनता तथा शिष्टाचार भी महत्वपूर्ण हैं।"

"वह तो ठीक है, पर···" नरेंद्रनाथ अपनी बात पूरी नही कर पाए।

"पापा, सच मानिए, पिछले दो वर्षों से मैं इस घर में घुटती रही हूं। वह तो मोहन समझदार है, इसलिए गुजारा हो जाता है। आप लोग दीवाली के बहाने आ गये, मेरे अदर नया जीवन आ गया।"

"हम भी तो भटक गये थे तुझे देखे बिना," माया बोली।

"अब इस संकट से मुक्ति मिल जाएगी," इला ने एक रहस्योद्घाटन किया।

"वह कैसे ?"

"मोहन का तबादला हो गया। उसकी बंबई में नियुक्ति हो गयी है। अगले महीने हम लोग यहाँ से चले जाएँगे। अपना स्वतंत्र जीवन बिताएँगे।"

नरेंद्रनाथ और माया की आँखें खुशी से चमक उठीं। "फिर तो तू दिल्ली आ सकेगी ?" माया ने उमग में भर कर पूछा।

"क्यों नहीं माँ ?" देर तक वे लोग बातचीत करते रहे। शाम के सात बजे तो उन्होंने इला से जाने की अनुमति माँगी।

"यह क्या, पापा ? आए भी तो आधे दिन के लिए ! ऐसी भाग-दौड़ में क्या मजा है," इला ने उलाहना दिया।

"बेटी, कल दीवाली है। जाना ही होगा।"

"मैं जानती हूँ। रोक भी नहीं सकती। घर की दीवाली मनाना जरूरी है। पर टिकट ?"

"स्टेशन पर उतर कर ले ली थी। प्रतीक्षा-सूची में नाम है। आरक्षण मिल गया तो ठीक है। वरना एक रात की बात है। बैठे हुए चले जाएँगे।"

इला स्टेशन आई ममी-पापा को छोड़ने। साथ में मोटू भी था। गाड़ी आधे घंटे लेट थी। पर संयोगवश, गाड़ी में कई बर्थ खाली थीं। उन्हें आरक्षण मिल गया। गाड़ी चलने को हुई तो मोटू नरेंद्रनाथ की गरदन से लिपट गया और बोला, "नानाजी, मत जाइए···।"

नरेंद्रनाथ और माया की आँखें भीग गयीं। सचमुच नागपुर आना अपने आप में एक उपलब्धि थी। इला को देख लिया। पर मोटू को देखकर तो जैसे जीवन सफल हो गया। उन दोनों के अंतर में जैसे ममता का सागर हिलोरें मार रहा था। गाड़ी चल पड़ी। मोटू अपना नन्हा सीधा हाथ हिलाकर उन्हें 'टा···टा···' कर रहा था। माया की आँखों में खुशी के आँसू उमड़ पड़े।

गाड़ी ने रफ्तार पकड़ ली। वे दोनों मौन बैठे थे—अपने-अपने स्तर

पर इस अनुभूति को जीते हुए।

"'अगले दिन दोपहरे ढाई बजे गाड़ी नई दिल्ली स्टेशन पहुँची, तो उन दोनों के समक्ष एक सुखद आश्चर्य उपस्थित हो गया। जया और अजीत उन्हें लेने स्टेशन आए थे।

"अरे तुम लोग क्यों परेशान हुए ?" माया बोली।

"परेशानी की क्या बात है ? यह बताओ, दीदी कैसी है ? और उसका बेटा ?" अजीत ने पूछा।

"ट्रिप बड़ा थकान-भरा रहा होगा ?" जया बोली।

"इला और उसके बेटे को देखकर मन खुश हो गया। खूब मजे में हैं वे। हाँ, मोहन नहीं मिले," नरेंद्रनाथ बोले।

"बेटा, मोंटू ने तो हमारा मन जीत लिया। सच-मच कहूँ, उसने तो मुझे रात-भर रुलाया। पाँच-सात घंटों में ही ऐसा हिलमिल गया कि बस पूछो मत !" माया ने कहा।

"अच्छा ही किया कि हम लोग दीवाली के बहाने इला और उसके बेटे से मिल आए। सच, नाती-पोतों का सुख'''" नरेंद्रनाथ का स्वर भर्रा गया।

अनायास अजीत का चेहरा खुशी की नीली रोशनी से प्रकाशित हो गया। उसने जया की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। उसने लज्जित हो नजरें झुका लीं।

प्लेटफार्म से बाहर आकर अजीत ठिठका। फिर ममी-पापा से नजरें चुराकर, वह धीमे स्वर में बुदबुदाया, "ममी, आज दीवाली है। आप लोग इला को दीवाली के उपहार देकर आ रहे हैं। हम दोनों भी आपको दीवाली की भेंट देंगे।"

"क्या ऽऽ ?" माया ने घोर आश्चर्य से पूछा।

"इस बार नहीं, अगली बार," अजीत ने शरारत से कहा।

"पहेलियाँ मत बुझा। साफ-साफ बता, क्या बात है ?" माया बेहद उत्सुक हो गयी।

"अगली दीवाली पर अपने नाती के साथ खेलना !"

"क्या ऽऽ ? क्या यह सच है, बहू ?" जया के गाल सिंदूरी हो गये।

सजाकर, स्वीकृति में उसने सिर झुका लिया।

"बहू, तूने मुझे क्यों नहीं बताया?" मामा ने जया को प्यार से झिड़की दी। "अब इस सार्वजनिक स्थान पर क्यों लड़ती हो? घर चलो। यह दीवाली मनाओ। अगली दीवाली की उत्कंठापूर्वक प्रतीक्षा करो," नरेंद्रनाथ ने वार्ता का उपसंहार कर दिया। वे चारों खुशी-खुशी टैक्सी में बैठ गये। □

चालें

पूरे बारह दिन के बाद मुरारीलाल दफ्तर आया था। वायरल बुखार ने कमर तोड़कर रख दी थी। पूरे एक हफ्ते तक सुबह ढाई-तीन और शाम को चार-साढ़े चार। उस पर बुखार उतारने वाली गोलियों का असर।

जैसे नीबू को निचोड़ डाला हो, बिलकुल ऐसा ही उसे महसूस होता रहा। खड़ा होता तो लगता जैसे हिल रहा है। एक स्थान पर कुछ देर बैठा रहता या खड़ा होता तो हाथ-पाँव में चीटियाँ चलने लगतीं। चार-पाँच दिन आराम करने के बाद उसे यह विचार आतंकित करने लगा कि दफ्तर में फाइलों के अंबार लग गए होंगे।

जब वह दफ्तर पहुँचा तो उसका अनुमान शत-प्रतिशत सही निकला। मेज-कुरसियों और साथ लगे रैक्स में फाइलें ही फाइलें। कागज का जैसे सैलाब उमड़ आया था। ठीक ही तो था। यदि कोई सरकारी कर्मचारी पैंतालीस दिन से अधिक का अवकाश लेता है तो उसके स्थान पर स्थानापन्न व्यक्ति का प्रबंध कर दिया जाता है अन्यथा छुट्टी से लौटकर कर्मचारी को अपना काम खुद ही करना पड़ता है।

फाइलों और कागजों का ढेर देखकर उसका दम घुटने लगा। उसे अनुभाग के वरिष्ठतम सहायक मंगल पर थोड़ा क्रोध भी आया। क्या उसका यह फर्ज नहीं था कि वह उसकी अनुपस्थिति में डाक तथा ऊपर से आने वाले कागजों को इधर-उधर कर दे। पर मंगल भी तो दिखाई नहीं दे रहा था।

दस व्यक्तियों के अनुभाग में केवल पचास प्रतिशत उपस्थिति थी। लिपिक सुमित्रा ने जरूर उसे मुस्करा कर देखा था और बस इतना ही कहा, "आप तो बहुत कमजोर हो गए हैं।"

वह कागजों को देखने लगा। सर्वप्रथम वह तत्काल निबटने वाले कागजों को छाटने लगा। फाइलों को देखते हुए उसने सुमित्रा से मंगल के बारे में पूछा तो पता चला कि वह भी वायरल ज्वर से ग्रस्त है और पिछले पाँच दिनों से अनुपस्थित है।

मुरारीलाल आश्वस्त हो फाइलें देखने लगा। उसे कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण केस भी नजर आए, जिन्हें उसकी अनुपस्थिति में अवर सचिव को निबटा देना चाहिए था। उन्हें पता था कि वह बीमार है। उसे अकर्मण्य और अकुशल सिद्ध करने के लिए उन्हें इससे अधिक उपयुक्त अवसर और कब मिलता?

अभी मुरारीलाल फाइलों के सागर में डूब-उतरा रहा था कि कमरे में एक तेज सुगंधि की लहर आई। किसी विदेशी इत्र की खुशबू थी यह। मुरारीलाल ने नजरें उठाईं और कुछ क्षण के लिए वह भौचक्का सा रह गया।

मेज के उस पार एक आधुनिका रूपसी खड़ी थी। लंबी, छरहरा शरीर, कटे बाल, हलका मेकअप, कीमती रेशमी साड़ी, गोरा रंग, तीखे नाक-नक्श। इतनी सुन्दर महिला को तो बंबई की फिल्मी दुनिया में होना चाहिए, वह यहाँ इस नीरस और उबाऊ सरकारी कार्यालय में क्या कर रही है? फिर इस कमनीय, कोमलांगी के मुख पर स्निग्धता के स्थान पर यह रूखापन और शुष्कता क्यों है?

अभी मुरारीलाल अपने अंतर्मन की ऊहापोह से मुक्त भी नहीं हो पाया था कि उधर से गोलीबारी शुरू हो गई। बेहद शुष्क और कड़वे स्वर में उससे पूछा गया, "क्या तुम्हीं मुरारीलाल हो?"

"जी," वह हतप्रभ सा बोला।

"यह सेक्शन है या कबाड़ी बाजार? सब तरफ फाइलें ही फाइलें। वे भी बेतरतीब," उस महिला ने उसे लगभग डाँटते हुए कहा।

मुरारीलाल उखड़ गया। बीमारी ने उसे थोड़ा चिड़चिड़ा कर दिया

था। वह बोला, "आपको क्या तकलीफ है, देवीजी ?"

"इतनी ढेर सारी फाइलें जमा कर ली गई हैं। सचिव बहुत नाराज हैं। दस दिन हो गए मंत्रीजी से नोट आए। अभी तक उस पर कार्रवाई नहीं हुई है," तूफानी आक्रमण शुरू कर उस महिला ने। मुरारीलाल की मेज पर जमा फाइलों को उलटना-पुलटना शुरू कर दिया।

मुरारीलाल हतबुद्धि सा उस अपरिचिता के विचित्र व्यवहार को सज्ञा-शून्य सा बस देखता रह गया।

"ओह लार्ड ! यह रही वह मोस्ट इमीजिएट फाइल। इसे सूखी और बासी डबलरोटी की तरह घूरे पर डाल दिया गया है। लापरवाही की भी हद है। इसके लिए तो आप सबको चार्जशीट दिया जाना चाहिए," वह महिला उबल पड़ी।

मुरारीलाल का धैर्य जवाब दे गया। वह वितृष्णा भरे स्वर में बोला, "आखिर आपकी तारीफ क्या है, देवीजी, जो आप इस तरह मुझ पर अफसरी छाँट रही है ?"

"मैं तुम्हारी ही नहीं, तुम्हारे बॉस की भी बॉस हूं," वह तेज स्वर में बोली।

"नई उपसचिव !" मुरारी ने दोहराया और वह यत्रवत खड़ा हो गया। विनम्रतापूर्वक अभिवादन करके वह बोला, "देवीजी, मैं आज ही लंबी छुट्टी के बाद लौटा हूं। इसीलिए मुझे पता नहीं था कि आप···खैर, मैं क्षमा चाहता हूं।"

"क्षमा-वमा की जरूरत नहीं। और हां, यह देशी भाषा में 'देवीजी··· देवीजी' मुझे पसंद नहीं।"

"सॉरी मैडम।"

"इतनी इंपोर्टेंट फाइल डिले क्यों हुई ?"

"मैडम, मैं आज ही बारह दिन की छुट्टी के बाद लौटा हूं ?"

"फाइल तुम्हारी मेज से बरामद हुई है।"

'यह फाइल है अथवा स्मगलिंग का सामान जो उसकी मेज से बरामद हुआ है ?' वह उखड़ा, पर अपने को सयत करके वह शांत स्वर में बोला, "मैडम, मैं छुट्टी पर था तो अवर सचिव का यह फर्ज बनता था कि···"

"हिंदी के बड़े हिमायती मालूम होते हो। अपनी गलती को दूसरों के सिर मढ़ते हुए तुम्हें···" कहते-कहते वह रुक गई।

"मेरी कोई गलती नहीं है," उसने भी दृढ़ स्वर में कहा और नई उपसचिव को अपमानित करने की खातिर अपनी सीट पर बैठ गया।

"तुम समझते हो, मैं इस चोरी और सीनाजोरी को चुपचाप टालरेट कर लूंगी?"

मुरारीलाल चुप हो गया।

"मुझे ठीक ही कहा गया था कि सेक्रेटेरिएट सर्विस के अफसर नाकारा ही नहीं, अक्खड़ भी होते हैं।"

"मैडम," मुरारीलाल तमतमा कर खड़ा हो गया और आवेश में भर कर बोला, "देखिए, देवीजी, आपको जो कुछ कहना है, मुझसे कहिए। पर पूरी सर्विस को गाली देने की जरूरत नहीं है। इससे बात बिगड़ सकती है।"

"तुम मुझे धमकाते हो? मैं अभी सेक्रेटरी से तुम्हारी शिकायत करती हूँ। देखती हूँ तुम कैसे···" और अपनी बात को अधर ही में छोड़ वह तेजी से कमरे से बाहर निकल गई।

मुरारीलाल अपनी सीट पर बैठ गया। वह बुरी तरह उखड़ा हुआ था। इतने दिनों बाद वह दफ्तर लौटा है। आते ही नवनियुक्त उपसचिव से टक्कर। कैसी अप्रियता जन्मी है। चूंकि वह सेक्रेटेरिएट सर्विस को गाली दे रही थी, अवश्य ही खुद आई॰ ए॰ एस॰ की होगी। तभी तो इतनी तेज-तर्रार है।

स्वाभिमान को चोट लगी थी, इसलिए मुरारीलाल तिलमिलाया था। वैसे अफसरों से झगड़ा उसे कतई पसंद नहीं है। वह एक शांतिप्रिय और कुशल अफसर के रूप में जाना जाता है। ठीक है, यदि वह महिला झगड़ालू है तो वह किसी अन्य अनुभाग में अपना तबादला करा लेगा। पर किसी भी स्थिति में वह अनुचित अपमान सहन नहीं करेगा।

मुरारीलाल इतना उद्विग्न हो गया कि उसका मन फाइलें देखने में रम नहीं पा रहा था। तभी उसने देखा कि मदन अंदर कमरे में आ रहा है। जैसे ही वह उसकी मेज के पास आया, मुरारीलाल ने उसे गौर से देखा।

भार से मेरी चढ़ाई पर थककर और [illegible] में [illegible] इस बात के मारी थे कि [illegible] का [illegible] नहीं हुआ। उस [illegible] से उन्होंने वह छुट्टी भी [illegible] और इस काम से भी बच गया।

तब से मुरारीलाल अपने एक परिचित मित्र के साथ था रहा। वहीं से उसे पता चला कि करुणाशंकर की जगह इस नई [illegible] की नियुक्ति हुई है। करुणाशंकर उसके पुराने परिचित थे। राजभाषा विभाग के अधिकारी पांच वर्ष की अवधि के लिए केंद्र में नियुक्त हुए थे। अपने वेतन के अतिरिक्त लोग उन्हें [illegible] 'शिमला के' [illegible] और मौज-मस्ती [illegible]। हर फाइल पर 'प्लीज स्पीक' लिखते और जब वह बात करने जाता तो उन्हें फाइलों वाला मामला लगभग अगम्य हो जाता। अक्सर वह अपने 'मित्र विभाग' अर्थात् [illegible] डिपार्टमेंट की [illegible] पर होते या फिर उन की तरह के अन्य अधिकारी, जो केंद्रीय सचिवालय में आए हुए थे, उनके कमरे में गप्पें करते मिलते।

सप्ताह में एक-दो बार जब कभी वह उन्हें अपनी फाइलें भेजता और 'प्लीज स्पीक' फाइलों के ढेर उनके पास ले जाता तो वह अपने विशुद्ध बिहारी लहजे में यही कहते, "यार, इतनी फाइलें भेज कर क्यों दुखी करते रहते हो?" वह विचार-विमर्श के लिए फाइलों को लाता तो वह कहते, "भई, इतने दिन बाद इनको लेकर आए हो, अब तो कुछ भी याद नहीं कि इन पर क्या विचार-विमर्श करना है।"

यह समझा जाता था कि 'प्लीज स्पीक' लिखना समस्या के समाधान के लिए नहीं, फाइलों को अपनी मेज से खिसकाने की खातिर लिखा जाता है।

बिना फाइलों का फीता खोले, करुणाशंकर फाइलों पर हस्ताक्षर कर चले जाते। वह साथ ही साथ बुदबुदाते रहते थे, "फाइलें भेजा मत करो, साथ लाया करो। बस यह बता दिया करो कि हमने अंगूठा कहां लगाना है।"

"पर साहब, आप इन्हें देख तो लिया कीजिए।"

"इन्हें देखने के लिए तुम ही काफी हो, मुरारीलाल।"

"अगर हम कुछ गड़बड़ी कर दें तो…"

"हमें तुम पर अंधविश्वास है, मुरारीलाल। तुम जैसा व्यक्ति कभी भी विश्वासघात नहीं कर सकता। और हाँ, यदि किसी फाइल पर कोई गलती हो भी जाए तो क्या कोई फाँसी दे देगा या आसमान फट पड़ेगा? अरे, जिन दस्तखतों में गलती होगी, वही दस्तखत उसे सुधार कर ठीक भी कर देंगे।"

ऐसे करुणाशंकर की केंद्रीय सचिवालय में नियुक्ति की अवधि समाप्त हो गई और वह अपने विभाग में लौट गए थे। उपसचिव का पद रिक्त था। विभिन्न सेवाओं के अधिकारी इस पद पर आने के लिए जोड़-तोड़ कर रहे थे। आई० ए० एस० वालों का जोर ज्यादा था।

डाकतार विभाग वालों ने तो प्रधान मंत्री तक को एक समवेत प्रत्या-वेदन भेज दिया था कि चूंकि यह पद डाकतार विभाग के अधिकारी ने खाली किया है, इसलिए इस पर हमारे विभाग का अधिकारी ही नियुक्त होना चाहिए।

इस पर आई० ए० एस० के प्रवक्ता ने बिगड़ कर कहा था, "ये पोस्टकार्डों-लिफाफों पर ठप्पा लगाने वाले अपने को समझते क्या हैं? एक पद पर उनका कोई अधिकारी काम कर ले तो क्या वह पद उनकी सर्विस में सम्मिलित हो जाता है?"

उधर सचिवालय सेवा में उपसचिव बनने वाले अधिकारी भी इस पद पर आँखें लगाए बैठे थे। जब वह बीमार पड़ा तो इस पद पर आसीन होने के लिए होड़ मची हुई थी और अब जब वह बीमारी से लौटा तो आई० ए० एस० के लोगों की विजय-पताका फहरा रही थी।

मुरारीलाल अपने कमरे में लौट आया। उसके मन में तो बस यही विचार था—कहाँ करुणाशंकर और कहाँ यह साक्षात चामुंडा! फिर उसने अपने मन को यह कह कर सांत्वना दी कि 'कोऊ नृप होय, हमें का हानी।'

पर अगले दस मिनट में ही मुरारीलाल को तुलसीदास के इस कथन की असत्यता और ओवरसेल्फ का एहसास हो गया। इंटरकॉम पर नई अफसर की पी० ए० ने उसे सूचना दी कि मैडम उसे याद कर रही हैं।

कितनी गलत बात है। नई अफसर ने सुबह झगड़ा किया। अब के

बाद भी उसे चैन नही। इन औरतों के साथ यही दिक्कत है। बात हुई, पर उसे भूलेंगी नही। बात का बतगड़ बना, बेकार का तूफान खड़ा कर देंगी।

यही सोचता हुआ मुरारीलाल नई उपसचिव के कमरे में पहुंचा तो पलाश को वह अवाक रह गया। सूरज पश्चिम से उदय हो रहा था। नीता उसे देखकर मुसकरा रही थी और स्वर में शहद घोल कुरसी की तरफ इशारा करके कह रही थी, "आइए, मुरारीलालजी, तशरीफ रखिए।"

वह बैठ गया। क्या यह वही कमरा है, जिसमें करुणाशंकर बैठते थे? मुरारीलाल ने पूरे कमरे का शीघ्रता से मुआयना किया। लगता तो नही कि यह वही कमरा है। हालांकि है वही। गलीचा नया था। फरनीचर भी नया और शानदार था। उपसचिव की सीट का रुख भी बदल गया था। सचमुच कमरे का कायापलट हो गया था।

एक विशेष वस्तु ने मुरारीलाल को चौंकाया। फाइलें रखने के स्टील रैक के पीछे दीवाल से सटी एक मेज रखी थी, जिस पर एक देवी की फोटो रखी थी और फोटो के आगे रखी थी एक छोटी सी चांदी की तश्तरी, जिसमे था पूजा और भोग का सामान। सुबह की अधजली धूपबत्ती भी वहां थी।

"मुझे सुबह की घटना के लिए खेद है, मुरारीलालजी।"

श्रीमती नीता की यह बात सुन कर वह चौंका। फिर उसने भी शराफत का उत्तर शराफत से दे दिया, "नही, मैडम, यह सब तो चलता रहता है।"

"तुमने बुरा तो नही माना?"

"नही, मैडम। आज्ञा कीजिए, कैसे याद किया?"

"कोई खास बात तो नही है। यह फाइल देखिए। आप ही ने तो भेजी है। आपने पांच पन्ने का अच्छा नोट लिखा है। इसके लिए कई दिन से ज्वाइंट सेक्रेटरी हमे रिमाइंड करा रहे हैं।"

"तो आप इसे उन्हे भेज क्यो नही देती?"

"मुरारीलालजी, हम इस नीति सबंधी फाइल पर नोट लिखना चाहते

हैं, पर समझ में नहीं आता, क्या लिखें। आपने तो हमारे लिखने के लिए कुछ छोड़ा ही नहीं।"

"इसमें बहुत गुंजाइश है, मैडम। लाइए, मुझे दीजिए यह फाइल।"

नीता ने फाइल मुरारीलाल की तरफ बढ़ाते हुए कहा, "नहीं लिखेंगे तो ऊपर वाले हमें नाकारा समझेंगे।"

तभी फोन का बजर बजा। नीता ने रिसीवर उठाया। घर से फोन था। आया बोल रही थी, "मैडम, बेबी दूध नहीं पी रहा।"

"तो मैं क्या करूँ? कोशिश करो।"

"मैडम, वह रोए चले जा रहा है," आया के स्वर में चिन्ता थी।

"उसे गोद में लेकर घुमाओ।"

"पिछले आधे घंटे से यही कर रही हूँ, मैडम।"

"मैं तुमसे थोड़ी देर बाद बात करूंगी। अभी मेरे कमरे में एक जरूरी मीटिंग चल रही है," कह कर नीता ने फोन बंद कर दिया। फिर वह मुरारीलाल को संबोधित करके बोली, "सॉरी, तो हम क्या बात कर रहे थे?"

"इस फाइल के बारे में बातें हो रही थीं, मैडम," मुरारीलाल ने उस महत्त्वपूर्ण नीति संबंधी फाइल को दिखाते हुए कहा।

"हाँ, मुरारीलालजी, हम सेक्रेटेरिएट में एकदम नए हैं। आपकी इन फाइलों के जंगल में अक्सर भटक जाते हैं। खाक समझ में नहीं आता, क्या करें?"

"हमसे सलाह कर लिया कीजिएगा।"

"ठीक है। आगे से हम 'प्लीज स्पीक' लिखकर इन फाइलों को वापस कर दिया करेंगे," कहते हुए नीता ने तीन फाइलें और उसके आगे खिसका दीं और बोली, "इन पर भी हमारी तरफ से कुछ लिख दीजिएगा। देखिए, हमें यहाँ स्थापित करने का पूरा श्रेय आपको ही मिलेगा।"

मुरारीलाल ने फाइलें भी सँभाल लीं। तब तक नीता का चपरासी दो प्याले काफी ले आया। अपने हाथों से एक काफी बना कर उनकी तरफ बढ़ाते हुए वह बोली, "यह लीजिए।"

"इस तकलीफ की क्या जरूरत थी, मैडम?"

"तकलीफ क्या, यह तो खुशी का अवसर है।"

कॉफी के बीच नीता उससे व्यक्तिगत प्रश्न पूछती रही। अपने बारे मे बहुत कुछ बताती रही। लंच से पहले वाली नीता और लंच के बाद की नीता मे कितना जमीन-आसमान का अंतर था। यही सोचता हुआ कॉफी खत्म होने के बाद, उन 'अतिरिक्त फाइलों' को बगल में दबाए मुरारीलाल अपने कमरे मे वापस आ गया।

जगदीशकुमार वहां बैठा उसका इंतजार कर रहा था। वह भी नीता के नीचे एक अन्य अनुभाग अधिकारी था। मुरारीलाल को फाइलें लाते देख जगदीशकुमार मुसकराया और बोला, "कहो, पार्टनर, मैडम के हाथ की बनाई कॉफी पीकर आ रहे हो न ?"

"हां, यार। पर तुझे कैसे पता ?"

"लंच से पहले झाड़ पड़ी थी। अब लंच के बाद तुम्हें पुचकारा गया होगा।"

"हां, यार। पर तुझे यह सब क्या यहां के लोगों ने बताया है ?"

"नहीं यार, जो तुझ पर बीती, एकदम वही मुझ पर बीती है।"

"क्या…?" मुरारीलाल हतप्रभ-सा अपनी सीट पर बैठ गया।

उसके अंतर्मन में प्रकाश सा फैल गया। यह झाड़, कॉफी और पुचकारना, मानवीय संबंधों के हिस्से नहीं, प्रशासनिक व्यवस्था की शतरंजी चालें हैं। □

विश्वासघात

घोर सर्दी की सूनी रात में फिर वही रहस्यमय खड़खड़ाहट और किसी वाहन का फैक्ट्री के आस-पास आकर रुकना, दबी-घुटी-सी आवाजें, चोरी-छिपे कुछ कार्रवाई।

काफी दिनों से ऐसा हो रहा है। रात गहराते ही कुछ रहस्यमय-सी गतिविधियाँ प्रारंभ हो जाती हैं।

शांति की नींद में विघ्न पड़ गया। वह चारपाई पर पड़ी रही, पर उस के अंतर में उथल-पुथल-सी हो रही थी। उसे लग रहा था जैसे रात की इस नीरवता और अंधकार के वातावरण में कहीं कुछ अघटित घट रहा है।

प्रतिदिन रात्रि को होने वाली इस रहस्यमय गतिविधि के प्रति उसके मन में अतिरिक्त उत्सुकता जाग्रत हो चुकी थी।

कुछ क्षण पहले दूर यूनिवर्सिटी के घड़ियाल ने दो घंटे बजाए थे। बाहर एकदम मौत का सा सर्पीला सन्नाटा छाया हुआ था। दिसंबर का अंतिम सप्ताह चल रहा था। बेहद ठंड पड़ रही थी। इतनी ठंडी आधी रात में कुत्ते तक दुबक कर कहीं बैठ गए थे।

उसे कुछ अस्फुट से स्वर सुनाई दिए। रात्रि के सूने वातावरण में दूर होने वाले स्वर भी साफ सुनाई दे जाते हैं। लगता है जैसे समीप ही कुछ हो रहा है।

शांति उठ खड़ी हुई। उसने पिछले महीने सेठजी द्वारा दीवाली पर भेंटस्वरूप दिया गया शाल खूंटी से उतार कर ओढ़ लिया। सहमी-सहमी दबे-

चारियों को एक-एक ऊनी जरसी तथा पाँच-पाँच रुपए सेठजी ने दीवाली पर पुरस्कारस्वरूप दिए थे।

शांति बाहर बरामदे में आई। पंद्रह कमरों की पूरी पंक्ति सोई पड़ी थी। किसी भी कमरे की बत्ती नहीं जल रही थी।

सामने फैक्ट्री का मुख्य द्वार था। लोहे के बड़े से फाटक के बाहर एक टैंपो खड़ा था। फाटक के दोनों ओर खंभों पर बल्ब जल रहे थे। प्रकाश खूब छिटका हुआ था। टैंपो की बगल में एक 'आकृति' खड़ी बीड़ी पी रही थी। लोहे का फाटक थोड़ा-सा खुला हुआ था।

शांति धीमी चाल से बरामदे के पूर्वी छोर पर पहुँच गई। इसके कारण वह फैक्ट्री के मुख्य द्वार के और अधिक समीप आ गई थी।

वह एक बेहद सर्द रात थी। उसके मुख से निकलने वाली भाप जम रही थी। घना कोहरा लैंप पोस्टों के नीचे तक झुक आया था।

शांति ने टैंपो के पास खड़े व्यक्ति की आकृति को पहचानने की कोशिश की। वह हरे रंग का ओवरकोट पहने था। सिर पर मंकी कैप लगाए हुए था। उसकी बगल में बड़ा-सा डंडा फँसा हुआ था। वह एक ऐसे कोण से खड़ा था, जिससे उसका पूरा मुख साफ दिखाई नहीं दे रहा था। शांति उसे पूरी तरह पहचान नहीं पाई, पर उसने अनुमान लगा लिया।

वह निश्चित रूप से हरीराम था—फैक्ट्री में रात का चौकीदार।

हरिया···इस नाम का उच्चारण करते ही शांति के अंतर में ज्वार-सा उठा। भावनाओं की उत्ताल तरंगें तट पर मचल उठीं। फेनिल बुदबुदे उसके सर्वस्व को भिगो गए।

कितना प्यार करता है हरिया···उसके लिए सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहता है। दीवाली के दिन कितनी कीमती साड़ी खरीद कर लाया था।

उसने कहा था, "हरिया, हम लोग इतनी कीमती साड़ी पहनें तो अच्छा नहीं लगेगा।"

"रानी, मैं कमाता किसलिए हूँ? दुनिया में मेरा तेरे सिवा और कौन है?"

"वह तो ठीक है, पर तू इतने रुपए कहाँ से पा जाता है ? तुझे डेढ़ सौ रुपए महीने मिलते हैं। पर खोक-मौज में, मुझे उपहार देने में तो तू उसका दो गुना खर्च कर बैठा है।"

"सब ऊपर वाले की कृपा है, रानी," हरिया ने मुसकरा कर अपनी उँगली ऊपर आकाश की ओर उठा दी थी।

रात की नीरवता फैक्ट्री के लोहे के मुख्य द्वार के थोड़े से और खुलने की खड़खड़ाहट से छटपटा गई। शांति चौकन्नी होकर उसी ओर देखने लगी।

फैक्ट्री का मुख्य द्वार खुला। दो व्यक्ति सिर पर दो बंडल लादे बाहर आए। उन्होंने उन बंडलों को टैंपो में रख दिया। फिर वे दोनों टैंपो में बैठ गए। अगले कुछ ही क्षणों में टैंपो वहाँ से रवाना हो गया।

हरिया सड़क पर जाते हुए टैंपो को अपलक देखता खड़ा रहा, फिर फैक्ट्री में अंदर घुसकर लोहे का मुख्य द्वार अंदर से बंद कर लिया।

पल-भर को शांति कसमसाई थी। जब हरिया टैंपो को जाता देख रहा था, उसका जी चाहा था कि वह भागकर उसके पास जाए और उससे पूछे कि यह सब क्या चक्कर है। पर वह न साहस जुटा पाई और न निर्णय ही कर पाई।

मरी हुई चाल से, निर्जीव-सी शांति अपने कमरे की ओर बढ़ गई। बाहर सर्दी थी, किंतु उसके अंतर में आक्रोश के शोले धधक रहे थे।

टैंपो में बैठ कर जाने वाले दोनों व्यक्तियों को भी उसने पहचान लिया था। उनमें से एक था—गुलाबसिंह, फैक्ट्री का ड्राइवर तथा दूसरा था—रामदयाल, सहायक स्टोरकीपर।

शांति अपने कमरे में पहुँची। उसने दरवाजा अंदर से बंद किया, शाल उतार कर खूंटी पर टाँगा और निर्जीव, आहत-सी चारपाई पर पड़ गई।

"शांति, इस होली से पहले हम तुम शादी कर लेंगे। सेठजी ने वादा किया है कि ब्याह के बाद वह मेरी तनख्वाह दो सौ कर देंगे। दो सौ मेरे और तीन सौ तेरे। भगवान कसम, इसमें तो बस मौज-ही-मौज हो जाएगी। अपने बच्चों को खूब अच्छा खिलाएँगे, पहनाएँगे, पढ़ाएँगे। फिर जब वे बड़े हो जाएँगे तो सेठजी के यहाँ लिखा-पढ़ी के काम पर लगवा देंगे,"

दीवाली के दिन हरिया उमंग में भर कर बोला था।

उसने हरिया की ये रंगीन, बीस वर्षीय योजना वाली बातें सुनी तो खुशी के मारे झूम उठी। उसका मन भारी झील जैसा उमगने को हो आया था। उसे विश्वास हो गया था कि सेठजी की कृपा से उन दोनों के जीवन मे स्थायित्व, सुख, सुरक्षा तथा जिंदगी की संपूर्ण सुविधाओ का सृजन हो गया है।

पर अब? शांति को लगा जैसे उसके अंतर में उठने वाला ज्वार-भाटा बन गया है, झील सूख गई है और खुशियां शूल बन गई हैं।

उसके समक्ष अजगर जैसा भयंकर विकल्प आ खड़ा हुआ था—सेठजी अथवा हरिया?

शांति मौन, व्यथित, छटपटाती-सी चारपाई पर पड़ी थी। उसकी आंखो की नींद उचट गई थी। अधखुली आंखो से वह नमकहलाली की जगह विश्वासघात की जीती-जागती तसवीरों को देख रही थी।

अनजाने ही उसका मन पुरानी स्मृतियो की गलियों मे भटक गया।

तीन वर्ष पहले की बात है। दीवाली का हाथी जैसा त्योहार, और विपत्ति का कैसा भयकर पहाड़ उस पर टूट पड़ा था। तीन मास पूर्व उसका गंगू से विवाह हुआ था। गंगू साइकिलों की मरम्मत करता था। दिल्ली गेट के पास पटरी पर वह बैठता था। हर रोज सात-आठ रुपए कमा लाता था। इतने मे घर का खर्च मजे से चल जाता, यदि उसे शराब पीने की नामुराद लत न होती। पर आधा पैसा तो वह देसी शराब मे उड़ा देता था।

इसी शराब के कारण ही तो उस पर विपत्ति का पहाड़ टूटा था। इसी के कारण तो तीन मास के अल्प वैवाहिक जीवन के बाद ही उसका सुहाग-सिंदूर नष्ट हो गया।

दीवाली के दिन गंगू ने अपने मित्रों और साथियों के साथ खूब शराब पी। बस दो घंटे मे ही वे सब खत्म हो गए। अस्पताल के बरामदे इन जहरीली शराब पीने वालो की लाशों से पट गए।

यह विषैली शराब उसकी मांग का सिंदूर पोंछ कर चली गई। छोड़

गई एक ऐसी दीन और असहाय जिंदगी जिसकी कल्पना मात्र से शांति के तन का रेशा-रेशा छटपटा जाता है।

शांति की आँखों से आँसू बह निकले। उन दिनों की कटु स्मृतियाँ आज तीन वर्ष बाद भी उसके अंतर को पिघला देती हैं। पर शांति जानती है, ये आँसू सिर्फ पीड़ा से ही नहीं जनमे हैं। इनमें प्रसन्नता तथा कृतज्ञता से जनमे आँसू भी मिले हैं।

गगू की दुकान को हरिया ने सँभाल लिया था। जैसे-तैसे दो जून की रोटी का जुगाड़ हो ही जाता था। शांति को एक बात का संतोष था कि बच्चों की दलदल में वह नहीं फँसी थी। यदि बच्चे होते तो उसकी जिंदगी में सौ गुनी समस्याएँ उत्पन्न हो जातीं।

पता नहीं धंधे में मंदी थी या हरिया बेईमान हो गया था, शांति को दो जून की रोटी भी मुश्किल से मिलने लगी।

तभी एक दिन रामसिंह की कृपा से उसकी जिंदगी का कायाकल्प हो गया।

उस दिन रामसिंह अपनी सफेद ड्रेस में और नीला हैट लगाए अस्सी हजार की चमचमाती लंबी कार में आया था। झुग्गी-झोंपड़ियों में तो जैसे तहलका मच गया। सारे गंदे बच्चे उस कार को घेर कर खड़े हो गए थे।

वह रामसिंह की बगल में कार की अगली सीट पर बैठ गई थी। जब कार उड़ने लगी तो उसे बड़ा अजीब-सा लगा था। वह ऐसा महसूस कर रही थी जैसे उसके पंख उग आए हों और वह नीले आकाश में हजारों फुट ऊँचाई पर उड़ रही हो।

कार एक विशाल कोठी के सामने रुक गई। उसकी भव्यता तथा फूलों की क्यारियों को देखकर वह ठगी, सकपकाई-सी खड़ी रह गई थी।

रामसिंह उसे लेकर कोठी के अंदर गया। एक बेहद सुसज्जित, महल जैसे कमरे में खड़ी थी। गगू के साथ उसने एक-दो फिल्में भी देखी थीं। उन्हीं में देखे गए कमरों जैसा वह कमरा था।

तभी उसके सामने सादा किंतु साफ वस्त्र पहने एक प्रौढ़ पुरुष आया। मुख पर असीम शांति, आँखों में दया तथा सहानुभूति का प्रकाश।

"सेठजी को प्रणाम करो, शांति," रामसिंह बोला।

उसने हाथ जोडकर सेठजी को प्रणाम कर दिया।

"शांति मेरे ही गाँव की है, मालिक, एकदम मेरी बहन जैसी। मैंने आपको बताया था कि···" रामसिंह हाथ जोड़े विनय-भरे स्वर में कह रहा था। वह सेठजी का ड्राइवर था।

सेठजी गंभीर तथा खोजी दृष्टि से उसे सिर से पाँव तक देख रहे थे। फिर उन्होंने गंभीर स्वर में कहा, "कुछ पढ़ी-लिखी है यह ?"

"नहीं, मालिक।"

"कोई कामकाज जानती है ?"

रामसिंह ने गरदन हिला दी।

"सीना-पिरोना भी नहीं जानती ?"

शांति रोने को हो आई। उसे अपनी क्षुद्रता का एहसास हुआ। रामसिंह एकदम निराश-सा लग रहा था।

"कोई बात नहीं। सिखाओ तो पशु भी चतुर हो जाते हैं, फिर इनसान की तो बात ही अलग है।"

रामसिंह के मुख पर उभरे बुझे दीये में जैसे तेल पड़ गया। उसका मुख चमक गया।

"इसे फरीदाबाद ले जाओ। तीन महीने की ट्रेनिंग के बाद फैक्ट्री के कटिंग विभाग में इसे नौकरी मिल जाएगी। ट्रेनिंग के दौरान सौ रुपए। उसके बाद दो सौ रुपए···उसके बाद···" कहते-कहते सेठजी ठिठक गए। उसके बाद जितना काम, उतने दाम। पैसे मैं नहीं देता, तुम्हारा काम देता है। जितनी ईमानदारी और मेहनत से काम करोगी, उतनी ही तुम्हारी तनख्वाह बढ़ती जाएगी।"

उसकी नई जिंदगी प्रारंभ हो गई। फरीदाबाद में सेठजी की विशाल फैक्ट्री में उसे नौकरी मिल गई। विदेशों को सिले-सिलाए कपड़े भेजे जाते हैं। सैकड़ों स्त्री-पुरुष इस फैक्ट्री में काम करते हैं। सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ हैं। उस जैसी निराश्रित महिलाओं के लिए एक कमरे वाले कर्मचारी क्वार्टर हैं।

जिंदगी में कैसा तो स्थायित्व और सुरक्षा का भाव आ गया। दिन-भर

वह फैक्ट्री में ईमानदारी से काम करती और रात को अशिक्षित प्रौढ़ों के लिए लगने वाली कक्षा में पढ़ती।

तभी एक दिन हरिया आ गया—भूखा, प्यासा, निराश्रित और असहाय।

कमेटी वाले उसकी दुकान उठा ले गए थे। साइकिल मरम्मत में काम आने वाले सारे औजार जा चुके थे। वह बेकार हो गया था। उसकी भूखों मरने की नौबत आ गई थी।

उसके ठाट-बाट, भौतिक सुख-सुविधा देखकर हरिया दंग रह गया था। उसने हाथ जोड़ कर शांति से प्रार्थना की थी, "शांति, मैं बड़ी विपत्ति में हूँ। मेरी मदद नहीं करोगी?"

वह विचारमग्न हो गई थी।

"तुम्हें याद है, एक बार तुम पर विपत्ति पड़ी थी और मैंने तुम्हारी मदद की थी? क्या आज तुम...?"

हरिया ठीक कह रहा था। विपत्ति के उन क्षणों में हरिया का नमक खाया था...। अब अवसर आया था उस नमक की कीमत चुकाने का।

उसने संपूर्ण साहस जुटाकर सेठजी से प्रार्थना की थी। उसको आशा के अनुरूप सफलता मिल गई। सेठजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करके हरिया को चौकीदार के पद पर रख लिया था।

बाहर सुबह का भुकभुका फैल रहा था। पक्षियों की चहचहाट सुनकर उसने अपनी उनींदी आँखें खोलीं। यह क्या? वह कसमसा कर उठ बैठी। आज उसे उठने में काफी देर हो गई थी। ठीक साढ़े नौ बजे उसे अपनी सीट पर होना चाहिए।

संज्ञाशून्य-सी शांति दैनिक कार्यक्रम में जुटी थी। उसकी अंतर की आँखें एक विचित्र दृश्य देख रही थी: वह बीच में खड़ी है। उसके सामने एक रेखा खिंची है, जिसके एक ओर सेठजी तथा दूसरी ओर हरिया खड़ा है।

उसे दोनों में से एक को चुनना है। हरिया के हाथ में वरमाला है और सेठ जी के हाथ में नमक की एक चुटकी। पल-भर वह ऊहापोह में पड़ी

रहती है और फिर शान से गरदन उठाए, सीमा-रेखा को लांघ, सेठजी की ओर चली जाती है।

शांति सेठजी के वातानुकूलित कमरे में घुस गई। उसने गंभीर भाव-मुद्रा में उन्हें अपनी गुदगुदी, घूमने वाली कुरसी पर बैठे देखा।

"बैठो, शांति," सेठजी के स्वर में आत्मीयता थी।

शांति ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वह बैठने का साहस नहीं जुटा पा रही थी।

"कहो, क्या बात है? तुम बैठ क्यों नहीं जाती?"

"मालिक, हम आपका नमक खाते हैं…," कहते-कहते वह ठिठक गई।

सेठजी के मुख पर प्रसन्नता और आश्चर्य के मिलेजुले भाव उभर आए।

धीरे-धीरे शांति ने रात की घटना का विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया।

सेठजी ने सुना और गंभीर हो गए। उन्होंने घंटी बजाई। चपरासी अंदर आया। सेठजी ने हरीराम, गुलाबसिंह और रामदयाल को बुलाने का आदेश दिया।

चपरासी बाहर चला आया तो सेठजी ने पूछा, "शांति, तुम्हें पूरा विश्वास है कि जो कुछ तुमने देखा, वह सच है?"

"मालिक, मैं झूठ क्यों बोलूंगी? मैंने आपका नमक खाया है। मैं आपका नुकसान बरदाश्त नहीं कर सकती।"

"शांति, असत्य आक्षेप तथा आरोप भयंकर अन्याय बन जाता है। निर्दोष व्यक्ति पर दोषारोपण करके हम उसका नैतिक पतन कर देते हैं।"

"आप मुझ पर भरोसा रखिए, मालिक, मैं गंगा मैया की कसम खाती हूं…।"

"छिः! छिः! यह कसम-वसम खाना गलत बात है।"

तभी चपरासी उन तीनों को लेकर अंदर आ गया। गुलाबसिंह और दयाल के चेहरे भय से पीले पड़े हुए थे। परंतु हरिया ने शांति को देखा तो उसकी जान में जान आ गई।

सेठजी ने उन तीनों को बारी-बारी से ऊपर से नीचे तक घूर कर देखा। पल-भर को उनके मुख पर आक्रोश के भाव उभरे, पर शीघ्र ही वह सहज हो गए।

शान्ति भी उन तीनों को घूर कर देख रही थी। उसके अन्तर में घृणा और क्रोध की अग्नि प्रज्वलित हो चुकी थी। इससे पहले कि सेठजी कुछ कहते, शान्ति बम-पटाखे की तरह फूट पड़ी, "मालिक, ये तीनों चोर, नमकहराम और विश्वासघाती हैं। इन्हें ऐसा करते लाज भी नहीं आती। जिस थाली में खाते हैं उसी में छेद करते हैं।"

उन तीनों के पीले चेहरे और ज्यादा पीले हो गए। वे अविश्वास, भय और घबराए हुए से शांति को देख रहे थे।

शांति के मुख पर पवित्र क्रोध से उत्पन्न तमतमाहट थी। वह उत्तेजित स्वर में बोली, "मालिक, मैंने कल रात अपनी आँखों से देखा था। इन तीनों की मिलीभगत के कारण आपकी फैक्ट्री से माल चोरी जाता है।"

शान्ति पल-भर को चुप हो गई। तभी उसकी समझ में आ गया कि डेढ़ सौ रुपए तनख्वाह के बावजूद हरिया तीन-चार सौ रुपया महीना कैसे खर्च कर लेता है।

"शांति, यह तू क्या कह रही है?" हरिया ने साहस जुटा कर कहा।

"हरिया, मैं ठीक कह रही हूँ। मुझे नहीं मालूम था तू ऐसा निकलेगा। तुम लोग बेईमान हो। तुम लोग कभी सुखी नहीं रह सकते। जो मालिक तुम्हें रोटी देता है, उसके साथ छल करके तुम कभी तरक्की नहीं कर सकोगे," शांति उबल पड़ी। फिर वह सेठजी को संबोधित करके बोली, "मालिक, इन चोरों को सजा दीजिए। इन्हें पुलिस के हवाले कर दीजिए, वरना ये लोग इस फैक्ट्री को दीमक बन कर चाट जाएँगे।"

"तू ये क्या पागलपन की बातें कर रही है री?" हरिया अंदर से कांप रहा था, पर ऊपर से साहस करके उसने विरोध कर दिया।

"हरिया, तुम्हारे मकान से शांति का मकान जुड़ा हुआ है?" सेठजी ने गंभीर स्वर में पूछा।

"हाँ, सरकार।"

"देखो, हरिया, इस झूठ-कपट को [illegible]

पर मैं एक बात कहना चाहता हूं। गलती इनसान से हो जाती है। गलती करके उसे झूठ के परदे में छिपाने की कोशिश करने वाला इनसान जिंदगी में कभी नहीं सुधर सकता।"

वे तीनों मौन खड़े रह गए—भयग्रस्त, थरथर कांपते।

"यह फैक्ट्री जितनी मेरी है उतनी तुम्हारी भी है। यह तुम्हें रोटी देती है···तुम्हारी अन्नदाता है···इसके साथ तुम विश्वासघात करोगे तो इसमें तुम्हारा ही नुकसान है।"

उन तीनों ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और वे क्षमा मांगने लगे।

शांति के मुख पर विजय की चमक फैल गई। वह उत्साह में भर कर बोली, "इनको ऐसी सजा दीजिए जिसे ये जिंदगी भर याद रखें।"

"हां, शांति, मैं इन्हें ऐसी सजा दूंगा जो ये जिंदगी भर न भूल सकेंगे।"

"इन्हें नौकरी से हटा कर पुलिस के हवाले कर दीजिए।"

"नहीं, शांति, मैं इन्हें क्षमा करके एक और अवसर देना चाहता हूं। विश्वासघाती बनने के अवसर तो बिखरे पड़े हैं, पर इनसान को ईमानदार और नमकहलाल बनने का अवसर कभी-कभी ही मिल पाता है।"

कृतज्ञ तथा अनुग्रहीत से वे तीनों सेठजी के पांवों पर गिर पड़े। शांति सेठजी को ठगी-सी देखती रह गई।

□

"जी।"

"मैं यहाँ तीन हफ्ते से हूँ, पर तुम्हें पहली बार देख रहा हूँ।"

"इसमें मेरा कोई कुसूर नहीं है," रामनाथ ने मुसकरा कर कहा।

"फिर किसका है?"

"श्रीमती किरण बाला का। उन्हीं की यूनिट में काम करता हूँ। हाजिरी रजिस्टर और कार्य-संपादन संबंधी कागजात मंगा कर देख लीजिए। रोज हाजिरी लगी होगी। मुझे जो दैनिक काम दिया जाता है, उसकी पूर्ति का रिकार्ड भी आपको देखने को मिल जाएगा।"

"यह सही है कि किरण बाला का यूनिट दूसरे तल पर है, पर मैं कई बार वहाँ गया हूँ। मैंने तुम्हें वहाँ कभी नहीं देखा।"

"देखिए साहब, बहुत हो गया," रामनाथ ने बिगड़ कर कहा। वह अधीर होकर बोला, "पुलिस की तरह मुझसे जिरह मत कीजिए। मेरी तनख्वाह दीजिए। मेरे पास फजूल की बातों के लिए समय नहीं है।"

विजय राघवाचार्य हतप्रभ रह गया। एक अदना से की-पंच आपरेटर की यह मजाल! तीन स्तर ऊपर वाले अधिकारी से ऐसी अभद्रता और अशिष्टता! उसे थोड़ा क्रोध भी आया, पर वह अपने को संयत कर गया। उसने इंटरकाम पर श्रीमती किरण बाला से यूनिट का हाजिरी-रजिस्टर तथा कार्य-संपादन संबंधी कागजात लेकर आने का आदेश दिया।

अगले कुछ ही मिनटों में श्रीमती किरण वहाँ आ गईं। उन्हें देखकर रामनाथ के होठों पर एक चौड़ी-सी मुसकान फैल गई और वह बोला, "किरणजी, इन नए अफसर साहब को मेरे इस दफ्तर में काम करने की गवाही दीजिए।"

श्रीमती किरण बाला ने रजिस्टर तथा कार्य-संपादन संबंधी कागजात विजय राघवाचार्य की मेज पर रखते हुए कहा, "साहब, रामनाथ मेरी यूनिट में ही है।"

"पर मैंने इन्हें पहली बार देखा है," विजय राघवाचार्य ने घोर आश्चर्य से पूछा, "क्या यह दफ्तर आते हैं?"

"नहीं…हाँ…पर, साहब, इनका काम पूरा हो जाता है," किरण ने ·च· कर कहा।

"देखिए, साहब, मेरा वेतन मुझे दीजिए। मेरे पास समय की बहु कमी है। किरणजी ने गवाही दे दी है कि मैं इनकी यूनिट में काम करत हूँ। दफ्तर आऊँ या न आऊँ, मेरे नाम सौंपा गया काम बखूबी पूरा हं जाता है। बस, आपको और क्या चाहिए?" रामनाथ ने उखड़े स्वर मे कहा।

विजय राघवाचार्य उलझ गया। यह कैसी रहस्यमय स्थिति है इस व्यक्ति के बिना दफ्तर आए, इसके नाम सौंपा गया काम कैसे पूर हो जाता है? जो भी हो, उसका वेतन रोकने का उसके पास कोई ठोस कारण या औचित्य नहीं था।

"देखिए, अगर आपको इस बारे में कुछ और पूछताछ करनी है तो किरणजी से कर लीजिएगा। वेतन देकर मेरी तो छुट्टी कीजिए।"

विजय राघवाचार्य ने रामनाथ के वेतन का लिफाफा उसे पकड़ा दिय और रसीदी टिकट लगा कर रजिस्टर में उसके हस्ताक्षर ले लिए।

रामनाथ ने रुपए गिने। फिर उसने सौ-सौ के दो नोट निकाल कर श्रीमती किरण बाला को दे दिए और बोला, "ये दो सौ रोशनलाल को दे देना। शायद वह लच के बाद आएगा। बीवी को दिखाने हस्पताल गया है।"

रुपयों को जेब में ठूँस, एक व्यंग्यात्मक मुसकान विजय राघवाचार्य की तरफ उछाल, रामनाथ प्रथम पुरस्कार पाने वाले खिलाड़ी की तरह शान से गरदन उठाए कमरे के दरवाजे की तरफ चल दिया। जैसे ही वह कमरे के बाहर गया, विजय राघवाचार्य ने मेज पर मुक्का मारा और ऊँचे स्वर में श्रीमती किरण बाला से बोला, "यह सब क्या है?"

"नई जमींदारी," अनायास श्रीमती किरण बाला के मुँह से निकल गया।

"मतलब?" विजय राघवाचार्य ने आश्चर्य से पूछा।

"साहब, मैं आपको सारी वस्तुस्थिति से परिचय कराए देती हूँ। यह रामनाथ वास्तव में हमारे कार्यालय का कर्मचारी है। इसे लगभग पौने नौ सौ रुपए मासिक वेतन मिलता है जो उसके लिए जेब-खर्च के समान है।

यह नौकरी तो उसका अंशकालिक धंधा है। यह महीने में दो-चार बार दफ्तर आता है और हाजिरी के रजिस्टर में दस्तखत कर जाता है। पहली तारीख को यह जरूर दफ्तर आता है।"

"जब यह दफ्तर आता ही नहीं है तो इसका काम···?"

"रोशनलाल करता है, जिसके लिए वह उसे दो सौ रुपए महीने और दो साल में एक फ्री एल० टी० सी० ट्रिप (सरकार के खर्च से देश में कहीं भी घूम आने की सुविधा) देता है। अगर रोशनलाल छुट्टी ले ले तो यूनिट के अन्य सदस्य रामनाथ का काम कर देते हैं।"

"पर क्या इन लोगों के पास इतना फालतू समय है? दो आदमियों का काम एक व्यक्ति द्वारा···?"

"साहब, सच तो यह है कि हमारे कार्यालय में फालतू कर्मचारियों की भरमार है। काम बढ़ता नहीं, कर्मचारियों की संख्या बढ़ती जा रही है। अगर इस कार्यालय में आप 40 प्रतिशत कर्मचारियों को भी निकाल दें तो कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। उलटे और फुरती से काम होगा। इतना सब होने के बावजूद दिन-भर हाथ पर हाथ रख कर बैठा रहने वाला कर्मचारी 'मर गए, काम के मारे मर गए' का नारा लगाता रहता है।"

विजय राघवाचार्य बुझ गया। इस रहस्योद्घाटन ने उसे और ज्यादा उदास और गंभीर कर दिया। कुछ क्षण के विराम के बाद उसने पूछा, "अगर रामनाथ के लिए यह अंशकालिक नौकरी है तो उसका पूरे समय का धंधा क्या है?"

"इसने बड़ा बढ़िया धंधा पकड़ा है, साहब। वारे-न्यारे हो रहे हैं। कहते हैं, इसने जमुना पार करीब पांच लाख की लागत से एक शानदार कोठी बनवाई है। पहले एक पुरानी, खटारा बस से काम शुरू किया था, अब इसके पास तीन नई बसें हैं और साहब, एक बस करीब ढाई लाख की आती है।" कहते-कहते श्रीमती किरण बाला का स्वर ईर्ष्या के कारण भर्रा गया।

"तो यह बसें चलाता है? इसमें तो बहुत अच्छी कमाई होती है।"

"वही तो साहब, साल में तीन बार गरमी, दशहरे और सर्दियों की ६ सरकारी कर्मचारियों को छुट्टी यात्रा अनुदान के अंतर्गत भारत-

दर्शन के लिए ले जाता है। यह देखिए, साहब, रामनाथ की कम्पनी का विज्ञापन," कहते हुए किरण बाला ने अपने पर्स से एक मुड़ा हुआ माइक्रो स्टाइल किया हुआ विज्ञापन निकाला और विजय राघवाचार्य के सामने रख दिया।

"लगता है, यह विज्ञापन भी दफ्तर के कागज और मशीनों का प्रयोग करके निकाला गया है," विजय राघवाचार्य ने विज्ञापन पर एक नजर डालकर कहा।

"जी, हाँ," किरण बाला ने इस तथ्य को स्वीकारते हुए कहा।

विजय राघवाचार्य ने विज्ञापन को बड़े गौर से पढ़ा। उसका शीर्षक बड़ा ही आकर्षक था—भारत-दर्शन कीजिए। डीलक्स कोचों में यात्रा का आनन्द उठाइए। निम्नलिखित तीन वर्तुलाकार टूर में से कोई एक चुनिए। उसके पश्चात तीनों टूर का विशद वर्णन था। विभिन्न स्थानों का वर्णन, रवानगी और पहुँच की तारीख, अनुमानित व्यय की राशि। संपर्क करने के लिए दो पते दिए हुए थे—रामनाथ के सरकारी फ्लैट का नंबर और दफ्तर का फोन नंबर।

विजय राघवाचार्य विस्मित रह गया।

"बड़ी मोटी आमदनी होती है इसे, साहब। इन तीन छुट्टियों की अवधि में तीन-तीन बसों से वह नौ टूर मारता है और हर टूर में उसे करीब आठ हजार रुपये की आमदनी हो जाती है। कई बार तो यह आमदनी पंद्रह हजार प्रति ट्रिप तक हो जाती है।"

"वह कैसे?"

"कई बार बस जाती ही नहीं। हर सरकारी कर्मचारी से वह पन्द्रह सौ रुपए रसीद काटने के ले लेता है। मान लीजिए एक कर्मचारी के परिवार में आठ सदस्य हैं। उसने कन्याकुमारी तक एल० टी० सी० ली। लगभग नौ सौ रुपये प्रति व्यक्ति उसे सरकार से एल० टी० सी० मिला। उसने रसीद की खातिर डेढ़ सौ-दो सौ रुपए रामनाथ को दिए और बाकी साढ़े सात सौ खुद रख लिए। दोनों ने किसे घाटे का सौदा रहा? और जाते हैं वे भी कम रुपये देकर ज्यादा की रसीद ले लेते हैं।

विजय राघवाचार्य के सामने भ्रष्ट प्रक्रिया की परतें-दर-परतें खुलती जा रही थी। वह अवाक्-सा किरण की तरफ देखता रह गया।

"यही नहीं, साहब, बाकी दिनों में रामनाथ की बसें दिल्ली परिवहन के अंतर्गत चलती रहती हैं। वह एक बार बता रहा था कि प्रत्येक बस उसे करीब पाँच हजार रुपए महीने तक का लाभ दे जाती है···।"

"सच ?" अविश्वास से विजय राघवाचार्य की आँखें फैल गईं। अनायास उसके मुँह से निकल गया, "इतना अमीर है यह तो फिर इतनी छोटी नौकरी क्यों करता है ? इसे छोड़ कर, पूरे समय यही धंधा क्यों नहीं करता ?"

किरण बाला हँसी। फिर वह बोली, "साहब, मैंने भी रामनाथ से एक दिन यही प्रश्न पूछा था तो वह बोला, 'मेरा दिमाग खराब हुआ है जो मैं यह नौकरी छोड़ूँ ? अरे मुफ्त में सात सौ रुपए महीना मिलते हैं। फिर चालीस रुपए महीने में तीन कमरे का सरकारी मकान मिला हुआ है। पूरे परिवार को मुफ्त चिकित्सा सुविधा मिलती है। दरजनों अग्रिम राशियाँ ली हुई हैं। मैंने स्कूटर सरकारी कर्ज से खरीदा है, मकान बनाने के लिए 70 हजार रुपया लिया है, रिटायर होऊँगा तो मुझे पेंशन मिलेगी और सबसे बड़ी बात, इस व्यापार में सरकारी कर्मचारी होने से बड़ी सुविधा होती है। जब भी किसी दफ्तर में काम होता है या कभी-कभार कहीं बस पकड़ी जाती है तो अपना परिचय-पत्र दिखाते ही काम हो जाता है। अब तुम्हीं बताओ, मुझे क्या पागल कुत्ते ने काटा है जो मैं अपनी यह जमींदारी छोड़ बाबाजी हो जाऊँ ?'"

विजय राघवाचार्य सन्नाशून्य सा बैठा रहा। एक नई सचाई के सूर्योदय ने उसके अंतर को प्रकाशित कर दिया था। कुछ देर तक विचार-निमग्न रहने के बाद वह बोला, "सरकारी सेवा में रहते हुए इस तरह निजी व्यापार आचरण संहिता के खिलाफ ही नहीं, भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत एक दंडनीय अपराध भी है। क्या रामनाथ को यह नहीं पता ?"

"साहब, तुलसीदास ने ठीक ही कहा है—समरथ को नहिं दोष गोसाईं," किरण बाला ने सहज रूप में उत्तर दिया।

"ठीक है। मैं देखूँगा, रामनाथ कितना शक्तिशाली है। मैं यह सब

अपने इस यूनिट में नहीं चलने दूंगा," विजय राघवाचार्य ने दृढ़ता से कहा।

किरण बाला के मुख पर अविश्वास के भाव उभर आए। कुछ देर तक वह यों ही अकारण बैठी रही। फिर वह अपने कागजात लेकर वापस चली गई। जैसे ही वह जाने को हुई विजय राघवाचार्य ने निर्णायक स्वर में कहा, "कल से रामनाथ की जमींदारी खत्म। हाजिरी का रजिस्टर रोज मेरे पास आएगा। रोशनलाल को बोलना, वह सिर्फ अपना काम करेगा, रामनाथ का नहीं।"

विजय राघवाचार्य की दृढ़ता रंग लाई। अब हर रोज सुबह उसके पास हाजिरी का रजिस्टर आता और वह रामनाथ के नाम के आगे वाले खाने में लाल स्याही से अनुपस्थिति का निशान लगा देता।

एक सप्ताह के भीतर ही विजय राघवाचार्य को लगा, जैसे उसकी योजना सफल होने वाली है। रामनाथ की अनुपस्थिति दर्ज हो रही थी। उसके लिए न कोई अर्जी थी, न सूचना। इस अनुपस्थिति के लिए वह रामनाथ की तनख्वाह काट लेगा और इसके बावजूद वह अनुपस्थित रहता है तो उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करके वह उसे सेवामुक्त कर सकता है।

पर तभी एक दिन रामनाथ का फोन आ गया। सामान्य शिष्टाचार का आदान-प्रदान करने के बाद विजय राघवाचार्य को लगभग धमकाते हुए उसने कहा, "अरे साहब, काहे को बोर करते हो? मैंने सुना है कि पिछले दस दिनों से आप हाजिरी के रजिस्टर में धड़ाधड़ लाल गोला लगा रहे हैं?"

"कौन बोला?" विजय राघवाचार्य ने चिढ़कर पूछा।

"और कौन बोलेगा? जिसका दो सौ रुपए का नुकसान होगा, बोलेगा तो वही।"

"बोलने दो, अगर तुम दफ्तर नहीं आओगे तो हम तुम्हारी गैरहाजिरी लगाएंगे।"

"उससे क्या फर्क पड़ेगा?"

"एफ-आर-17 के मुताबिक काम नहीं तो तनख्वाह नहीं।"

रामनाथ कुछ बोला नही, केवल बड़ी जोर से खिलखिलाकर हंस पड़ा। विजय राघवाचार्य को बुरा लगा, पर उसने अपने को संयत कर लिया। कुछ पल तक विजय राघवाचार्य को रामनाथ की हँसी सुनाई देती रही तो उसने फोन बंद कर दिया।

अगले कुछ दिनों तक कोई विशेष बात नही हुई। हाँ, रामनाथ ने जैसे इस विषय को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। एक दिन वह आया और हाजिरी के रजिस्टर पर सारे लाल गोले लगे खानों मे अपने हस्ताक्षर करके राघवाचार्य से बिना मिले चला गया।

अगले दिन विजय राघवाचार्य ने रजिस्टर देखा तो उसका खून खौल गया। यह सरासर बेईमानी थी। सरकारी दस्तावेजों मे इस तरह फेर-बदल करना कानूनी जुर्म है।

विजय राघवाचार्य उलझ गया। पहले तो उसका मन किया कि वह इस पूरे कांड की विस्तृत रिपोर्ट निदेशक महोदय के पास भेज दे। फिर उसने सोचा, वह खुद उपनिदेशक है और रामनाथ के विरुद्ध कोई भी कार्रवाई करने के लिए पूर्णतया सक्षम अधिकारी है। वह उच्चाधिकारियो के पास क्यो जाए?

पूरा महीना बीतने को आ गया। वेतन के बिल बनने शुरू हो गए। विजय राघवाचार्य ने एक संक्षिप्त सा नोट रोकड़ अनुभाग को भेज दिया कि रामनाथ पहली तारीख से अनधिकृत रूप से अनुपस्थित है। अतः उसे कोई वेतन नही दिया जाए। साथ ही उसने रामनाथ के घर के पते पर एक मीमो भी जारी कर दिया, जिसमे उससे इस अनधिकृत अनुपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण माँगा गया था। साथ ही उसे यह चेतावनी भी दी गई थी कि यदि वह अगले तीन दिनो मे ड्यूटी पर उपस्थित नही हुआ अथवा इस अनुपस्थिति के लिए अर्जी नही दी, तो उसे सेवामुक्त कर दिया जाएगा।

चार दिन बीत गए। रामनाथ की तरफ से न कोई स्पष्टीकरण आया और न ही कोई छुट्टी की अर्जी, न ही वह ड्यूटी पर उपस्थित हुआ। हाँ, विजय राघवाचार्य को संयुक्त निदेशक ने बुलाया और लगभग उसका

स्पष्टीकरण माँगते हुए कहा, "राघवाचार्य जी, आप यह क्या कर रहे हैं ? रामनाथ को क्यों सता रहे हैं ?"

"साहब, मैं उसे सता नहीं रहा । वह तो दफ्तर आता ही नहीं है ।"

"वह हमें मालूम है । वह बहुत काम का आदमी है । दफ्तर के हर अफसर और कर्मचारी को उससे काम पड़ता रहता है । बेकार में उससे क्यों पंगे ले रहे हो ?" संयुक्त निदेशक ने तल्खी भरे स्वर में कहा ।

विजय राघवाचार्य ने इस विषय में उनसे बहस करना उचित नहीं समझा । उसे पता चला था कि रामनाथ अपने इस संयुक्त निदेशक को सपरिवार दक्षिण भारत की यात्रा पर मुफ्त ले गया था । संयुक्त निदेशक का एक पैसा भी खर्च नहीं हुआ । फिर भी उसने सरकार से एल० टी० सी० के आठ हजार रुपए फटकार लिए थे ।

विजय राघवाचार्य वापस अपनी सीट पर आ गया । उसने दृढ़ता से अपनी कार्रवाई करने का फैसला कर लिया । संयुक्त निदेशक [redacted] कहने से क्या होता है ?

पहली तारीख आई । रामनाथ भी दफ्तर आया । इस बार उसे वेतन नहीं मिला । वह विजय राघवाचार्य के पास आया और आँखें दिखाकर चला गया । करीब एक घंटे बाद विजय राघवाचार्य को निदेशक ने बुला भेजा ।

विजय राघवाचार्य ऊपर पहुँचा । वह निदेशक के कमरे में घुसा तो उसे यह देखकर घोर आश्चर्य हुआ कि रामनाथ और निदेशक कॉफी पी रहे हैं और हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं । उसे देखते ही निदेशक महोदय बोले, "आइए, राघवाचार्य जी, बैठिए, इन्हें जानते हैं ? यह रामनाथ हैं ।"

"इन्हें मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ साहब ।"

"सुना है आप इनसे खफा हैं ।"

"नहीं तो, साहब ।"

"फिर आपने इनकी तनख्वाह कैसे रोक ली ?"

"साहब, यह पूरे महीने दफ्तर नहीं आए । न ही कोई अर्जी भेजी । फिर वेतन किस बात का ?"

रामनाथ कुछ बोला नहीं, केवल बड़ी जोर से खिलखिलाकर पड़ा। विजय राघवाचार्य को बुरा लगा, पर उसने अपने को संयत लिया। कुछ पल तक विजय राघवाचार्य को रामनाथ की हंसी सुनाई दे रही तो उसने फोन बंद कर दिया।

अगले कुछ दिनों तक कोई विशेष बात नहीं हुई। हां, रामनाथ ने जै इस विषय को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। एक दिन वह आय और हाजिरी के रजिस्टर पर सारे लाल गोले लगे खानों में अपने हस्ताक्ष करके राघवाचार्य से बिना मिले चला गया।

अगले दिन विजय राघवाचार्य ने रजिस्टर देखा तो उसका खून खौल गया। यह सरासर बेईमानी थी। सरकारी दस्तावेजों में इस तरह फेर-बदल करना कानूनी जुर्म है।

विजय राघवाचार्य उलझ गया। पहले तो उसका मन किया कि वह इस पूरे कांड की विस्तृत रिपोर्ट निदेशक महोदय के पास भेज दे। फिर उसने सोचा, वह खुद उपनिदेशक है और रामनाथ के विरुद्ध कोई भी कार्रवाई करने के लिए पूर्णतया सक्षम अधिकारी है। वह उच्चाधिकारियों के पास क्यों जाए?

फिर वही

पिछले दो दिन से माँ बेहोश थी। इस बीच बराबर उनकी आँखें घर-घराती रही थीं। डाक्टरों ने आशा छोड़ दी थी। इसलिए उन्होंने माँ को अस्पताल से छुट्टी भी दे दी थी। माँ भी यही चाहती थी कि अस्पताल में साँस न निकले।

माँ घर आईं। शायद उन्हें भी अपनी मृत्यु का आभास हो गया था। बोली, 'किशोर, अब मेरा अंत समय आ गया है। सबको सूचित कर दे।"

मेरा हृदय काँप गया था। हम लोग आठ भाई-बहन हैं। सबके सब बाल-बच्चे वाले हैं। दो कमरे के इस सरकारी क्वार्टर में यह सब कैसे होगा! देर तक मैं इसी समस्या पर सोचता रहा था। एक तो माँ का मामला। दूसरे, अगर परिवार वाले माँ के अंतिम दर्शन न कर पाए तो जिंदगी भर मुझे कोसते रहेंगे।

हार कर मैंने सबको तार द्वारा माँ की चिंताजनक स्थिति की सूचना दे दी।

अगले दो-तीन दिन में सुषमा बहन और [illegible] घर सब आ गए—बरेली से रजा बहन और [illegible] उनके दो बच्चे, अहमदाबाद से श्याम भाई और भाभीजी, मुरादाबाद से मधु बहन अपने तीन बच्चों के साथ (अच्छा हुआ जो [illegible]

"पर हमने हाजिरी का रजिस्टर देखा है। उसमे तो इनके दस्तखत हैं। हां, आपके लाल गोने भी हैं। पर अगर कोई देर-सवेर आए तो इस तरह पूरे दिन की गैरहाजिरी लगाना कुछ उचित नही लगता।"

"साहब, यह तो पूरे-पूरे महीने गायब रहते हैं।"

"पर रजिस्टर तो यह नही कहता।"

"साहब, यह पंद्रह दिन मे एक बार आकर सारे दिनो की हाजिरी लगा देते हैं। और साहब, यह दफ्तर का कुछ भी काम नही करते हैं।"

"आजकल कौन काम कर रहा है, राघवाचार्य। मंत्री से संतरी त- सब ऐश कर रहे हैं। जो दफ्तर आते हैं, शारीरिक रूप से उपस्थित भी। तुम समझते हो वे काम करते हैं?"

"साहब, यह दफ्तर नही आते। इन्होंने निजी व्यापार कर लिया है यह उसी मे व्यस्त रहते है।"

"तो कौन-सा गुनाह करते हैं? अरे, अगर कोई इनसान अपने बाल बच्चो का पेट भरने के लिए मेहनत-मजूरी करता है तो इसमे मेरी समझ में तो नही आता कि तुम्हारे पेट मे क्यो दर्द होता है।"

विजय राघवाचार्य निरुत्तर हो गया। गरदन झुकाए, अपमानित-सा वह बैठा रह गया। उसने कनखियो से देखा, रामनाथ विजयी सम्राट की तरह बैठा मुसकरा रहा था। अधीनस्थ कर्मचारी के सामने ही उसके अफसर को डांट-फटकार। फिर चल चुका अनुशासन।

"रामनाथ बड़े काम का आदमी है। अपने दफ्तर के लोगो को एल० टी० सी० मे मदद तो करता ही है, अगर किसी के लड़के या लड़की की शादी हो तो इसकी बसे तुरन्त उपलब्ध हो जाती हैं। ऐसे काम के आदमी को तुम बेकार मे परेशान कर रहे हो। जाओ, इसके वेतन को दिलवाने का प्रबंध करो और वह जो मीमो तुमने जारी किया है, उसे रद्द करो।"

निदेशक महोदय विभागाध्यक्ष हैं। अत: उनके निर्णयात्मक आदेशो से परास्त हो विजय राघवाचार्य बाहर आ गया—निराश, पिटा हुआ। वह सोच रहा था—इस देश मे जमीदारी प्रथा कभी भी समाप्त नही हो सकती।

□

फिर वही

पिछले दो दिन से माँ बेहोश थी। इस बीच बराबर उनकी साँसें घर-घराती रही थीं। डाक्टरों ने आशा छोड़ दी थी। इसीलिए उन्होंने माँ को अस्पताल से छुट्टी भी दे दी थी। माँ भी यही चाहती थीं कि अस्पताल में साँस न निकले।

माँ घर आईं। शायद उन्हें भी अपनी मृत्यु का आभास हो गया था। बोलीं, "किशोर, अब मेरा अंत समय आ गया है। सबको सूचित कर दे।"

मेरा हृदय काँप गया था। हम लोग आठ भाई-बहन हैं। सबके सब बाल-बच्चे वाले हैं। दो कमरे के इस सरकारी क्वार्टर में यह सब कैसे होगा! देर तक मैं इसी समस्या पर सोचता रहा था। एक तो माँ की आज्ञा। दूसरे, अगर परिवार वाले माँ के अंतिम दर्शन न कर पाए तो ज़िंदगी भर मुझे कोसते रहेंगे।

हार कर मैंने सबको तार द्वारा माँ की चिंताजनक स्थिति की सूचना दे दी।

अगले दो-तीन दिन में सुषमा बहन और प्रकाश भाई रुड़की को छोड़ कर सब आ गए—बरेली से रेखा बहन और जीजाजी व उनके दो बच्चे, अहमदाबाद से श्याम भाई और भाभीजी, मुरादाबाद से मधुर बहन अपने तीन बच्चों के साथ (अच्छा हुआ जो जीजाजी व्यापार के कारण न आ

सके), बंबई से राम भाई और भाजीजी (सचमुच मैं वहां के स्कूलों व धन्यवाद देने लगा जो परीक्षा के कारण उनके बच्चे न आ सके थे), हाथर से सावित्री बहन और जीजाजी, अलीगढ़ से दोनो मामाजी और मामियां.

तीन दिन ही मे 18 व्यक्ति इकट्ठे हो गए। दो कमरे का मेरा 'जं टाइप क्वार्टर संकोच से सिकुड़ कर एक चौथाई रह गया। हार कर पड़ो मे मिस्टर मुखर्जी और मिस्टर चोपड़ा से एक-एक कमरा मांग लिया उनमे थोड़े से मेहमानों को ठहरा दिया। पड़ोसियों से कमरा मांगते सम मन मे बड़ा ओछापन-सा महसूस हुआ। साथ ही थोड़ी खुशी भी हुई कि चलो, सुषमा बहन अपने पति के साथ कनाडा मे हैं और प्रकाश भाई की तबीयत ठीक नही, वरना किसी से एक कमरा और मांगना पड़ता।

जगह की समस्या हल हुई तो राशन की समस्या टेढ़ी पड़ गई। जैसे-तैसे राशनिंग विभाग मे अपने एक मित्र की सहायता से अस्थायी राशन-कार्ड बनवा लिया। पर राशन खरीदने के लिए पैसे? नौकरी-पेशे वाले के लिए यह विकट समस्या होती है। मां की लंबी बीमारी प्रोवीडेंट फंड को पहले ही सोख गई थी। फिर मेहमानो की यह सेना न जाने कब तक ठहरे! यह सब सिर्फ इनके ऊपर नही, मां के ऊपर भी निर्भर करता है।

दफ्तर के लोगो से मेरा हाल छिपा नही था। मेरे सुपरिन्टेंडेंट शर्माजी मां को देखने आए थे। मां की बीमारी और मेहमानों की बारात को देख कर बोले थे, "किशोर, मैं जानता हूं, तुम परेशानी मे हो। अगर मेरे लायक कोई काम हो तो बता देना, संकोच मत करना।"

मैं लाचार था। शर्माजी से दो सौ रुपए कर्ज लेने के सिवा मेरे सामने और कोई चारा ही नही था।

रुपए का इंतजाम हो गया। राशन भी आ गया। फिर समस्या आई पकाने की। बेचारी कमला सुबह चार बजे उठती, घर की सफाई-धुलाई करके चाय बनाती, नाश्ता बनता। नाश्ता होते-होते रोटियां बनने का काम शुरू हो जाता। रोटियां खत्म नही हो पातीं कि शाम के खाने की बारी आ जाती।

यहां तक सब ठीक था, पर…?

सुबह जब राम भाई को चाय पेश की गई तो वह बोले, "भई, यह

कैसी चाय है ? न पत्ती, न चीनी ! अपन तो कड़क चाय पीने के आदी हैं।" तब कमला उनके लिए अलग से चाय बना लाई थी।

दोपहर को खाना खाते समय शकुन बहन के चेहरे पर सिलवटें थीं। मुझसे न रहा गया तो पूछ बैठा, "क्यों, दीदी, खाना अच्छा नहीं बना ?"

दीदी ने आँखें मटकाकर कहा, "बताऊँ ? बुरा तो नहीं मानेगा ?"

"कोई बड़ी बहन की बातों का भी बुरा मानता है ?"

"तो सुन, भैया, राशन के इस लाल आटे की रोटियाँ तो गले के नीचे उतरने से रहीं। अपने फार्म के देसी गेहूँ की रोटियाँ तो ऐसी बने हैं जैसे मैदा की हों...।"

"पर दीदी, यहाँ दिल्ली में तो पूर्ण राशन है। राशन में जैसा मिलेगा, खाना पड़ेगा।"

"अरे, हट किशोर, तेरे जीजाजी तो कहते थे कि दिल्ली में खुले बाजार मोती जैसा देसी गेहूँ सवा रुपए किलो बिक रहा है, जितना मरजी हो उतना खरीद लो।"

मैं काँप गया। कहाँ राशन में 88 पैसे किलो आटा और कहाँ ब्लैक में सवा रुपए किलो गेहूँ। एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर मैं बोला, "पर वह तो ब्लैक में मिलता होगा।"

"तो क्या हुआ ?"

"पर, दीदी, हम सरकारी कर्मचारी ही अगर ब्लैक को बढ़ावा देंगे तो देश का क्या बनेगा ?"

"अरे जा, ज्यादा देशभक्ति की बातें मत बना।"

मैं क्या उत्तर देता ? मन बुझकर रह गया।

रात के खाने के समय हाथरस वाली दीदी की नाक-भौं चढ़ गई। पराठे देखकर बोली, "कमला, इनमें बड़ी बदबू आ रही है, क्या ये डालडा में बने हैं ?"

कमला क्या उत्तर देती ? मैं ही बोला, "हाँ, दीदी।"

"राम-राम, तभी तो कहूँ।"

"पर दीदी, आजकल तो सभी वनस्पति ही खा रहे हैं।"

"खा रहे होंगे दिल्ली में ! हाथरस में तो कोई हाथ न लगाए ऐसे

सडे घी को !"

"पर, दीदी, शुद्ध घी तो पंदरह रुपए किलो है। कौन खा सकता है !"

"खा तो वही सकता है जिसका दिल हो। पर किशोर, तू तो सदा का लोभी है।"

एक और विष का घूंट मैं अमृत की तरह गले के नीचे उतार गया। ऐसे लोगों से बहस करने से क्या फ़ायदा जो दूसरों के प्रति तनिक भी काल्पनिक सहानुभूति नही रखते तथा दूसरों की असफलताओ और विवशताओं को अपनी सफलताओं और सुविधाओ के मानदंड से तोलते हैं।

रात को सोने के समय दूध का प्रश्न उठा।

बड़ो को न सही, बच्चो को तो दूध मिलना ही चाहिए था। रेखा दीदी, बड़े मामा और राम भाई के मुंह बने हुए थे। ग्यारह बज चुके थे और उन्हे दूध के दर्शन भी नही हुए थे।

हार कर शकुन दीदी को कहना ही पड़ा, "भैया किशोर, जैसे-तैसे लाल आटे की रोटी से पेट का गड्ढा तो भर लिया। अब क्या रेखा के बच्चो को भूखा मारना है ?"

मैं वास्तव में असहाय-सा हो गया। बोला, "दीदी क्या करूं ? मैं खुद परेशान हूं। दिल्ली मिल्क स्कीम का टोकन है। दो बोतलें सुबह और एक बोतल शाम को मिलती है। जैसे-तैसे एक-दो बोतलें कैश मिल जाती हैं। इसमे मां को दूध दे देते हैं और चाय का गुजारा चल जाता है।"

"और कार्ड नही बन सकता ?"

"नही, दीदी, लोग इसके लिए मिनिस्टरों तक की सिफारिशें ले जाते हैं। फिर भी दूध नही मिलता।"

"तुम्हारे सामने घोसी है, उससे ही कोई इंतजाम कर लेना था।"

"कल शाम उसके पास गया था, दीदी, उसने साफ इनकार कर [illegible] लगा, "आज कल गरमी का मौसम है, अपने बंधेबंधाए [illegible] नही पड़ता तो सरकारी ग्राहकों को कहां से दें ?"

है ! ऐसा करो, किशोर, दूध के पैसे मुझसे ले लो," इस बार

रेखा दीदी बोलीं।

मैं बुरी तरह छटपटा गया। दीदी ने मेरे अन्तर के कोमलतम भाग को कचोट लिया था। मैं आर्द्र स्वर में बोला, "दीदी तुम्हारा भाई इतना नीच नहीं। खैर, सुबह किसी-न-किसी तरह दूध का इन्तजाम करूँगा, चाहे घोसी के पाँवों पर सिर ही क्यों न रखना पड़े।"

रात के सारे झंझटों से निपटकर मैं बालकनी में खड़ा सिगरेट पी रहा था। बाहर दूर तक अँधेरा छाया था। पर उस अँधेरे में सफदरजंग हवाई-अड्डे की रंगबिरंगी रोशनियाँ मुझे साफ दिखाई दे रही थीं। मुझे लगा, जैसे बाहर का वह सारा परिवेश मेरे अन्तर का प्रतिबिंब है, असहायता और अपमान का था वह घना तोम अँधेरा। पर उसमें आशा के दीप जैसी टिमटिमाती बत्तियाँ भी तो थीं!

बच्चे सो चुके थे। माँ के कमरे में भीड़ थी। वह अभी बेहोश थी।

कमरे के एक कोने में राम भाई, श्याम बाबू, मामाजी तथा हावड़ा वाले जीजाजी दो पैसे प्वाइंट रमी खेल रहे थे।

माँ की खाट से सट कर महिला वर्ग गप्पों में मशगूल था। गप्पों के विष बुझे तीर मेरे कानों तक पहुँच रहे थे।

"माँ की सेवा क्या हो रही है, नाम किया जा रहा है।"

यह कटाक्ष सावित्री दीदी का था। मेरा अन्तर तिलमिला कर उठा। अगर माँ, बेहोश न होतीं और मृत्युशय्या पर न पड़ी होतीं तो मैं अभी जाकर इन लोगों का मुँह बंद कर देता और चीखकर कहता — नहीं यह सरासर झूठ है। मैंने और कमला ने माँ की सेवा में रात-दिन एक कर दिया है। डाक्टरों के चक्कर, अस्पतालों में पड़ा रहना, घड़ी से अनार खिला कर टाइम से दवा देना, माँ के मल-मूत्र के कपड़े धोना। नर्स तो सिर्फ आठ घंटे की ड्यूटी देती है, पर मैं और कमला चौबीसों घंटे की ड्यूटी दे रहे हैं।

'अगर सी० एच० एस० की जगह किसी अच्छे प्राइवेट डाक्टर का इलाज कराया जाता तो माँ की यह हालत न होती। दिल्ली में तो एक से एक अच्छा डाक्टर पड़ा है। अगर यहाँ इलाज नहीं करा सकता था तो मेरे पास बम्बई भेज देता।"

इस बार मेरा अंतर भभक उठता है राम भाई की बात सुनकर। क्रोधित हो मैं सिगरेट को पाँव तले मसल देता हूँ। कितना अन्याय है! जी चाहता है कि अंदर जाऊँ और भाई साहब से कहूँ, 'अगर माँ तुम्हारे पास होती तो आज तक जीवित न रहती। फिर अगर माँ की इतनी ही ममता थी तो एक बार झूठमूठ चिट्ठी डाली होती कि माँ को बंबई भेज दो। आज दस साल से बंबई रहते हो। कपड़े का अच्छा व्यापार चल रहा है। पैसे की कमी नहीं। कितनी बार माँ को अपने पास रखा है! दस वर्ष में सिर्फ एक बार और वह भी एक सप्ताह के लिए।'

पर मैंने अपने क्रोध पर नियंत्रण कर लिया। एक तो बड़े भाई, फिर मेहमान बन कर आए हैं। उन्हें कुछ कहना शोभा नहीं देता।

तभी मुझे श्याम भाई का स्वर सुनाई दिया, "जगह की यहाँ वास्तव में तंगी है। बीमार के लिए साफ-सुथरी एकांत जगह चाहिए। यहाँ तो भले-चंगे आदमी की भी तबियत खराब हो जाए।"

इस बार मुझे क्रोध नहीं आया। मैं सिर्फ व्यंग्य से मुस्करा दिया। मेरे मुँह से अनायास ही निकल पड़ा, "मेरे पास माँ के लिए तो बहुत जगह है लेकिन इस अनियंत्रित, क्रुद्ध और हिंसा पर उतारू भीड़ के लिए मेरे पास कोई जगह नहीं।"

बारह बजे मैं अंदर चला गया।

कमला रसोईघर में बैठी खाना खा रही थी। नमक, आम का अचार और पराठे। चेहरे पर थकान के बावजूद उत्फुल्लता थी। मुझे देख कर वह मुस्करा दी।

मैं अभिभूत हो गया। अपमान के बीच घिरे एक इन्सान को इससे बड़ी और क्या राहत की चीज मिल सकती है।

मैंने अनुराग-भरे स्वर में पूछा, "सब सब्जी खत्म हो गई?"

वह मुस्कराती हुई धीमे स्वर में बोली, "इतने लोगों में अंदाज नहीं ...।"

... दिन सुबह माँ की साँस की घरघराहट कुछ कम हो गई पर ... अभी तक नहीं टूटी थी। सब लोग कमरे में जमा थे। मैंने मेज पर गिलास से ग्लूकोज का पानी चम्मच में भरा और माँ के मुँह में डाल

दिया। अचानक उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं और एक अस्फुट-सा स्वर निकला, "किशोर !"

सब लोग दम साधे अगले ही क्षण कुछ घटने की प्रतीक्षा करने लगे। पर माँ ने आँखें मूंद लीं।

तभी डाक्टर मिश्रा आ गए। साथ में उनका कपाउंडर भी था। डाक्टर साहब ने सारी भीड़ को बाहर निकाल दिया। फिर मुझसे बोले, "मिस्टर किशोर, आपका माँ बच गया।"

मैं अविश्वासपूर्वक, विस्फारित नेत्रों से उन्हें घूरता रहा। "बड़ा टेढ़ा केस निकला। जिस बीमारी की कोई क्लीनिकल पिक्चर नहीं बनती थी, वह निकला। इनको प्लूरिसी है। इस केस पर तो 'ब्रिटिश मेडीकल जर्नल' में आर्टीकल लिखना चाहिए।"

यह कहते-कहते उन्होंने माँ की पीठ में पंक्चर करके करीब दो बोतल तरल पदार्थ निकाल लिया और माँ को एक इंजेक्शन दे दिया।

"यह फ्लूड तुम टी० बी० सेनेटोरियम ले जाओ। इसका रिपोर्ट हम को शाम तक चाहिए। हम उधर मेडीकल सुपरिन्टेंडेंट के नाम परचा लिख देगा। रिपोर्ट आने के बाद हम ट्रीटमेंट शुरू करेगा," कहकर डाक्टर चले गए।

नाश्ता खत्म हुआ।

दूसरे कमरे में मेहमान लोग कुतुबमीनार देखने जाने की तैयारी में जुटे थे। मेरा मन किया, रामू भाई को बोतलें दे दूँ। कुतुबमीनार के पास ही तो है सेनेटोरियम। पर मन नहीं माना। साइकिल उठाई और मैं चल पड़ा।

डाक्टर मिश्रा के परचे ने कमाल किया। एक घंटा प्रतीक्षा करनी पड़ी लेकिन रिपोर्ट मिल गई।

लौटकर माँ की चारपाई के पास कुर्सी डाल कर जम गया। मेरी नजरें माँ के चेहरे पर गड़ी थीं। मुझे लगा, माँ अब बेहोश नहीं हैं, सिर्फ शांतिपूर्वक सो रही हैं।

दोपहर के खाने के समय तक मेहमान कुतुबमीनार देख कर आए। वे लोग कुतुबमीनार के बारे में चर्चा करते रहे। खाना ते

शकुन बहन का पाँच वर्षीय पुत्र राजीव बोला, "मामाजी, हम लोगों ने टैक्सी मे से आपको साइकिल पर जाते हुए देखा था।"

मैं क्या कहता, सिर्फ मुस्करा दिया।

अनायास माँ ने आँखें खोल दी। वह कुछ स्वस्थ-सी नजर आ रही थी। मैंने अनार और सेब का रस निकाल कर उन्हे दिया, पूछा, "कैसा महसूस कर रही हो माँ ?"

"शांति है, बेटा !"

शाम हुई।

सब लोग कनाटप्लेस जाकर शापिंग करने की तैयारी मे जुटे थे। मैं सेनेटोरियम की रिपोट लेकर डाक्टर के पास चला गया। रिपोर्ट देख कर डाक्टर मिश्रा की आँखों में खुशी की नीली चमक तैर गई। उन्होंने दवाओं का परचा लिख दिया।

डिस्पेंसरी से दवा लेकर घर पहुँचा तो देखा, माँ काफी चैतन्य नजर आ रही थी। उनकी मूर्च्छा टूट चुकी थी।

पास वाले कमरे में बंबई वाली भाभी शकुन दीदी को जापानी नायलोन कढ़ी हुई साड़ी,दिखाती हुई कह रही थीं, "पौने दो सौ में तो कोई बुरी नहीं है, बीबी जी। जरा चमक देखो ! कोकाकोला रंग कितना शानदार है !"

शकुन दीदी की आँखों मे निराशा-भरी प्रशंसा की चमक थी।

"क्यों, बीबी जी, अच्छी नही लगी ?"

"अरे भाभी, बहुत बढ़िया है। मैं तो राजीव के पापा के बारे मे सोच रही थी। इन्हे अपने फार्म से ही फुरसत नही—बीबी चाहे फटी साड़ी पहने या नायलोन की।"

तभी कमरे मे संगीत की हल्की सी एक लहर गूँज उठी। मैंने अचकचा कर देखा, कमरे मे एक कोने में दीदी की छोटी लड़की गाने वाली गुड़िया से खेल रही थी।

रेखा दीदी सावित्री जीजी से कह रही थी, "जीजी, पूरे पचास रुपए ुे है।"

मेरा मन वितृष्णा से भर गया। मैं माँ के कमरे मे लौट आया।

उनकी चारपाई की पाटी पर बैठकर मैंने उनके दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिए। माँ ने आँखें खोल ली। मैंने उनके निष्प्राण हाथों को अपने माथे से लगाकर कहा, "माँ, डाक्टर कहते हैं, अब कोई चिंता की बात नहीं। तुम ठीक हो जाओगी।"

"मेरा तो वक्त आ गया है, बेटा!" कई दिन बाद माँ बोलीं तो मैं अभिभूत हो गया।

आर्द्र स्वर में मैं बोला, "ऐसा मत कहो, माँ! तुम्हारे बैठे रहने में ही घर की शोभा है। तुम्हारे आशीर्वाद से ही यह फुलवारी फूल रही है, वरना···।"

माँ की निर्जीव आँखों के कोरों से दो आँसू चू पड़े। पास ही सब भाई खड़े थे, बीच में टपक पड़े, "माँ, तुम्हारी वजह से परिवार के सब लोग एक सूत्र में बंधे हैं। देख लेना तुम्हारे बाद यह बंधी बुहारी बिखर जाएगी।"

मैं मन ही मन हँस पड़ा। कैसी विडंबना है!

दूसरे दिन सुबह की गाड़ी से अचानक ही प्रकाश भाई आ गए। उन्हें देखते ही मेरा दिल डूब गया। उन्हें कहाँ सुलाऊँगा फिर खान-पान के बारे में भी भैया बड़ी मीनमेख निकालते हैं। दो-तीन दाँत क्या टूट गए, बिना घी चुपड़ी रोटी नहीं खाएँगे।

परिवार के सबसे बड़े सदस्य हैं। इसलिए सब उन्हें घेरकर बैठ गए। सब उनकी तबियत के बारे में पूछताछ करने लगे। भैया बोले, "मैंने तो समझा, हार्ट-अटैक हो गया पर निकली गैस ट्रबल। खैर, अब तो काफी अच्छा हूँ।"

माँ काफी स्वस्थ थी।

भैया माँ के पास गए। उनके पाँवों में माथा टेका। उनका हालचाल पूछ कर बोले, "मैं तो तुम्हारी सूरत देखने को तरस गया। क्या करूँ, इन्सान भी कितना मजबूर हो जाता है! इधर बीमारी उधर दफ्तर का इतना काम! खैर, जैसे-तैसे तरकीब निकाल कर आ ही गया।"

"बेटा, किशोर ने बड़ी सेवा की।"

सेवा की बातें सुन कर मन में जो उफान-सा आता था, वह भी दीक्षित शब्दों के छींटों से पल-भर में ही बैठ गया।

दस मिनट के बाद भैया बरामदे में निकल आए। कमला से शेव के लिए गरम पानी लाने को कह कर उन्होंने मेरी ओर देखा। फिर शेष मेहमानों की तरफ मुस्कान उछाल कर बोले, "किशोर का बचपना अभी गया नही।"

मैं बुरी तरह चौंक पड़ा। असंतुलित स्वर मे मैंने पूछा, "क्यों भैया, क्या हुआ ?"

"अरे, अभी तो ऐसी कोई बात नही थी। फिर सब लोगो को तार देकर क्यों इकट्ठा कर लिया ?"

मेरे दिल पर जोर का घूंसा लगा। बोला, "माँ की इच्छा थी।"

"माँ को तो बहकाया जा सकता था। पर तू तो हमेशा का नर्वस है।"

कमला शेव के लिए पानी ले आई। मेरा अंतर बुरी तरह तिलमिला रहा था।

भैया शेव करते-करते बोले, "तार-वार भेजने मे क्या लगता है। मुसीबत तो आने वालों की है। गाड़ियों मे भीड़भाड़ सहो, सफर मे परेशानी उठाओ और बेकार खर्चा पड़ता है, वह अलग।"

आगे मैं सह नही सका, बोल पड़ा, "यह तो आप ठीक कहते हैं, भैया! इधर अपने देश मे ही यह प्रथा है। विदेशो की प्रथा बहुत अच्छी है। वहाँ संवेदना प्रकट करने वाले पत्र द्वारा संवेदना भेज देते हैं। स्थानीय लोग एक रजिस्टर मे हस्ताक्षर कर जाते हैं। इसमे दोनों तरफ की परेशानी बच जाती है।"

शायद भैया जरूरत से ज्यादा समझ गए मेरी अर्थपूर्ण बात को। तभी आग्नेय दृष्टि से मुझे घूरने लगे।

मैं मुस्कराकर बोला, "इस बार आपको कलेक्टर ने दिल्ली का कोई काम नही निकाला ?"

भैया सहज होकर बोले, "क्यो नही! उसकी लड़की की शादी दिल्ली मे हुई है। उसे लिवा ले जाना है।"

"फिर तो यह आफीशियल टूर हो गया। टी० ए०, डी० ए० भी बनेगा!"

"और नही तो क्या, तूने मुझे बेवकूफ समझ रखा है!"

मैंने मन ही मन भैया के मुख पर उभरी चमक से चिढ़ कर कहा, "भैया, जरा ध्यान से, कहीं ब्लेड से गाल न कट जाए!"

भैया ने रेजर को वाश बेसिन की मुंडेर पर रख दिया। फिर उन्हें कुछ याद आ गया। बोले, "क्यों किशोर, तूने कोशिश की या नहीं?"

"किस बात की?"

"दिल्ली में इतनी नई कालोनियां बन रही हैं। सरकारी दुकानों का एलाटमेंट होता रहता है। एक दुकान मार ले तो पौ-बारह हो जाए। मेरे रिटायरमेंट में छः महीने बाकी हैं। मैं भी दिल्ली आ जाऊंगा। दुकान में तेरा भी दो आने का साझा डाल दूंगा।

तो भैया मां को देखने नहीं अपना काम करने आए हैं। मैंने उदासीन स्वर में कहा, "हूं, कोशिश तो की थी पर काम मुश्किल है। इसके लिए मिनिस्टर लेबिल की पहुंच चाहिए।"

"अरे, किशोर, तू तो जन्म का ही निकम्मा है। देखना, कैसे फटाफट काम होता है। अपने एरिया के एम०पी० को पटा लिया है। वही मिनिस्टर से भिड़ेगा। आज दोपहर तीन बजे वह मुझे मिनिस्टर के पास ले जाएगा।"

"तब तो भैया अपना काम पक्का समझो।"

"अरे किशोर, यही नहीं। अपने कलेक्टर से एक चिट्ठी भी लाया हूं। इस मंत्रालय में उसका एक साथी आई० ए० एस० डिप्टी सेक्रेटरी है।"

"आजकल तो, भैया, सब कुछ 'पुल' पर निर्भर करता है।"

"किशोर, आजकल तो आदमी को टेक्टफुल होना चाहिए वरना वह कोई तरक्की नहीं कर सकता।"

मेरा मन वितृष्णा से भर गया। बात को वहीं छोड़ मैं हट गया। मुझे डिस्पेंसरी जाना था।

नए उपचार से मां के स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक सुधार हुआ। धीरे-धीरे वह सामान्य होने लगी।

मां को नया जीवन मिल गया। मुझे इतनी खुशी हुई ... मलाई पड़ा दूध, शुद्ध देसी घी में सिके सफेद आटे के पराठे, जापानी नाइलोन की साड़ी, गाने वाली गुड़िया और नई कालोनी में दुकान का ...

भेट—सब सुख-सुविधाएं एक साथ मिल गई हों।

अगले चार-पांच दिन में भीड़ छंट गई। मां ने मेरे सिर पर हाथ फेर कर स्नेह भीगे स्वर में कहा, "तूने मेरी बड़ी सेवा की, बेटा! भगवान तेरी लंबी उमर करे!"

"मां, यह तो मेरा फर्ज था।"

"बेटा, मैं भी कैसी अभागी हूं। इतनी बीमारी के बाद भी बच गई।"

"अरे, मां, तुम बच गई, मेरे लिए इससे बड़ा पुरस्कार और क्या हो सकता है।"

"पर बेटा, समझो, मेरा एक बार तो क्रिया-कर्म हो गया। इसी बार सब झंझट निपट जाता तो अच्छा ही रहता। अगली बार…।"

"तो क्या अगली बार फिर यही…!" मेरी खुशी के अंदर आशंका-भरी निराशा की एक क्षीण सी रेखा खिंच जाती है,' तो अगली बार फिर वही सब कुछ होगा!' □□

सामयिक का चर्चित कथा-साहित्य

उपन्यास

आलोकिता	प्रेमलाल भट्ट	45 00
पितरों का घर	"	45 00
द्रोणाचार्य की पराजय	"	45 00
छोटे-छोटे महायुद्ध	रमाकान्त	45 00
उपसंहार	"	32 00
तीसरा देश	"	50 00
प्यादा-फर्जी-अर्दब	"	50.00
और कब तक	प्रदीप पन्त	55.00
महामहिम	"	20 00
शिखर और शिखर	डा० हरिदत्त भट्ट शैलेश	[illegible]
एक टुकड़ा इतिहास	गोपाल उपाध्याय	[illegible]
नान-तेल-लकड़ी	धर्मेन्द्र गुप्त	[illegible]
दबाव है बंधु पुल	"	[illegible]
गलतियों भरा इतिहास	[illegible]	[illegible]
[illegible]	देवेन्द्र उपाध्याय	25 [illegible]
सुबह का मुखौटा	[illegible] गुप्त	45 [illegible]
एक और युद्ध-विराम	वीरेन्द्रकुमार [illegible]	25 [illegible]
धड़कन के बाद	कुसुम गुप्ता	[illegible]
मुझे [illegible]	[illegible]	[illegible]
रेखाओं के बीच	[illegible]	35 [illegible]

कहानी

कुत्ते की मौत

दस्तकें और आवाजें

कोई और बात

पैदल अँधेरे में

राष्ट्रीय राजमार्ग

गुलाब-गंध

दिल्ली में पहला दिन

परशुराम की श्रेष्ठ कहानियाँ

एक और वापसी

लौटता हुआ अतीत

पिघला हुआ सच

ताला बंद है

अन्तिम अनुच्छेद

कबाड़ी बाजार

तलाश

1073
285.0

कहानी

कुत्ते की मौत	प्रदीप पंत	30.00
दस्तकें और आवाजें	धर्मेन्द्र गुप्त	24.00
कोई और बात	रमाकांत	24.00
पैदल अंधेरे में	रमेश उपाध्याय	20.00
राष्ट्रीय राजमार्ग	"	30.00
गुलाब-गंध	गोपाल उपाध्याय	35.00
दिल्ली में पहला दिन	वीरेन्द्र सक्सेना	35.00
परशुराम की श्रेष्ठ कहानियाँ	परशुराम	30.00
एक और वापसी	देवेन्द्र उपाध्याय	16.00
लौटता हुआ अतीत	रमेश गुप्त	35.00
पिघला हुआ सच	"	45.00
ताला बंद है	क्षितिज शर्मा	35.00
अन्तिम अनुच्छेद	नित्यानन्द	12.00
कबाड़ी बाजार	कुसुम गुप्ता	40.00
तलाश	शीतांशु भारद्वाज	32.00

10735
285.00

Jai Chand

10735

28 5-90

रमेश गुप्त

शिक्षा : एम० ए०, एल-एल० बी०।
सेंट जॉन्स कालेज, आगरा में अंग्रेजी भाषा का अध्यापन।

सन् 1960 से लेखन कार्य प्रारम्भ किया। हिन्दी की लगभग सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

अब तक 'शीशे की दीवार', 'लौटता हुआ अतीत', 'रेतछाया', 'कैदखाना' कहानी-संग्रह तथा 'रेगिस्तान में उगे रंगीन फूल', 'एक के बाद', 'डाल से बिछुड़े', 'फिर वही', 'आँखमिचौनी', 'टूटती सीमाएँ', 'बन्धन-मुक्ति', 'लौटते चरण', 'समानान्तर रेखाएँ', 'आउट हाउस', 'युद्धरत', 'कठपुतली', 'सुबह का सूर्यास्त' उपन्यास प्रकाशित।

'पिघला हुआ मन' आपका नवीनतम कहानी-संग्रह है।

सम्प्रति : सचिव, डाक सेवा बोर्ड, संचार मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।